

परम पूज्य तपश्चर्या-चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री

सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि-परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी-महोत्सव

सहस्रग्रन्थसंग्रह

* जन्मदिवस 19-03-1971

* मुनिदीक्षा-11-05-1989

* आचार्यपद- 20-06-2004

पट्टाधीशपद- 24-12-2010 (20-06-2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणा:-

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी-जुलाई 2004) (अक्षयज्योति-अक्तूबर 2004)



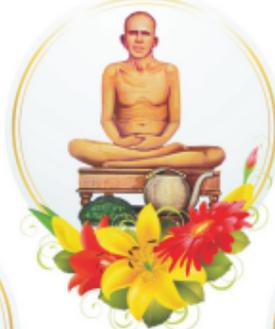
कविवर बुलाखीचन्द, बुलाकीदास एवं हेमराज

लेखक एवं सम्पादक
डॉक्टर कपूरचन्द कासलीवाल



प्रकाशक
श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी
जयपुर (राजस्थान)

(परम्परानायक)



(द्वितीय पट्टाधीन)



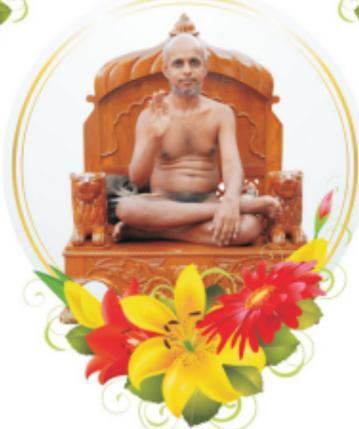
परम पूज्य तीर्थभक्त-शिरोमणि,
आचार्यश्री महाश्रीलकीर्णि जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीन)



परम पूज्य सिद्धान्त-चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्तिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीन)



परम पूज्य तपश्चर्या-चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्रायः होता है। फलतः उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि ये ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें। मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तृत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि-परिवार

महावीर ग्रंथ अकादमी-छठा पुष्प

कविवर बुलाखीचन्द बुलाकीदास एवं हेमराज

[१७वीं-१८वीं शताब्दि के छह प्रतिनिधि कवियो—
बुलाखीचन्द बुलाकीदास, पाण्डे हेमराज, हेमराज मोदीका
मुनि हेमराज एवं हेमराज के जीवन व्यक्तित्व एवं कृतित्व
के साथ उनकी महत्त्वपूर्ण कृतियों के मूल पाठो का सग्रह]

लेखक एवं सम्पादक
डा कस्तूरचन्द कासलीवाल

तिजारा (राजस्थान) मे आयोजित पञ्चकल्याण महोत्सव के अवसर पर दिनांक २२ मार्च, १९८३ को विशाल एवं मध्य समारोह मे परमादरणीय महामहिम राष्ट्रपति श्री ज्ञानी जैलसिंह जी द्वारा प्रस्तुत पुस्तक का विमोचन किया गया ।

श्री महावीर ग्रंथ अकादमी, जयपुर

प्रथम संस्करण मार्च १९८३

मूल्य ४०.००

सम्पादक मण्डल—श्री रावत सारस्वत, जयपुर
डा. हरीन्द्रभूषण जैन, उज्जैन
श्रीमती शशिकला जाकलीवाल, एम. ए. जयपुर

निदेशक मण्डल—

परम सरक्षक— स्वस्ति श्री भट्टारक चाणकीतिजी महाराज भूषवित्री

सरक्षक— साहू अशोककुमार जैन, बेहली
पूनमचन्द जैन, झरिया (बिहार)
रमेशचन्द जैन (पी एस जैन) बेहली
डॉ. धीरेन्द्र हेगड़े, धर्मस्थल
निर्मलकुमार सेठी, लखनऊ
महावीरप्रसाद सेठी, सरिया (बिहार)
कमलचन्द कासलीवाल, जयपुर
डा. (श्रीमती) सरयू बी. बोशी, बम्बई
पन्नासाल सेठी, डीमापुर

अध्यक्ष— कन्हैयालाल जैन, मद्रास

कार्याध्यक्ष— रतनलाल गगवाल, कमकला, पूरणचन्द गोदीका, जयपुर

उपाध्यक्ष— गुलाबचन्द गगवाल रैनवाल, अजितप्रसाद जैन ठंकेदार, बेहली
कन्हैयालाल सेठी जयपुर, पद्मचन्द तोतूका जयपुर
रतनलाल विनायक्या डीमापुर, त्रिलोकचन्द कोठारी कोटा
महावीर प्रसाद नूपत्या जयपुर, चिंतामणी जैन बम्बई
रामचन्द्र रारा गया, लेखचन्द जाकलीवाल जयपुर
रतनलाल विनायक्या भागलपुर, सम्पतकुमार जैन कटक
पद्मकुमार जैन नेपालगञ्ज, ताराचन्द बरशी जयपुर
डालचन्द जैन सागर, रतनचन्द पंसारी जयपुर

निदेशक एवं प्रधान

सम्पादक— डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल, जयपुर

प्रकाशक— श्री महावीर ग्रंथ प्रकाशनी
८६७—प्रभृत कलश, बरकत कालोनी,
किसान मार्ग, टोक रोड, जयपुर-३०२०१५

प्रतियां : ११००

मुद्रक— मनोज प्रिन्टर्स
७६६, गोदीकी का रास्ता,
किसानपोल बाजार, जयपुर-३०२००३

मूल्य : ४०.००

श्री महावीर ग्रंथ अकादमी-प्रगति रिपोर्ट

श्री महावीर ग्रंथ अकादमी की स्थापना समस्त हिन्दी जैन साहित्य को २० भागों में प्रकाशित करने के उद्देश्य के साथ साथ जैन साहित्य का प्रकाशन, नव साहित्य निर्माण एवं जैन साहित्य, कला, इतिहास, पुरातत्व जैसे विषयों पर शोध करने वाले विद्यार्थियों को दिशा निर्देशन के उद्देश्य को लेकर की गई थी। इन उद्देश्यों में अकादमी निरन्तर अग्रगण्य बढ रही है। हिन्दी जैन कवियों पर प्रकाशित होने वाले भागों में छद्मा पुष्प पाठको एवं माननीय सदस्यों के सामने प्रस्तुत किया जा रहा है। अब तक प्रस्तुत भाग सहित निम्न भाग प्रकाशित किये जा चुके हैं।

१. महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एवं भट्टारक त्रिभुवनकीर्ति
२. कविधर बूचराज एवं उनके समकालीन कवि
३. महाकवि ब्रह्म जिनदास — व्यक्तित्व एवं कृतित्व
४. भट्टारक रत्नकीर्ति एवं कुमुदचन्द्र
५. आचार्य सोमकीर्ति एवं ब्रह्म यशोधर
६. कविधर बुलासीचन्द, बुलाकीदास एवं हेमराज

अकादमी के सप्तम पुष्प की सामग्री भी सकलित की जा रही है तथा उसे अक्टूबर तक अथवा वर्ष समाप्ति के पूर्व ही प्रकाशित कर दिया जायेगा।

जैन कवियों के द्वारा विमाल हिन्दी साहित्य की संरचना की गयी थी। इसलिये उनकी सम्पूर्ण कृतियों को २० भागों में प्रकाशित करना तो संभव नहीं हो सकेगा क्योंकि ब्रह्म जिनदास एवं पाण्डे हेमराज जैसे बीसो कवि हैं जिनकी कृतियों के मूल पाठ प्रकाशित करने के लिए एक नहीं अनेक भाग चाहिये। फिर भी यह प्रसन्नता का विषय है कि अकादमी की धोर से अब तक बूचराज, छीहल, ठक्कुरसी, शारदादास, सोमकीर्ति, ब्रह्म यशोधर सांगु, गुणकीर्ति, यशःकीर्ति जैसे कुछ कवियों की ती सम्पूर्ण रचनायें प्रकाशित की जा चुकी है तथा शेष कवियों ब्रह्म रायमल्ल

त्रिभुवनकीर्ति, द्र. जिनदास, बुलासीचन्द्र, बुलाकीदास एवं हेमराज की रचनाओं के प्रमुख पाठो को प्रकाशित किया गया है। जिससे विद्वान गण उनकी काव्यगत महानता की जानकारी प्राप्त कर सकें और चाहे तो उनकी रचनाओं का भी अध्ययन कर सकें।

अकादमी द्वारा २० भाग प्रकाशित होने के पश्चात् हिन्दी जगत् में है जैन कवियों के प्रति जो उपेक्षा एवं हीन भावना व्याप्त है वे पूर्ण रूप से दूर होगी और उन्हें साहित्यिक जगत् में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होगा और उनका साहित्य साधारण पाठको को स्वाध्याय के लिये उपलब्ध हो सकेगा ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है।

सहयोग

अकादमी को समाज का जितना सहयोग अपेक्षित है यद्यपि उतना सहयोग अभी तक नहीं मिल सका है फिर भी योजना के क्रियान्वय के लिये विशेष कठिनाई नहीं हो रही है लेकिन हमें भविष्य में और भी अधिक सहयोग प्राप्त होगा। जिससे प्रकाशन कार्य में और भी अधिक तेजी लायी जा सके। मैं उन सभी महानुभावों का जिनका हमें परम सरक्षक, सरक्षक, अध्यक्ष, कार्याध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सम्माननीय सदस्य एवं विशिष्ट सदस्य के रूप में सहयोग मिला है हम उनके पूर्ण आभारी हैं। अकादमी के परम सरक्षक स्वास्ति श्री पंडिताचार्य भट्टारक चारुकीर्ति जी महागज मूढविद्री स्वयं विद्वान हैं, हजारों ताडपश्रीय ग्रंथों के व्यवस्थापक हैं। साहित्य प्रकाशन की महत्ता से वे स्वयं परिचित हैं। हम उनके सहयोग के लिये आभारी हैं।

नये सदस्यों का स्वागत

पञ्चम भाग के पश्चात् डा (श्रीमती) सरयू दोशी बम्बई एवं श्रीमान् पन्नालाल जी सेठी डीमापुरने अकादमी का सरक्षक बनना स्वीकार किया है। डा श्रीमती दोशी जैन चित्र कला की ख्याति प्राप्त विदुषी हैं। मार्ग जैसी कला प्रधान पत्रिका की सम्पादिका हैं। सारे देश के जैन भण्डारों में उप-बध चित्रित पौट्टुलिपियों का गहरा अध्ययन किया है। Homage to Shravan bulgola जैसी पुस्तक की लेखिका हैं। इसी तरह माननीय श्री पन्नालाल जो सेठी डीमापुर समाज के सम्माननीय सदस्य हैं। उदार हृदय एवं सेवा भावी सज्जन हैं। साधु भक्ति में जीवन समर्पित किये हुए हैं तथा प्रतिवर्ष हजारों साधर्मि बन्दुओं को जिमा कर आनन्द का अनुभव करते हैं। हम दोनों ही महानुभावों का हार्दिक स्वागत करते हैं।

इसी तरह निदेशक मडल में श्रीमान् माननीय डालचन्द जो मा सागर एवं श्रीमान् रतन चन्द जी मा पसारी जयपुर ने उपाध्यक्ष के रूप में अकादमी को

सहयोग प्रदान किया है। हम दोनों ही महानुभावों का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं। श्री डालचन्द जी सा. सागर से सारा जैन समाज परिचित है। प्र. भा. दि. जैन परिषद के वे अध्यक्ष हैं। आपकी लोकप्रियता एवं सेवाभावी जीवन सारे मध्यप्रदेश में प्रसिद्ध है, इसी तरह श्री पसारी सा. रत्नो के व्यवसायी हैं तथा जयपुर जैन समाज अत्यधिक सम्माननीय सज्जन हैं।

प्रकाशनी के सम्माननीय सदस्यों में जयपुर के डा. राजमलजी सा. कासलीवाल देहली के श्री नरेशकुमार जी मादीपुरिया, मेरठ के श्री शिखरचन्द जी जैन, सागर के श्री खेमचन्द जी मोतीलाल जी, एव डीमापुर के श्री किशनचन्द जी सेठी एव कटक के श्री निहालचन्द शान्ती कुमार का भी हम हार्दिक स्वागत करते हैं। सभी महानुभाव समाज के प्रतिष्ठित एव सेवाभावी व्यक्ति हैं। डा. राजमलजी तो नेताजी सुभाष चन्द्र बोस के विश्वस्त साथी रह चुके हैं।

सस्थाओं द्वारा सहयोग

दिसम्बर ८२ में श्री दि. जैन सिद्ध सेक. ग्राह्यार जी में प्र. भा. दि. जैन विद्वत् परिषद के नैमित्तिक अधिवेशन में प्रकाशनी की साहित्य प्रकाशन योजना की प्रशंसा करते हुए सम. ज. से. प्रकाशनी का सदस्य बनने एव उसे पूर्ण आर्थिक सहयोग देने के लिए जा. प्रस्ताव पारित किया गया उसके लिए हम विद्वत् परिषद के पूर्ण आभारी हैं। इसी तरह ग्राह्यारजी में ही प्र. भा. दि. जैन महासभा के अध्यक्ष ग्राह्यारणीय श्री निर्मल कुमार जी सा. सेठी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में प्रकाशनी के कार्यों की जिस रूप में प्रशंसा की तथा उसे सहयोग देने का आश्वासन दिया उसके लिए हम उनको भी पूर्ण आभारी हैं। माननीय सेठी सा. ता. प्रकाशनी के पहिले ही सम्माननीय सरक्षक हैं।

विद्वानों का सहयोग

प्रकाशनी को हिन्दी साहित्य के मनीषियों का बराबर सहयोग मिलता रहता है। अब तक डा. सत्येन्द्र जी जयपुर, डा. हीरालाल माहेश्वरी जयपुर, डा. नरेन्द्र भानावत जयपुर, डा. नेमीचन्द्र जैन इन्दौर एव डा. महेन्द्र कुमार प्रचंडिया अलीगढ़ ने संपादकीय लिखकर एव प. अनूपचन्द्रजी न्यायतीर्थ, प. मिलापचन्द जी शास्त्री, श्रीमती डा. कोकिला सेठी, श्रीमती सुशीला बाकलीवाल, डा. भागचन्द भागे-दु जैसे विद्वानों का संपादन में हमें सहयोग मिलता रहा है। प्रस्तुत भाग के संपादक हैं सर्व श्री रावत सारस्वत जयपुर, डा. हरीन्द्र भूषण उज्जैन एव श्रीमती शशिकला जयपुर। माननीय श्री रावत सारस्वत राजस्थानी भाषा के प्रमुख विद्वान हैं तथा

‘राजस्थानी भाषा प्रचार सभा’ के निदेशक हैं। आपने प्रस्तुत भाग पर जी महत्वपूर्ण सपादकीय लिखा है वह आपकी गहन विद्वता का परिचायक है। डा. हरीन्द्र भूषण जी जैन साहित्य के शीर्षस्थ विद्वान् है तथा कितने ही पुस्तकों के लेखक हैं। विक्रम विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग के रीडर पद से अभी अभी रिटायर हुए हैं। अकादमी लिये के आप विशेष प्रेरणा स्रोत हैं। श्रीमती शशिकला बाकलीवाल जयपुर उदीयमान विदुषी है। हम तीनों के प्रति अस्यधिक आभारी हैं।

विशेष आभार

वैसे तो हम पूरे समाज के आभारी हैं जिसके मंगल अभीर्वाह से अकादमी अपनी साहित्यिक योजना में सतत आगे बढ़ रही है। विशेषतः पूज्य क्षुल्लकरत्न श्री सिद्ध सागर जी महाराज लाहन्नु वाले, प. अन्नूपचन्द्रजी न्यायतीर्थ जयपुर, ब. श्री कपिल कोटडिया हिम्मतनगर, के भी आभारी हैं जिनका अकादमी को पूर्ण अभीर्वाह एवं सहयोग मिलता रहता है।

८६७ अमृत कलश

बरकत कालोनी, किसान मार्ग

टोक फाटक, जयपुर-६०२०१५

डा. कस्तूर चन्द कासलीवाल

निदेशक एवं प्रधान सपादक

संरक्षक के दो शब्द

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी के षष्ठम पुष्प 'कविवर बुलासीचन्द बुलाकीदास एवं हेमराज' को पाठको को हाथों में देते हुये मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है। सम्पूर्ण हिन्दी जैन साहित्य को २० भागों में प्रकाशित करने के उद्देश्य से संस्थापित यह अकादमी निरन्तर अपने उद्देश्य में आगे बढ़ रही है। प्रस्तुत भाग में १७-१८ वीं शताब्दि के तीन प्रमुख कवि बुलासीचन्द, बुलाकीदास एवं हेमराज के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है। तीनों ही कवि आगरा के थे तथा अपने समय के समर्थ कवि थे। महाकवि बनारसीदास ने आगरा में जो साहित्यिक चेतना जागृत की थी उसीके फलस्वरूप आगरा में एक के पीछे दूसरे कवि होते गये और देश एवं समाज को नयी-नयी एवं मौलिक कृतियाँ मेट कर रहे। इस भाग के प्रकाशन के साथ ही डा० कामलीवालजी ऐसे २६ जैन प्रमुख हिन्दी कवियों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डाल चुके हैं, जिनकी सभी कृतियाँ हिन्दी साहित्य की बेजोड़ निधियाँ हैं। इन कवियों में ब्रह्म रायमल्ल, बूचराज, छोहल, गारवदास, ठक्कुरसी, ब्रह्म जिनदास, भ० रत्नकीर्ति, कुमुदचन्द्र, आचार्य सोमकीर्ति, सागु, ब्रह्मयशोधर, बुलासीचन्द, बुलाकीदास, हेमराज पांडे एवं हेमराज गोदीका के नाम विशेषतः उल्लेखनीय हैं। इन सभी कवियों ने हिन्दी साहित्य को अपनी कृतियों से धीरे-धीरे प्रभावित किया है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि प्रस्तुत भाग में कविवर बुलासीचन्द ऐसे कवि हैं जिनका परिचय साहित्यिक जगत को प्रथम बार प्राप्त हो रहा है। डा० कामलीवालजी की साहित्यिक खोज एवं शोध सचमुच प्रशंसनीय है, जो अकादमी के प्रत्येक पुष्प में किसी न किसी अर्चयित एवं अज्ञात कवि को साहित्यिक जगत के समक्ष प्रस्तुत करते रहते हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि डा. साहू की शैली से अब तक उपेक्षित सैकड़ों हिन्दी जैन कवि एवं मनीषी तथा इनका विशाल साहित्य प्रकाश में आ सकेगा।

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी की स्थापना एवं उसका संचालन डा० कामलीवालजी की साहित्यिक निष्ठा का सुफल है। दो वर्ष पूर्व जब मुझे मेरे धनिष्ठ मित्र

एव सामाजिक कार्यों में सहयोगी तथा प्रसिद्ध संगीतज्ञ श्री ताराचन्द्रजी प्रेमी ने अकादमी के सम्बन्ध में चर्चा की तथा उसका संरक्षक सदस्य बनने के लिए कहा, तो मैंने तत्काल अपनी स्वीकृति दे दी। मैं इसके लिए श्री प्रेमी जी का आभारी हूँ। ऐसी साहित्यिक सस्था को सहयोग देने में मुझे ही नहीं, सभी साहित्यिक प्रेमियों को प्रसन्नता होगी।

अकादमी को निरन्तर लोकप्रियता प्राप्त हो रही है, जिसकी मुझे अतीव प्रसन्नता है। इसके पश्चिम भाग का विमोचन बम्बई महानगरी में परम पूज्य आचार्यश्री विमलसागरजी महाराज की पुण्य जन्म जयन्ती महोत्सव के अवसर उन्हीं के सानिध्य में मूडबिंदी के भट्टारक स्वरित श्री चारुकीर्तिजी महाराज ने किया था। भट्टारकजी महाराज अकादमी के परम संरक्षक भी हैं। इस अवसर पर स्वयं आचार्यश्री जी ने डा० कासलीवाल जी को साहित्यिक क्षेत्र में सतत् आगे बढ़ते रहने का शुभाशीर्वाद दिया था। पश्चिम भाग के प्रकाशन के पश्चात् डा० (श्रीमती) सरयू दोशी बम्बई एव श्री पद्मलाल सेठी डीमापुर ने अकादमी का संरक्षक सदस्य बनने की महती कृपा की है। इसके लिए हम उनके आभारी हैं। डा० (श्रीमती) दोशी जैन चित्रकला की शीर्षस्थ विदुषी हैं, तथा अपना समस्त जीवन जैन कला के महत्त्व को प्रस्तुत करने में समर्पित कर रखा है। उनका Homage to shrawan belgola अपने ढंग की अतूटी कृति है। इसी तरह माननीय श्री पद्मलाल जी सेठी एक प्रमुख व्यवसायी हैं तथा अपनी उदारता, दानशीलता एव साधु भक्ति के लिए सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। हम दोनों का हार्दिक स्वागत करते हैं। उक्त दोनों के अतिरिक्त सागर के प्रसिद्ध उद्योगपति एव लोकप्रिय समाज सेवी श्री डालचन्द जी जैन, जो वर्तमान में अखिल भारतीय दि० जैन परिषद के अध्यक्ष हैं, अकादमी को उपाध्यक्ष के रूप में सहयोग देकर मध्यप्रदेश में अकादमी के कार्यक्षेत्र में वृद्धि की है। इसी तरह जयपुर में रत्नो के व्यवसायी श्री रतनचन्दजी पसारी ने भी उपाध्यक्ष सदस्य बनने की स्वीकृति प्रदान की है। श्री पसारी जी जयपुर जैन समाज के लोकप्रिय समाज सेवी हैं तथा नगर की कितनी ही सस्थाओं को अपना सहयोग प्रदान करते रहते हैं। हम दोनों महानुभावों का उनके सहयोग के लिये हार्दिक स्वागत करते हैं।

मुझे यह भी लिखते हुये प्रसन्नता है कि अकादमी को साहित्यिक सस्या के रूप में सर्वथा मान्यता मिल रही है। अभी गत वर्ष दिसम्बर ८२ में श्री आहारजी सिद्ध क्षेत्र पर आयोजित अ० भा० दि० जैन विद्वत् परिषद ने एक प्रस्ताव द्वारा श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी के कार्यों की भूरि २ प्रशंसा की है तथा समाज से अकादमी के लिए पूर्ण सहयोग देने की अपील की है। ऐसे उपयोगी प्रस्ताव पारित करने के लिए हम विद्वत् परिषद के अध्यक्ष एवं मंत्री दोनों के पूर्ण आभारी हैं।

अन्त में मैं समाज के सभी महानुभावों से प्रार्थना करता हू कि वे अकादमी के अधिक से अधिक सस्या में सदस्य बनकर जैन साहित्य के प्रकाशन में अपना पूरा योगदान देने का कष्ट करें।

७-ए, राजपुर रोड
देहली-५४

रमेशचन्द्र जैन

सम्पादकीय

भारतीय भाषाओं और उनके साहित्य में एतद्देशीय जैन वाङ्मय का बड़ा प्रशसनीय सहयोग रहा है। राजस्थानी और हिन्दी के विगत प्रायः एक हजार वर्षों के इतिहास में इस सहयोग के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए जा चुके हैं। इससे पूर्व की भी, संस्कृत, अर्द्धमागधी, प्राकृत अपभ्रंश आदि तद्कालीन भाषाओं में रचित, बहुसंख्यक जैन रचनाओं के विवरण प्रकाशित हुए हैं। जैन धर्माचार्यों ने अपने उपदेशों को जनसाधारण के लिए बोधगम्य बनाने के उद्देश्य से लोकभाषा को माध्यम बनाया। यद्यपि वे पाण्डित्यपूर्ण विशिष्ट रचनायें मान्य साहित्यिक भाषाओं में करते रहे, पर लोककल्याण की भावना से प्रेरित उनका विपुल साहित्य देशभाषाओं में ही रचा गया। यह अतिरिक्त हर्ष का विषय है कि जैन समाज ने अपने धर्माचार्यों की इस घरोहर को यत्नपूर्वक सुरक्षित रखा है, जिसके फलस्वरूप सैकड़ों वर्ष बीत जाने पर भी वे कृतियाँ अनुसंधित्सुओं को प्राप्य हो सकी हैं। श्रद्धालु जैन समाज के श्रावकों ने आचार्यों की इम धाती से लाभान्वित होकर स्वयं भी उनके अनुकरण पर बहुसंख्यक रचनायें की हैं। ऐसी अनेक रचनाओं ने जैन वाङ्मय में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। दिगम्बर सम्प्रदाय के अनुयायियों में इस प्रवृत्ति का विशेष बाहुल्य रहा है। ब्रजभाषा, बुन्देली और पश्चिमी हिन्दी से सटे राजस्थान के पूर्वी और पूर्वी दक्षिणी अंचलों में ऐसी रचनायें अधिक रची गईं।

इस धर्म प्रधान साहित्यिक जागरण को उस अखण्ड ज्ञान चेतना से अङ्गीभूत रूप में ही देखा जा सकता है जो शताब्दियों से उत्तरप्रदेश, राजस्थान, पंजाब और मध्यप्रदेश के विज्ञान भू भागों को जैन संस्कृति की देन के रूप में आलोकित करती रही है। प्रस्तुत शोधग्रन्थ में जैन समाज के ऐसे ही तीन सुकवियों की रचनायें संकलित की गई हैं।

इस संकलन की विशिष्टता न केवल इन रचनाओं का प्रजात होना है अपितु इनकी भाषागत एवं साहित्यिक वैशिष्ट्य की पाण्डित्यपूर्ण विशद विवेचना

भी है जो जैन वाङ्मय के लब्धप्रतिष्ठ अधिकारी विद्वान डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल द्वारा की गई है। डा. कासलीवाल को ऐसे बीसों कवियों की प्रकाश में लाते हुए, इसी प्रकार के कई विद्वतापूर्ण सकलन संपादित करने का श्रेय है। ये सभी ग्रंथ विद्वत्समाज में चर्चित और समाहृत हुए हैं। श्री महावीर ग्रंथ प्रकाशनी के छोटे 'पुष्प' के रूप में प्रकाशित इस सकलन की शृङ्खला को आगे बढ़ाने में सतत प्रयत्नशील, डा कासलीवाल की यह नि स्वार्थ सेवा सभी साहित्य प्रेमियों के द्वारा अभिनंदनीय और अनुकरणीय है।

विषयवस्तु की दृष्टि से जैन रचनाओं को समग्र भाषा-साहित्य से पृथक् करके देखने की जो प्रवृत्ति कहीं-कहीं दिखाई देती है, उसे भाषा और साहित्य का सामान्य हित चाहने वाले लोग सशुचित और एकांगी ही कहेंगे। भाषा के ऐतिहासिक विकास क्रम का अध्ययन करने वाले विद्वानों ने इन रचनाओं की उपादेयता को स्वीकार किया है। जिस काल विशेष की अन्यान्य प्रजेन रचनाएँ दुःप्राप्य हैं सके लिए तो ये ही रचनाएँ हमारा एक मात्र आधार बनी हुई हैं। इन्हीं रचनाओं में प्रसंगवश समकालीन इतर साहित्यकारों के प्रकीर्णक छंद भी उद्भूत मिलते हैं जिनसे साहित्य का इतिहास नवीन तथ्यों से समृद्ध बनता है। प्रबन्ध चिन्तामणि, पुरातन प्रबन्ध संग्रह प्रबन्ध कोश, पुरातन पद्य प्रबन्ध आदि ग्रंथों में सकलित उत्तर अर्धश कालीन प्रबंधों में दिए गए ऐसे उदाहरण देशभाषाओं के उद्भव को समझने में बड़े सहायक सिद्ध हुए हैं।

भाषा के सबंध में दूसरी विशेषता जैन कवियों द्वारा प्रयुक्त वह मनोरम शब्दावली है जो लोक में सतत व्यवहार के कारण बड़ी आर्द्र, स्निग्ध और सस्कार संपन्न हो गई है। यह शब्दावली, परिनिष्ठित साहित्यिक शब्द प्रयोगों की रूढ़िगत कृत्रिमता और शुष्क वाग्जाल से आकुञ्चित न होकर, लोकमानस में प्रबहमान मानवीय भावनाओं की मरसता और अपनत्व से ओत प्रोत है। इसमें मस्तिष्क को बोझिल और सारग्राहिणी बुद्धि को कुण्ठित करने के उपक्रम के स्थान पर सीधे हृदय से दो-दो बातें करने का अबाधित और अनायास संपक है। इस दृष्टिकोण से लोकभाषाओं की स्थानीय रंगत में रगे जैन काव्यों का अध्ययन अभीष्ट है।

जैन प्रबंध रचनाओं में सांस्कृतिक सामग्री की जो विशदता, विपुलता और सर्वांगीणता मिलती है वह संकुनेतर भाषाओं के अन्यान्य साहित्य में तुलनात्मक रूप से अति विरल ही कही जाएगी। हमारे विस्मृत एवं लुप्तप्रायः ज्ञानकोश के पुनर्निर्माण के लिए जैन साहित्य का महत्त्व सर्वोपरि माना जाना चाहिए। साहित्यिक

बर्णनों की जो परम्परा जैन ग्रंथों में उपलब्ध है उनसे अनेक उलझे सूत्र सुलझाने में बड़ी सहायता मिली है। इस बर्णक सम्बन्ध को हम तत्कालीन काव्य पाठशालाओं के पाठ्यक्रम का एक अंग ही मान सकते हैं। बर्णनों की इस परिपाटी ने प्राचीन भारतीय संस्कृति को सुरक्षित करने में बड़ा योगदान दिया है। प्रस्तुत सकलन में आई ऐमी सांस्कृतिक सामग्री पर डा. कासलीवाल ने अपनी विद्वत्तापूर्ण भूमिका में अच्छा प्रकाश डाला है।

जब से विद्वानों का ध्यान जैन रचनाओं की इस सांस्कृतिक समृद्धि की ओर गया है, अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथों के सांस्कृतिक अध्ययन प्रस्तुत किए गए हैं। हरिवंश पुराण, कुबल्यमाला, उपमितिभव प्रपञ्चकथा, प्रद्युम्नचरित, जिनदत्तचरित निश्चिथ चूर्ण प्रभृति ग्रंथों के ऐसे अध्ययनों ने सांस्कृतिक विषयों में रुचि रखने वाले अध्ययताओं का ध्यान इस ओर आकर्षित किया है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि के ग्रंथों में प्राप्त प्रभूत सांस्कृतिक सदर्थों के अनुकरण पर प्राप्य भाषा-काव्यों में भी ऐसी सामग्री का अभाव नहीं है। कविवर बनारसीदास की आत्मकथा 'अर्द्ध कथानक' का ऐसा ही एक अध्ययन हाल ही में किया भी गया है। इस शैली पर, विषयों की ओर गहराई में उतरते हुए, सांस्कृतिक शब्दों का खुलासा किया जाना अपेक्षित है। शब्दों के व्युत्पत्ति जन्य एवं पारपरिक अर्थों की समीचीनता को उद्घाटित करने के कारण ही 'श्री अभिषेक राजेन्द्र कोष' जैसे प्रामाणिक ग्रंथ विश्व भर में समाहित हुए हैं।

संस्कृति के पक्ष से ही अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ राज और समाज का प्रश्न भी है। ऐतिहासिक उल्लेखों की जो प्रामाणिकता जैन विद्वानों की रचनाओं में सिद्ध हुई है उसकी तुलना में हमारा दूसरा पारम्परिक साहित्य नहीं ठहरता। इसका मुख्य कारण तो यही हो सकता है, कि जैनधर्माचार्य निरन्तर विहार करते रहने के कारण हरेक स्थान से सबवित्त घटनाओं के विश्वस्त तथ्यों से परिचित हो सकते थे। इसी निजी संपर्क से लोक व्यवहार एवं सामाजिक रीति-नीति का भी निकटतम और सहज अध्ययन संभव था। निरन्तर जन सम्पर्क में आते रहने से लोक मानस के अन्तर्गत का वैज्ञानिक अध्ययन एवं मनोवृत्तियों का सम्पर्क विश्लेषण भी उनके लिए सहज बन गया था। किसी भी साहित्यकार के लिए देश-देशांतर का इस प्रकार का निरीक्षण अत्यन्त श्रेयस्कर है। पर अनेक कारणों में ऐसा करना विश्व ही लोगों के बश की बात है। जीनाचार्यों ने चूँकि इसे जीवन का एक अति आवश्यक अंग बना लिया था, अतः उनके लिए यह साहित्यिक सामर्थ्य का एक कारण भी बन गया है। इस प्रकार के चतुर्विध में रहने के कारण

ही जैन रचनाओं में राज, समाज और संस्कृति की अमूल्य सामग्री समाहित हो सकी है।

प्रस्तुत संकलन में आए हुए कवियों की रचनाओं का सामाजिक और सांस्कृतिक अध्ययन मध्यकालीन समाज और संस्कृति के अनेक अज्ञात अथवा अल्पज्ञात पक्षों को उजागर कर सकता है। यह हर्ष का विषय है कि डा. कासलीवाल ने इस दिशा में संकेत करते हुए अपने सपादकीय आलेखों में यह शुभारम्भ कर दिया है। आधुनिक विश्वविद्यालयों में शोधरत छात्रों द्वारा ऐसे लघुशोध प्रबंध तैयार करवाये जाकर इस प्रयत्न को प्रागे बढ़ाया जा सकता है। कालान्तर में ऐसे ही प्रयासों से 'विशाल भारतीय संस्कृतिकोश' का निर्माण संभव हो सकेगा -

प्रस्तुत संकलन के संपादन व प्रकाशन के लिए श्री महावीर प्रथ अकादमी से संबद्ध सभी सुधीजन, विशेषतः डा. कासलीवाल, सभी साहित्य प्रेमियों के साधु-वाद के पात्र हैं।

डी २८२, मीरा मार्ग बनीपार्क,
जयपुर।

राजत सारस्वत



लेखक की ओर से

“कविवर बुलाखीचन्द, बुलाकीदास एव हेमराज” पुस्तक को पाठको के हाथों में देते हुये मुझे अत्यधिक प्रसन्नता है। विशाल हिन्दी जैन साहित्य के प्रमुख कवियों में उक्त तीनों ही कवियों का प्रमुख स्थान है। ये १७ वीं १८ वीं शताब्दि के चमकते हुये प्रतिभा सम्पन्न कवि थे जिन्होंने अपनी महत्त्वपूर्ण कृतियों से तत्कालीन समाज एवं स्वाध्याय प्रेमियों को गौरवान्वित किया था। यह भी प्रसन्नता की बात है कि तीनों ही कवियों का आगरा से विशेष सम्बन्ध था जहाँ महाकवि बनारसीदास जैसे कवि उनके पूर्व हो चुके थे।

उक्त तीन कवियों में बुलाखीचन्द का नाम हिन्दी जगत के लिये एक दम अनजाना है। आज तक किसी भी विद्वान् ने उनके नाम का उल्लेख नहीं किया इसलिए ऐसे अर्चचिन कवि को हिन्दी जगत् के सामने प्रस्तुत करने में और भी प्रसन्नता होती है। बुलाखीचन्द की एक मात्र कृति ‘वचन कोश’ की अभी तक उपलब्धि हो सकी है किन्तु यही एक मात्र कृति उनके व्यक्तित्व को जानने/परखने के लिये पर्याप्त है। कवि ने अपनी पद्यात्मक कृतियों में बीच २ में हिन्दी गद्य का प्रयोग करके उम समय के चर्चित गद्य का भी हमें दर्शन करा दिया है। हिन्दी गद्य साहित्य के विकास को जानने के लिये भी ‘वचन कोश’ एक महत्त्वपूर्ण कृति है। लगता है कवि साहित्यिक होने के साथ इतिहास प्रेमी भी थे इसलिये उन्होंने अपने इस कोश में अग्रवाल जैन जाति की उत्पत्ति, काण्डा मध का इतिहास, जैसवाल जैन जाति की उत्पत्ति का इतिहास, भगवान महावीर के समय रसरण का जैसलमेर में आगमन जम्बू स्वामी का कैवलय एवं निर्वाण जैसी ऐतिहासिक बातों का अच्छा वर्णन किया है। प्रस्तुत भाग में हम वचन कोश के पूरे पाठ नहीं दे पाये हैं कुछ प्रमुख पाठ देकर ही हमें सन्तोष करना पडा है।

इस भाग के दूसरे कवि बुलाकीदास है जिनका पाण्डवपुराण अत्यधिक लोक-प्रिय ग्रंथ माना जाता है। बुलाकीदास ने पाण्डवपुराण एवं प्रश्नोत्तरभावाचार-दोनो ही ग्रन्थों का निर्माण अपनी माता जैनुलदे की प्रेरणा में किया था। सारे साहित्यिक जगत् में पड़िता जैनुलदे जैसी आदर्श एवं स्वाध्यायशीला महिला का मिलना कठिन है। बुलाकीदास का पाण्डवपुराण काव्य की दृष्टि से भी एक सुन्दर कृति है जिसमें महाभारत के पात्रों का बहुत ही उत्तम रीति से वर्णन हुआ है। एक जैन कवि के द्वारा युद्ध का इतना सागोपांग वर्णन ग्रन्थ काव्यों में मिलना कठिन है।

इस भाग के तीसरे कवि है पाण्डे हेमराज। लेकिन हेमराज एक कवि ही नहीं है। एक समय में हेमराज नामके चार कवि मिलते हैं जिनमें दो तो बहुत उच्चश्रेणी के कवि हैं। हेमराज पाण्डे का नाम हम सब जानते अवश्य हैं लेकिन उनके काव्यों की महत्ता एवं कला से अनभिज्ञ रहे हैं। हेमराज आचार्य कुन्द-कुन्द के बड़े भागी भक्त थे इसलिये उन्होने प्रवचनसार, नियमसार, पचास्तिकाय जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों पर हिन्दी गद्य में टीका लिखी और फिर समयसार एवं प्रवचनसार को छन्दों में लिखकर हिन्दी जगत् को अध्यात्म साहित्य को स्वाध्याय के लिये सुलभ बनाया। पाण्डे हेमराज के ग्रन्थों का गद्य भाग भाषा के अध्ययन की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है किस प्रकार जैन विद्वानों ने हिन्दी भाषा की अपूर्व सेवा की थी इस सबसे इन ग्रन्थों के अध्ययन के पश्चात् अच्छी तरह परिचित हो सकते हैं। वास्तव में हेमराज अपने समय के जबरदस्त विद्वान् थे तथा समाज द्वारा समाहत कवि माने जाते थे।

पाण्डे हेमराज के अतिरिक्त एक दूसरे कवि थे हेमराज गोदीका। वे मूलतः सागानेर थे लेकिन कामा जाकर रहने लगे थे। ये भी आध्यात्मिक कवि थे कुन्द-कुन्द के प्रवचनसार पर उनकी अगाध श्रद्धा थी। इसलिये उन्होने भी इसे हिन्दी पद्यों में गूँथ दिया। उनकी दूसरी रचना उपदेश दाहा शतक है। जिसका पूरा पाठ इस भाग में दिया गया है। हेमराज गोदीका अपने समय के सम्मानित कवि थे। इसी तरह उसी शताब्दि में दो और हेमराज नाम के कवि हुए जिन्होंने भी अपनी लघु रचनाओं से हिन्दी जगत को उपकृत किया।

प्रस्तुत भाग में बुलाकीचन्द के वचनकोश बुलाकीदास के पाण्डवपुराण, हेमराज पाण्डे का प्रवचनसार (पद्य), हेमराज गोदीका के उपदेश

दोहाशतक (पूरी कृति) एवं प्रबचनसार (हिन्दी पद्य) के कुछ प्रमुख पाठो को दिया गया है। भाषा है पाठक गण उनके अध्ययन के पश्चात् कवियों की काव्य प्रतिभा का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

सम्पादक मंडल

प्रस्तुत भाग के सम्पादन में माननीय रावत सारस्वत जयपुर, डा० हरीन्द्र भूषण जैन उज्जैन एवं श्रीमती शशिकला बाकलीवाल जयपुर का जो सहयोग मिला है उसके लिये मैं उनका पूर्ण आभारी हूँ। श्री रावत सास्वत ने जो सम्पादकीय लिखा है वह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है तथा हिन्दी जैन साहित्य के महत्त्व एवं उसकी उपयोगिता पर विस्तृत प्रकाश डालने वाला है।

आभार

मैं श्री दि० जैन बड़ा तेरहपथी मन्दिर जयपुर के शास्त्र भण्डार के व्यवस्थापक श्री कपूरचन्दजी सा० पापडीवाल, पाण्डे लूणकरणजी के मन्दिर के शास्त्र भण्डार के व्यवस्थापक श्री मिलापचन्दजी बागायतवाले एवं दि० जैन मन्दिरजी ठोलियान ने व्यवस्थापक श्री नरेन्द्र मोहनजी डडिया का आभारी हूँ जिन्होंने अपने २ शास्त्र भण्डारों में से वाञ्छित पाण्डुलिपियाँ संपादन के लिये देने की कृपा की। भाषा है भविष्य में भी आप सबका इसी प्रकार का सहयोग प्राप्त होता रहेगा।

मैं आदरणीय श्री रमेशचन्दजी सा० जैन देहली का भी आभारी हूँ जिन्होंने प्रस्तुत पुस्तक के लिये दो शब्द लिखने की कृपा की है। जैन सा० का अकादमी को विशेष सहयोग मिलता रहता है।

अन्त में मैं मनोज प्रिन्टर्स के व्यवस्थापक श्री रमेशचन्दजी जैन का भी आभारी हूँ जिन्होंने पुस्तक के मुद्रण में पूरी तत्परता दिखाई है तथा उसे सुन्दर बनाने में योग दिया है।

जयपुर

१ मार्च १९८३

डा० कस्तूर चन्द कासलीवाल

विषय-सूची

	पृष्ठ संख्या
१ श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी-प्रगति रिपोर्ट	iii-vi
२ संरक्षक के दो शब्द	vii-ix
३ सपादकीय	x-xiii
४ लेखक की ओर से	xiv-xvi
५ पूर्व पीठिका	१-२
६ कविवर बुलाखीचन्द	३-४४
(i) वचन कोश-मूल पाठ	४५-११५
७ कविवर बुलाकीदास	११६-१५०
(ii) पाण्डवपुराण-मूलपाठ	१५१-२००
८ मुनि हेमराज	२०१-२०४
९ पाण्डे हेमराज	२०४-२२४
१० हेमराज गोदीका	२२४-२२६
११ हेमराज (चतुर्थ)	२२६-२३२

कृतिया—(i) उपदेश बोहा शतक	२३३-२४०
(ii) प्रबचनसार भाषा पद्य	२४१-२५४
(iii) प्रबचनसार भाषा(कविता बध)	२५५-२६४
१२ नामानुक्रमणिका	२६५-६६
१३ कबर पृष्ठ पर चित्र	—कविबर बुलाकीदास पाण्डबपुराण की रचना करते समय अपनी माता जंजुलदे को सुनाते हुए

पूर्व पीठिका

विक्रम की १७वीं शताब्दि समाप्त होने के साथ ही देश में हिन्दी कवियों की बाढ़ सी आगयी । एक ही समय में बीसों कवि होने लगे । प्राकृत, संस्कृत, एवं अपभ्रंश में रचनायें करना बन्द सा हो गया । जन-साधारण भी हिन्दी कृतियों को पढ़ने में सर्वाधिक रुचि दिखलाने लगा । भाषा कवियों का आदर बढ़ गया । कबीर, मीरा, सूरदास एवं तुलसी का नाम उत्तर भारत में श्रद्धा के साथ लिया जाने लगा एवं उनकी रचनाओं ने धार्मिक रचनाओं का स्थान ले लिया । जैन कवि तो आरम्भ से ही अपभ्रंश के साथ-साथ राजस्थानी, व्रज एवं हिन्दी में रचनायें निबद्ध करने में आगे थे । १७वीं शताब्दि के पूर्व कविवर सखारू, राजसिंह, ब्रह्म जिनदास, भू ज्ञानभूषण, आचार्य सोमकीर्ति, बूचराज, ब्र. यशोधर, छीहल, ठक्कुरसी, बह्म रायमल्ल, भू रत्नकीर्ति, कुमुदचन्द, बनारसीदास, रूपचन्द जैसे प्रभावी जैन कवि हो चुके थे जिन्होंने राजस्थानी एवं हिन्दी में काव्य निर्माण का मार्ग प्रशस्त कर दिया था तथा जन-मानस में हिन्दी रचनाओं के प्रति गहरी श्रद्धा उत्पन्न कर दी थी । पाठकों की इस श्रद्धा से हिन्दी कवियों को अत्यधिक बल मिला और उन्होंने विविध संज्ञा परक रचनाओं के निबद्ध करने में अपने आपको समर्पित कर दिया ।

१६वीं, १७वीं एवं १८वीं शताब्दि में एक ओर गुजरात एवं बागड प्रदेश हिन्दी एवं राजस्थानी कवियों का केन्द्र बना रहा तो दूसरी ओर आगरा नगर जैन कवियों के लिये तीर्थ बनने लगा । गुजरात एवं बागड प्रदेश में भट्टारकों एवं उनके शिष्य प्रशिष्यों का जोर था । वे चरित, रास, बेलि, कथा एवं भक्ति परक रचनाओं को निबद्ध करने में लगे हुए थे तो दूसरी ओर आगरा जैसे नगर में अध्यात्मवादी कवियों का जोर था और वे समयसार नाटक एवं आध्यात्मिक कृतियों के लिखने में भूम रहे थे । आत्म तत्व के प्रेमी ये कवि देश में एक नयी लहर फैलाने में लगे हुए थे । इसलिये कविवर बनारसीदास एवं उनकी मडली के कवि रूपचन्द, कौरपाल जैसे कवियों ने दिन-रात एक करके पचासों आध्यात्मिक रचनायें लिखने में सफलता प्राप्त की जिनका देश के सभी भागों में जोर का स्वागत हुआ । बनारसी-

दास तो उत्तरी भारत में स्वाध्याय प्रेमियों के लिये आदर्श बन गये। उत्तर में मुलतान एवं दक्षिण में राजस्थान, मध्यप्रदेश, देहली आदि सभी स्वाध्याय केन्द्रों पर समरपार नाटक, बनारसी विनास जैसी कृतियों की स्वाध्याय एवं चर्चा होने लगी।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अधिकांश कवियों के संरक्षक विभिन्न भट्टारक थे जो अपने समय के सर्वाधिक प्रतिष्ठित जैन सन्त के रूप में समाहृत थे। राजस्थान में भ्रामेर, सागानेर, भ्रजमेर, नागौर जैसे नगर इनके केन्द्र थे जहाँ पचासों पंडित साहित्य सेवा में लगे रहते थे। लेकिन आगरा केन्द्र से सम्बन्धित कवि भट्टारकों के अधिक सम्पर्क में नहीं थे। बनारसीदास ऐसे कवियों के आदर्श थे। इसलिये सवत् १७०१ से १७५० तक के काल को बनारसीदास का उत्तरवर्ती काल के नाम से सम्बोधित किया जा सकता है। इस अवधि में आगरा, कामां, सागानेर, भ्रामेर, टोडारामसिंह जैसे नगर हिन्दी कवियों के प्रमुख केन्द्र थे। हमारे तीनों चर्चित कवि बुलाखीचन्द, बुलाकीदास एवं हेमराज इसी अवधि में होने वाले कवि थे जिनका प्रस्तुत भाग में विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। इन पचास वर्षों में मनोहरलाल, हीरानन्द, खडगसेन, अचलकीर्ति, रामचन्द्र, जगताराम, जोधराज, नेमिचन्द्र, भैया भगवतीदास, आनन्दधन जैसे पचासों कवि हुए जिन्होंने अपनी सैकड़ों रचनाओं से हिन्दी के भण्डार को समृद्ध बनाने में सफलता प्राप्त की। इन सभी कवियों का विशेष अध्ययन अकादमी के आगे के भागों में किया जावेगा।



कविवर बुलाखीचन्द

बुलाखीचन्द हिन्दी विद्वानो के लिये एक दम नया नाम हैं। क्या जैन एवं क्या जैनतर विद्वानो मे से किसी ने भी कविवर बुलाखीचन्द के विषय मे अभी तक नही लिखा है। इसलिये अकादमी के प्रस्तुत भाग मे एक अज्ञात कवि का परिचय देते हुए हमे भी अत्यधिक प्रसन्नता है। इसके पूर्व भी अकादमी के दूसरे भाग में गारवदास, चतुर्थ भाग मे आचार्य जयकीर्ति, राघव, कल्याण सागर तथा पंचम भाग मे ब्रह्म गुणकीर्ति जैसे अज्ञात कवियो का परिचय दिया जा चुका है लेकिन बुलाखीचन्द उन सबसे विभिन्न कवि थे तथा अपने समय के प्रतिनिधि कवि थे।

जीवन परिचय :

कविवर बुलाखीचन्द जैसवाल जाति के श्रावक थे। जैसवाल जाति की उपरोतिया एव तिरोतिया इन दो शाखाओ मे से बुलाखीचन्द तिरोतिया शाखा मे उत्पन्न हुये थे। उनके पितामह का नाम पूरणमल एव पितामह का नाम प्रताप था। वे राजाखेडा के चौधरी थे तथा उनकी आगरा तक धाकू थी।¹ प्रताप जैसवाल के पांच पुत्र थे जिनमे सबसे छोटे लालचन्द थे।

लालचन्द के पुत्र का नाम जिनचन्द था लेकिन सभी परिवार वाले उसे बुलाखीचन्द के नाम से पुकारते थे।² लेकिन वे कौनसे सबत मे पैदा हुए, माता का नाम

-
1. कारज गाम गोत परनए इहि बिधि अंसवाल बरनए ।
उपरोतिया गोत छत्तीस, तिरोतिया गनि छह आलीस ॥७५॥
तिरोतिया तिनि मे एक जानि, पूरण प्रश्न प्रताप बुव जानि ।
राजाखेरा को चडधरी, अण्णलपुर को आनु बु बरी ॥७६॥
 2. ताके पांच पुत्र अनिराम, अनुज लालचन्द तसु नाम ।
ता सुत हीमे प्रीति जिनचन्द, सब कोऊ कहे बुलाखीचन्द ॥ ७७ ॥

क्या था तथा उनका बचपन एवं युवावस्था किस प्रकार व्यतीत हुई इस सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं मिलती। लेकिन इतना अवश्य है कि आगरा से विशेष सम्बन्ध होने के कारण कवि को अच्छी शिक्षा मिली होगी। प्राकृत, संस्कृत एवं हिन्दी भाषा का उन्हें अच्छा ज्ञान था तथा काव्य रचना में उनकी रुचि थी। उनका कवि हृदय था।

संवत् १७३७ के पूर्व उनके हृदय में एक ऐसे ग्रन्थ निर्माण करने का भाव आया जिसमें जिन कथा थी हुई हो। कवि के वृन्दावन एवं सागरमल ये दो मित्र थे। जब कवि को काव्य रचना की इच्छा हुई तो उसने अपने इन दोनों मित्रों से चर्चा की और उन दोनों की आज्ञा लेकर बचनकोश को रचना कर डाली।^१ दोनों मित्र जिनधर्मि एवं परम पवित्र थे। सभी उनका सम्मान करते थे। दोनों को जैनधर्म का अच्छा ज्ञान था। ग्रन्थ पूरा होने पर उसका नाम बचनकोश रखा गया। कवि ने लिखा है कि बचनकोश नाम ही अत्यधिक उज्वल माना गया।^२

रचना काल एवं रचना स्थान

बचनकोश की रचना संवत् १७३७ वर्ष में वैशाख सुदी अष्टमी के शुभ दिन समाप्त हुई थी। उस दिन सोमवार था। कवि ने सोमवार का 'नीम' नाम दिया है। रचना स्थान बर्दैनपुर था जो उस समय एक सुन्दर नगर था तथा वहाँ के निवासियों में अपनी बुद्धि पर गर्व था।

संवत् सत्रहसे बरस ऊपरि सप्त अक्ष तीस ।

वैशाख अंधेरी अष्टमी, बार बरनच नीस ॥ ८३ ॥

बर्दैनपुर नगरी सुभग, तहाँ बुद्धि को जोस ।

रख्यो बुलाखी चन्द ने, भाषा बचन जुकोश ॥ ८४ ॥

१ तामु हिरदे उपजी वह आनि, कीजे षणो जिन कथा बखान ।

वृन्दावन सागरमल मित्र जिनधरमी अरु परम पवित्र ॥ ७८ ॥

२ तिनकी आज्ञा ले सिर धरी, बचनकोश की रचना करी ।

भाषा ग्रंथ भयी प्रति भलो, बचनकोश नाम जु उजलो ॥ ७९ ॥

बडंनपुर कौनसा नगर था तथा वर्तमानमें उसका क्या नाम है यह खोज का विषय है किन्तु हमारे विचार में यह नगर मथुरा के पास होना चाहिये क्योंकि जैसवाल जैन समाज त्रिभुवनगिरी को छोड़ कर मथुरा भा चुका था। यही पर जम्बू स्वामी को कैवल्य एवं निर्वाण की प्राप्ति हुई थी इसलिये वृन्दावन का नाम ही बर्धनपुर होना चाहिये। वृन्दावन मथुरा के समीप ही है और कभी वहाँ जैसवाल जैन समाज की भ्रष्टी सल्या रही होगी।^१

बचनकोश का महारम्य

कवि के अनुसार बचनकोश कोई साधारण रचना नहीं है किन्तु यह एक ऐसा ग्रंथ है जिसको पढ़ने से मिथ्याज्ञान दूर हो जाता है तथा जिनवाणी के प्रतिरिक्त धन्य किसी की बात भ्रष्टी नहीं लगती। इसकी स्वाध्याय से सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। जो स्त्री पुरुष इसका श्रवण पूर्वक श्रवण करते हैं उनके घर में लक्ष्मी का निवास हो जाता है। जो इसका मनन करते हैं उनके किसी प्रकार का भी रोग नहीं आता। बचनकोश की तो इतनी अधिक महिमा है जिसका वर्णन करना भी कवि के लिए संभव नहीं है। क्योंकि उसके पठन पाठन एवं श्रवण मात्र से भी बुद्धि एवं बल दोनों की वृद्धि होती है तथा उसे मान सम्मान भी मिलता है।^२

बचनकोश बिनास सदृश रचना है जिसमें गद्य पद्य वाली रचनाओं का संग्रह रहता है। लेकिन बचनकोश की एक यह विशेषता है कि इसमें कवि ने कोश के

१ छाँड़ि तिहुवन गिरी उठि धाइयो, जैसवाल बाल धानियो ।

प्रभु बरसन सहए नबिहुंड, दुरमति करि मारि सत संड ॥ ७१ ॥

जम्बू स्वामि भयो निरवान, पाई पञ्चम गति भगवान ।

जैसवाल रहै तिही ठाम, मन मान्यो जु करइ काम ॥ ७३ ॥

२. जिनसे तासु पठत मिथ्यात, सांची लगे न परमत बात ।

क्षयोपशम को कारण मही, बचनकोश प्रगट्यो यह मही ॥ ८० ॥

ध्वन करे कचि सँ नरनारि, लक्ष्मी होइ शुभग निरधार ।

लक्ष्मी होइ, न रोग झाकुली, धाके पडे होइ धति जु भली ॥ ८१ ॥

जिनवानी की करिति धनी, कहां लौ बरनि सके नहीं मनी ।

सुभ तासु न पावै पार, मानि सकति जु बुधि बलसार ॥ ८२ ॥

रूप में रचानायें लिखी है। उसने अपनी रचना में अपने दो मित्रों के नामों के प्रतिरिक्त अपने पूर्ववर्ती अथवा समकालीन कवियों का नामोस्लेख तक नहीं किया। इससे वह स्पष्ट लगता है कि कवि अन्य कवियों के सम्पर्क में नहीं थे तथा स्वयं ही अपनी ही धुन में काव्य रचना किया करते थे।

बचनकोश किमी सर्ग अथवा अध्याय में विभक्त नहीं है लेकिन जब किसी का वर्णन समाप्त होता है तो उस विषय की समाप्ति लिख दी गयी है। यही उसकी विभाजन रेखा है। वैसे कवि ने तो विषय का इस प्रकार प्रतिपादन किया है कि उससे बिना सर्ग अथवा अध्याय के भी काम चल जाता है।

बचनकोश का अध्ययन

बचनकोश का प्रारम्भ मगलाचरण से किया गया है। जिसमें पंचपरमेष्ठी रूपी समयसार के चरणों की बन्दना की गयी है। पंच परमेष्ठियों में सिद्ध परमेष्ठी को देव भन्द से अभिहित किया गया है तथा अग्रहन्त, आचार्य, उपाध्याय एवं सर्व साधु को गुरु के रूप में स्मरण किया गया है। सिद्ध परमेष्ठी पंच ज्ञान के धारी है। वे वर्ण, गंध एवं शरीर से रहित हैं। अविनाशी हैं, विकार रहित हैं तथा लघु गुण रहित हैं। अर्हत परमेष्ठी अनन्त गुणों के धारक हैं, परम गुरु हैं तथा तीनों लोकों के इन्द्रों द्वारा पूजित हैं।^१ इसी तरह आचार्य, उपाध्याय एवं साधु परमेष्ठी का गुणानुवाद किया है

श्रृषभदेव की स्तुति

पंचपरमेष्ठी को नमन करने के पश्चात् कवि ने २४ तीर्थंकरों की स्तुति की है। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव थे जिनके नाभिराय एवं मरुदेवी पिता एवं माता थे। उनका शरीर पाचसो योजना था। उनका देह स्वर्ण के समान था। वे इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुये थे। चंद्र कृष्णा नवमी जिनकी जन्म तिथि है

१. समयसार के पंच नमूँ, एक देव गुरु ध्यारि ।
परमेष्टि तिनिस्यों कहें, पंच ज्ञान गुण धार ॥ १ ॥
२. बरण गंध काया नहीं, अविनाशी अविकार ।
गुरु लघु गुण विनु देव यह, नमो सिद्ध अक्षतार ॥ २ ॥
३. श्री जिनराज अनन्त गुण, जगत परम गुरु एव ।
अथ ऊरध मधि लोक के, इन्द्र करे शत सेव ॥ ३ ॥

ऋषभदेव को तीर्थकर के रूप में जन्म लेने के लिये ११ भवों तक साधना करनी पड़ी थी। चैत्र सुदी को नवमी को उन्होंने गृह त्याग किया था। साधु भवस्था में सर्व प्रथम उन्हें एक वर्ष तक निराहार रहना पड़ा और फिर हस्तिनापुर के राजा श्रेयांस के यहाँ सर्व प्रथम इक्षु रस का आहार लिया था। बट वृक्ष के नीचे उन्होंने केश लोच किया तथा फागुण बुदी ग्यारस के दिन प्रातः उन्हें कैवल्य हो गया। उनका समवसरण १२ योजन विस्तार वाला था जिसकी रचना इन्द्रो ने की थी। ऋषभदेव के ८४ गणधर थे। अन्त मे माघ सुदी १४ को पद्मासन से उन्हें निर्वाण की प्राप्ति हुई और सदा सदा के लिये जन्म मरण के बन्धन से मुक्ति प्राप्त की। कवि ने अन्त मे यह भी कहा है कि जो व्यक्ति इस दिन का उपवास करता है उसे पुनः मनुष्य भव की प्राप्ति होकर अन्त मे निर्वाण पद प्राप्त हो सकता है। ऋषभदेव की पूरी स्तुति १० पद्यों में समाप्त होती है।

२ अजित नाथ की स्तुति

अजितनाथ दूसरे तीर्थकर थे जो ऋषभदेव के तालों वर्ष पश्चात् हुए थे। अयोध्या उनका जन्म स्थान था। राजा जितरिपु उनके पिता एवं विजया उनकी माता थी। हाथी उनका लाक्षण था। वे भी इशवाकु वश मे पैदा हुये थे। माघ सुदी नवमी उनका जन्म दिन था। चैत्र शुक्ला पचमी को उन्होंने गृह त्याग कर साधु दीक्षा ली। तीन दिन निराहार रहने के पश्चात् ब्रह्मदत्त राजा के यहाँ गाय के दुग्ध का उनका आहार हुआ। जम्बु वृक्ष के नीचे उन्होंने तप करना प्रारम्भ किया। और अन्त मे माघ शुक्ला दशमी के दिन सष्या समय उन्हें कैवल्य प्राप्त हुआ। उन्होंने सम्भेदशिलर पर खड़े रहकर तप साधना की और अन्त मे उसी पर्वत से पोष सुदी एकम के दिन उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया।^१

१. सागर लाख करोरि पचास, बीते अजितनाथ परगास।

जितरिपु राजा विजया मात, गज लाछन हाटक समगात ॥१॥

पुरी अजोध्या जनम कल्याण, तीनि भवातर तें भयो जान।

धनक चारिसे साठे काय, लाख बहुसर पुरव आयु ॥२॥

बंश इषाक नवे गिनि धार, तीन दिवस अंतर आहार।

बेनु खीर पीयी मुनि देह, ब्रह्मदत्त नृप वनिता गेह ॥३॥

शेष पृष्ठ ८ पर

३ संभवनाथ

तीसरे तीर्थंकर संभवनाथ थे जो अजितनाथ के निर्वाण के लार्की वर्ष पश्चात् हुए । सावित्री नगरी के राजा बितारथ के यहाँ फागुण सुदी पूर्णिमा के दिन उनका जन्म हुआ । उनका वंश भी इशवाकु वंश था । उनका शरीर हेम वर्ण का था जो ४०० धनुष ऊँचा था । पर्याप्त समय तक राज्य सुख भोगने के पश्चात् चैत्र शुक्ल षष्ठी को वैराग्य ले लिया । साल वृक्ष के नीचे वे तपस्या करने लगे और अन्त में कालिक की पूर्णिमा को मध्याह्न वे कैवल्य हो गया । कालिक बुद्धी चतुर्थी को सम्मोदाचल से निर्वाण प्राप्त किया । निर्वाण प्राप्ति के समय वे खड्गासन अवस्था में थे । संभवनाथ का चिह्न घोड़ा है जो कवि के शब्दों में “तुरंग पवन मति ध्वज धाकार” है ।

४ अमिनन्दन नाथ

अमिनन्दन नाथ चतुर्थ तीर्थंकर हैं जिनका जन्म अयोध्या में इशवाकु वंश के राजा समरराय के यहाँ हुआ । उनकी वेह स्वर्ण के समान थी । माघ शुक्ल द्वादशी

जंशु वृक्ष तले तपु लियो, रत्नत्रय त्रत निर्मल कियो ।

समोसरण श्री जिनबर तनों, जोजन साडे ग्यारह भयों ॥४॥

बरननि सको प्रलप मोहि ज्ञान, सांभ समे भयी केवलज्ञान ।

बहुविधि राज विभूति बिलास, ताहि त्यागी पाई सुख राशि ॥५॥

सोरठा

ढाडे जोगाम्यास कियो सिद्ध सम्मेद पर ।

पहुँचे अविचल बास सकल करम वन दहन के ॥६॥

बोहा

जेष्ठ वदि मावस गरभ, जनम माघ सुदि नौमि ।

चैत्र सुदि पांचे सु तप, ध्यान अगनि कर्म होमि ॥७॥

माघ महीना शुक्ल पक्ष, ब्रह्ममी तिथि को ज्ञान ।

पूस उज्यारी प्रतिपदा, ता दिन प्रभु निर्वाण ॥८॥

के दिन उनका जन्म हुआ और उसी तिथि को घोर तप साधना के पश्चात् कैवल्य हुआ। अन्त में पौष शुक्ला चतुर्दशी को सम्मेदाचल से मोक्ष प्राप्त किया। अभिनन्दन स्वामी का चिह्न बन्दर है।

५ सुमतिनाथ

कवि ने अभिनन्दन नाथ की स्तुति के पश्चात् पाचवे तीर्थंकर सुमतिनाथ की स्तुति की है सुमति नाथ का प्रादुर्भावन जैन सन्तो को प्रतिबोध देने के लिये हुआ था। उनका जन्म कौशल देश के राजा मेघराय के यहाँ हुआ था। मंगला उनकी माता का नाम था। जिनका इशवाकु वंश था। वे सुवर्ण वर्ण की देह वाले थे। वैशाख शुक्ला नवमी के दिन उनका जन्म हुआ था। चैत्र शुक्ला एकादशी को उन्होंने राजा सम्पदा परिवार स्त्री एव पुत्र को छोड़ कर साधु दीक्षा ले ली। घोर तपः साधना एव विहार के पश्चात् उन्हें कैवल्य हो गया। वे सर्वज्ञ बन गये। देवों ने समवसरण की रचना की जहाँ से सुमतिनाथ ने जगत् को सुख शान्ति का सन्देश दिया और अन्त में कायोत्सर्ग अवस्था में निर्वाण प्राप्त किया।

६ पद्मप्रभु

ये छठे तीर्थंकर थे जो सुमति के निर्वाण के पश्चात् हुए। इनके पिता कोशाम्बरी के राजा थे जिनका नाम घुर था। रानी सुसीमा उनकी माता थी। कमल पद्मप्रभु का निशान है। फागुण कृष्णा चतुर्थी के दिन उनका जन्म हुआ। पद्मप्रभु भी अपनी राज्य सम्पदा को छोड़ कर कार्तिक बुदी तेरस के दिन मुनि दीक्षा धारण करली। वे दिगम्बर बन गये और घोर तपस्या करने लगे। पद्मप्रभु ने सर्व प्रथम प्रियगु वृक्ष के नीचे तपस्या की थी। मगलपुर के राजा सोमदत्त के यहाँ आपक' सर्व प्रथम आहार हुआ। बहुत वर्षों तक तप करने के पश्चात् कार्तिक सुदी तेरस के दिन ही कैवल्य हो गया। उस समय गोधूनि का समय था। सम्मेदाचल से लहगासन अवस्था में आपने निर्वाण प्राप्त किया।

७. सुपार्श्वनाथ

सुपार्श्वनाथ सातवे तीर्थंकर थे जिनका स्मरण मात्र ही दुःखों एवं अशान्ति का विनाशक है। वाराणसी नगरी के राजा के यहाँ जन्म हुआ। स्वस्तिक आपक लाक्षण है। आपकी देह नील वर्ण की थी। जन्म से ही वे तीन ज्ञान के धारी थे।

स्वस्तिक उनका निशान है। साधु बनने के पश्चात् उन्होंने काफी समय तक तपस्या की थी और अन्त में उन्हें कैवल्य हो गया। अपने समवसरण से उन्होंने शान्ति का सबको सन्देश सुनाया। फागुण बदी षष्ठी के शुभ दिन सम्मेदाचल से उन्हें निर्वाण प्राप्त हुआ।

८. चन्द्रप्रभ

घाठवे तीर्थंकर चन्द्रप्रभ हैं जिनकी स्तुति करते हुये कवि ने लिखा है कि चन्द्रप्रभ का जन्म पौष बदि ग्यारस के दिन चन्द्रपुरी के राजा महासेन एवं रानी लक्ष्मा के यहाँ हुआ। उनके पिता भी इक्ष्वाकु वंशी राजा थे। चन्द्रप्रभ को तीर्थंकर भवस्था पूर्व के सात जन्मों की लगातार तपः साधना के पश्चात् प्राप्त हुई थी। तीर्थंकर चन्द्रप्रभ को राज्यवैभव, परिवार एवं सम्पदा अच्छी नहीं लगी इसलिये फागुण बुदी सप्तमी के दिन उन्होंने वैराग्य धारण कर लिया। नाम वृक्ष के नीचे बैठकर वे ध्यान करने लगे। सर्व प्रथम चन्द्रदत्त के यहाँ आहार हुआ। लम्बे समय तक तपः साधना के पश्चात् उन्हें पहिले कैवल्य हुआ और फिर निर्वाण प्राप्त किया।

९. पुष्पदन्त

चन्द्रप्रभ के पश्चात् पुष्पदन्त हुये। जिनका जन्म पौष सुदी एकम को हुआ। उनका जन्म स्थान काकन्दी नगर था। सुग्रीव पिता एवं रामा माता का नाम था। उनका लाछन मगर है। उनके देह की आकृति चन्द्रमा के समान है। भादवा सुदी अष्टमी को पुष्पदन्त ने घर द्वार छोड़ कर वैराग्य धारण कर लिया तथा सर्व प्रथम गोरस का आहार लिया। तप साधना के पश्चात् उन्हें अगहन सुदी प्रतिपदा के दिन संध्या समय कैवल्य हुआ। उनके ८० गणधर थे जो उनके सन्देश की व्याख्या करते थे। उनके समोसरण की लम्बाई घाठ योजन प्रमाण थी। अन्त में सम्मेदाचल से कार्तिक सुदी द्वितीया के दिन निर्वाण प्राप्त किया।

१०. शीतलनाथ

दसवे तीर्थंकर शीतलनाथ स्वामी थे जिनका जन्म भागलपुर के राजा हृडरथ के यहाँ हुआ था। शीतलनाथ का शरीर नब्बे धनुष का था। पर्याप्त समय तक उनका मन सांसारिक कार्यों में नहीं लगा और आसोज सुदी अष्टमी को विगम्बर

दीक्षा धारण कर ली। कैवल्य प्राप्ति के पश्चात् इन्हें पीप बुदी चतुर्दशी को सम्मेलनाचल से निर्वाण की प्राप्ति हुई और सदा के लिये जन्म मरण के चक्कर से छूट गये। राज्य शासन करते हुए इन्हें वैराग्य उत्पन्न हुआ था। शीतलनाथ का वर्णन ६ पद्यों में समाप्त होता है।

११. श्रेयान्स नाथ

एक लम्बे अन्तराल के पश्चात् भारत देश के धार्य खण्ड में सिधपुरी के राजा विभव के यहाँ श्रेयान्सनाथ का जन्म हुआ। उस दिन फागुण बुदी एकादशी थी। इनकी देह का रंग स्वर्ण के समान था। पहिले इन्होंने राज्य सुख भोगा और फिर श्रावण सुदी पूर्णिमा के दिन घर बार त्याग करके दिगम्बरी दीक्षा धारण कर ली। सर्व प्रथम ये तेंदू वृक्ष की सघन छाया में बैठकर ध्यानासन्न हुये और अन्त में फागुण सुदी एकादशी की प्रभात बेला मगल बेला में सर्वज्ञता प्राप्त की। सम्मेलनाचल पर ये ध्यानास्थ हुये और माघ बुदी अमावस के दिन मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त किया।

१२ बासुपूज्य स्वामी

बासुपूज्य स्वामी १२ वें तीर्थंकर थे। उनका जन्म चंपापुरी नगरी में हुआ था। फागुण बदि चतुर्दशी उनकी जन्म तिथि मानी जाती है। उनकी माता का नाम जयादेवी था। पर्याप्त समय तक गृहस्थाश्रम में रहने के पश्चात् भादवा सुदी चौदश को उन्होंने गृह त्याग दिया। उसी समय केश लोच किया मुनि दीक्षा धारण कर ली। सिद्धार्थ पुरी के राजा सुन्दर के यहाँ गाय के दूध का आहार किया। कोष्ठाम्बी नगर में बासुपूज्य स्वामी को कैवल्य प्राप्त हुआ। कैवल्य के पश्चात् उनका देश के विविध भागों में विहार हुआ और अन्त में माघ सुदी पंचमी को निर्वाण प्राप्त किया। बासुपूज्य तीर्थंकर का मीसा चिह्न माना गया है।

१३ विमलनाथ

कपिलापुरी में जन्म लेने वाले विमलनाथ १३ वें तीर्थंकर हैं। उनके पिता राजा कृतवर्मा एवं रानी श्यामा माता थी। वे इशवाकु वंशीय क्षत्रिय थे। विमलनाथ का शरीर स्वर्ण के समान था। विमलनाथ भी राज्य सुख से घृणा करने लगे और तपस्या के लिये घर बार छोड़ दिया और जंबु वृक्ष के नीचे तपः साधना

करने लगे। पाटन के वीर राजा के यहाँ उनका प्रथम आहार हुआ। जब उन्हें कैवल्य हुआ तो उस समय संख्या काल था। देवी द्वारा उनका समवसर्ण लगाया गया। अन्त में उन्होंने सम्मेदशिलर से महानिर्वाण प्राप्त किया। उस समय वे खड्गासन अवस्था में तपः लीन थे। उस दिन चैत्र बुदी अमावस्या थी। विमल नाथ का लाक्षण सुधर है।

१४ अनन्तनाथ

अनन्तनाथ १४ वें तीर्थंकर थे जो विमल नाथ के पश्चात् माघ शुक्ला तेरस के शुभ दिन पैदा हुए थे। वे इश्वानु वशीय क्षत्रिय थे। जन्म में ही तीन ज्ञान के धारी थे उन्हें राज्य सम्पदा अच्छी नहीं लगी इसलिये वैराग्य लेने का निश्चय किया। चैत्र बदी अमावस्या के दिन गृह त्याग कर निर्ग्रन्थ साधु बन गये। घोर तपस्या के पश्चात् ज्येष्ठ कृष्णा एकादशी को कैवल्य हो गया। उनके गणधरो की संख्या ५४ थी। सम्मेदशिलर से उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया।

१५ धर्मनाथ

धर्मनाथ १५वें तीर्थंकर थे। रतनपुरी के राजा भानु के घर माघ शुक्ला १३ के दिन उनका जन्म हुआ। वे कुंभ वशीय क्षत्रिय थे। जन्म में ही तीन विशिष्ट ज्ञान के धारी थे। उनके जन्म के दिन माघ शुक्ला तेरस थी। वे भी योग धारण कर बन में घोर तपस्या करने लगे। जब उन्हें कैवल्य हुआ तो उनके गणधरो की संख्या ४० थी। अन्त में सम्मेदशिलर से उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया।

१६ शान्तिनाथ

इस युग के १६ वें तीर्थंकर शान्तिनाथ थे। उनका जन्म गजपुर के राजा विश्वसेन के यहाँ जेठ बुदी १४ को हुआ। उनकी माता का नाम ऐरादेवी था। वे कुरुवशी क्षत्रिय थे। उनका शरीर स्वर्ण के समान चमकता था। जब वे राज्य सम्पदा से ऊब गये तो सब को छोड़ कर दिनाम्बर साधु बन गये। ज्येष्ठ बदी १३ के दिन उन्हें कैवल्य हो गया। वे सर्वज्ञ बन गये। उस समय संख्या काल था। उनके गणधरो की संख्या ३६ थी। अन्त में सम्मेदाचल से जेठ बुदी १४ के दिन निर्वाण प्राप्त किया।

१७ कुंधनाथ

कुंधनाथ १७ वें तीर्थंकर थे। जिन्होंने सम्मेदाचल से निर्वाण प्राप्त किया। बकरी इनका लक्षण माना जाता है।

१८ अर नाथ

कुंध नाथ के पश्चात् अरनाथ तीर्थंकर हुए। राजा सुदर्शन इनके पिता एवं देवी इनकी माता थी। स्वरितक इनका लक्षण है। चैत्र शुक्ला पूर्णिमा को कैवल्य एवं अगहन सुदी प्रतिपदा को इन्हें मोक्ष की प्राप्ति हुई।

१९ मल्लिनाथ

मल्लिनाथ १९ वें तीर्थंकर थे। मिथिला पुरी के राजा क्रुभ एवं रानी प्रमा-
वती के पुत्र के रूप में इनका जन्म हुआ। इनकी काया स्वर्ण के समान निर्मल थी। कुमारकाल के पश्चात् इन्हे जाति स्मरण होने से वैराग्य हो गया। और अशोक वृक्ष के नीचे इन्होंने दीक्षा धारण कर ली। ये जीवन पर्यंत अविवाहित रहे। कहापुर के राजा नन्दसेन को मल्लिनाथ को आहार देने का सर्व प्रथम सौभाग्य प्राप्त हुआ। इनको जन्म, तप और केवल्य एक ही तिथि पौष बदी २ को प्राप्त हुआ। अन्त में फागुण सुदी पञ्चमी को इन्होंने सम्मेदाचल से निर्वाण प्राप्त किया।

२० मुनिसुवत नाथ

मल्लिनाथ के पश्चात् २० वें तीर्थंकर मुनि सुवत नाथ हुये जिनकी कवि ने वन्दना की है। राजग्रही नगरी के राजा सुमतिराय इनके पिता थे तथा उनकी रानी पद्मावती माता थी। मुनि दीक्षा लेने के पश्चात् सर्व प्रथम मिथिला के राजा विप्रव-
सेन के यहाँ इनका आहार हुआ। वैशाख बुदी ९ के शुभ दिन उन्हें कैवल्य हुआ और फागुण बदी एकादशी के दिन सम्मेदाचल से मोक्ष प्राप्त किया।

२१ नमिनाथ

नामिनाथ २१ वें तीर्थंकर हुये जिनका जन्म वाराणसी नगरी में आषाढ बही दशमी के दिन हुआ। देवी एवं मनुष्यो तथा तिर्यक्तो ने भी इनका जन्म महोत्सव मनाया। अन्त में वैशाख बदी १४ को सम्मेदाचल से निर्वाण प्राप्त किया। इनके १३ गणधर थे।

२२ नेमिनाथ

ये २२ वें तीर्थंकर थे। द्वारावती के राजा समुद्रविजय पिता एवं रानी शिवा-
देवी इनकी माता थी। जब ये विवाह पर जाने के लिये तोरण द्वार पर पहुँचे तो
पशुभो की पुकार सुनकर बैराग्य हो गया तथा मुनि दीक्षा धारण कर ली। श्रीर
गिरिनार पर्वत पर जाकर तप करने लगे। कार्तिक शुक्ला ११ को इन्हें कैवल्य हो
गया। इनके ११ प्रमुख शिष्य थे जो गणधर कहलाते थे। अन्त में गिरिनार पर्वत
से आषाढ शुक्ला अष्टमी को निर्वाण प्राप्त किया।

२३ पार्श्व नाथ

पार्श्वनाथ २३ वें तीर्थंकर थे जिनका यशोगाम चारों ओर विद्यमान है।
बाराणसी में राजा प्रभवसेन के यहाँ इनका जन्म हुआ। वामा देवी इनकी माता थी।
इनकी शारीरिक ऊँचाई बी हाथ की थी तथा १०० वर्ष की आयु थी। तीर्थंकर पद
प्राप्त करने के लिये इन्हें ११ पूर्व जन्मों से तपः साधना करनी पड़ी श्रीर पौष बुदी
११ को ये अविवाहित रहते हुए जिन दीक्षा धारण ली। मुनि बनने के पश्चात्
राजा घनदत्त के यहाँ इनका प्रथम आहार हुआ। चैत्र बुदी ४ को कैवल्य हुआ।
इनके दश गणधर थे। अन्त में खड्गावस्था में ही आकर शुक्ला सप्तमी के दिन
निर्वाण प्राप्त किया। इनका निर्वाण स्थल सम्भेदशिखर का उत्तुंग शिखर माना
जाता है।

२४ महावीर

महावीर इस युग के अन्तिम तीर्थंकर थे जो पार्श्वनाथ के पश्चात्
हुये थे। कुंडलपुर नगरी के राजा सिद्धार्थ एवं रानी त्रिशला के पुत्र रूप में चैत्र
शुक्ला १३ को इनका जन्म हुआ। इनका मन राज्य कार्य में नहीं लगा। ये भी
अविवाहित ही रहे। मगसिर कृष्णा १० के दिन इन्होंने राज्य कार्य परिवार को
छोड़कर वन में जाकर मुनि दीक्षा धारण कर ली। उस समय इनकी आयु ३० वर्ष
की थी। १२ वर्ष तक घोर तपस्या के पश्चात् वैशाख शुक्ला १३ को इन्हें कैवल्य
प्राप्त हो गया। वे ३० वर्ष तक लगातार विहार कर जन २ को मार्ग दर्शन देने के
पश्चात् कार्तिक कृष्णा अमावस्या के दिन पाषापुरी से इन्होंने मोक्ष प्राप्त
किया।

कवि ने सभी २४ तीर्थंकरों की स्तुति करते हुए लिखा है जो व्यक्ति उनकी मन वचन काय से प्रातः एवं सायं स्तुति करते हैं उनके मिथ्यात्व रूपी अन्धकार स्वयं दूर हो जाता है ।

ए चौबिस जिनेश्वर नाम, बोले सदा सुमरण के काम ।

जो मन बच सका प्रातः, सुमिरै फटे तिमिर मिथ्यात ॥

चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति के पश्चात् कवि ने मध्यलोक एवं उर्ध्वलोक के सभी जिन जैत्यालयों की वन्दना की है जो सभी अकृत्रिम हैं शाश्वत हैं एवं जिनकी वन्दना मंगलकारी है । मंगलाचरण के अन्त में सरस्वती की वन्दना की है जो श्वेत वस्त्रधारी है । बीणा से सुशीलित है । वास्तव में तीर्थंकर मुख से निकली हुई वारणी ही सरस्वती है । वही कवियों की जननी है ।^१

मंगलाचरण के पश्चात् कवि जैसवाल जाति की उत्पत्ति का इतिहास कहना प्रारम्भ करता है^२ और उसके प्रसंग में तीनों लोकों का वर्णन करता है । लेकिन कवि ने तीनों लोकों का वर्णन करने के साथ अपनी लघुता प्रकट की है साथ में यह भी कहा है कि यदि विस्तार से इनका कथन समझना चाहें तो बड़े ग्रंथों को देखना चाहिये ।^३

मध्य लोक में असख्यात द्वीप समुद्र हैं इसमें अठ्ठाई द्वीप में जंबूद्वीप है जो एक लाख योजन विस्तार वाला है । उसके मध्य में सुदर्शन मेरु पर्वत है उसके उत्तर दक्षिण भाग पर भरत ऐरावत क्षेत्र है मानुषोत्तर पर्वत के वर्णन के पश्चात् असख्यात अनन्त का गणित भेद, योजन गणित भेद, पश्यायु भेद, पत्यसागर भेद

- १ श्वेत वस्त्र करि बीना लसें, सुमति रजाह कूमति सब नसें ।
मुख जिन उद्भव मंगल रूप, कवि जननी और परम अनूप ॥
२. नमिता चरण सकल दुख दहों, जैसवाल उतपति सब कहों ।
अधो मधि है लोकाकाश, पुरुषाकार बलानें तास ॥६॥
३. अत्य बुद्धि सूजम मन ग्यान, अठ्ठाई द्वीप तनों बलान ।
करयो संक्षेप पनै विस्तार, व्योरो कहत ग्रंथ अधिकार ॥
जाकौ सब व्योरे की चाह, बड़े ग्रंथ देखो अथवाह ॥२६॥

आदि का वर्णन किया गया है। कवि ने पूरव गणित के लिये निम्न संख्या लिखी है—

सत्तारि लाख करोरि मित, छप्पन सहस करोरि ।

इतने वरष मिलाइयै, पूरव संख्या जोरि ॥१॥

षट्काल वर्णन

कवि ने छह काल का वर्णन किया है। ये काल हैं सुषमा सुषमा, सुषमा, सुषमा दुषमा, दुषमा सुषमा, दुखमा एवं दुषमा दुषमा। ये काल चक्र कहलाते हैं

प्रथम तीन काल भोग भूमि काल कहलाते हैं जिसमें मानव कल्पवृक्षों के आश्रय पर अपना जीवन व्यतीत करता है। अपनी सम्पूर्णा आवश्यकताएं उन्हीं से पूर्ण करता है। ये कल्पवृक्ष दस प्रकार के बतलाये गये हैं।

सो तरु दश प्रकार बरनये, तिनिके नाम सुनी गुण जयो ।

सूरज मध्य विभूषा जानि, स्नग अरु ज्योति द्विप गुण खानि ।

गृह भोजन भाजन अरु भास, सुनि अरु इनको दान प्रकाश ॥१॥

कल्पवृक्षों से जब इच्छानुसार वस्तुये मिल जाती है तो जीवन सुख शान्ति से व्यतीत होता है। प्रथम सुषमा सुषमा काल में माता के युगल सन्तान पैदा होती है और पैदा होते ही माता पिता की आयु समाप्त हो जाती हैं। माता को स्त्रीक आती है और पिता जमाई लेता है। यह दोनों ही मृत्यु का सूचक है। पैदा होने वाले युगल अगूठा पीकर बड़े होते हैं। वे पति पत्नि के रूप में रहने लगते हैं। प्रथम काल में तीन दिन में एक बार, दूसरे सुषमा काल में दो दिन में एक बार तथा तीसरे काल में एक दिन छोड़कर आहार ग्रहण करते हैं।

तीसरे काल का जब अष्टम अंश शेष रहता है तब कल्प वृक्ष नष्ट होने लगते हैं तब कुलकर जन्म लेते हैं जो मनु कहलाते हैं। वे कुलकर मानव समाज की प्राकृतिक विपत्तियों से सचेत करते हैं तथा मनुष्य को जीने की कला सिखलाते हैं।¹

१. लोपे होइ कल्प द्रुम ज्यौ ज्यौ, कुलकर भाषे भाषे त्यों त्यों ।

भाषी काल बखानं यथा, कहै सकल जीवनि सौं कथा ॥२८॥

ये कुलकर चौदह होते हैं जो एक के बाद दूसरे होते रहते हैं । प्रथम कुलकर का नाम प्रतिश्रुत था तथा अन्तिम नाभि थे ।

षट्पुत्र काल कर्म भूमि काल कहलाता है जिसमें मुक्ति का मार्ग खुल जाता है तथा मानव अग्नि मणि कृषि वाणिज्य आदि विद्याओं द्वारा अपनी आजीविका चलाता है । एक साथ पैदा होना एवं मरना मिट जाता है । वर्षा होती है खेती होती है लेकिन सदैव सुकाल रहता है ।

पञ्चम काल दुषमा काल का ही दूसरा नाम है जो २१ हजार वर्ष का होता है । वर्तमान में पञ्चम काल चल रहा है । इस काल में मुक्ति के द्वार बन्द हो जाते हैं । मनुष्य की आयु १२० वर्ष की होती है, जो जैसा कर्म करता है उसी के अनुसार आयु के तीसरे भाग में अगले भव का बन्ध हाता है । शरीर का त्याग करते ही दूसरा शरीर मिल जाता है ।

षष्ठम काल में कृषि के माध्यम से शरीर का पोषण होगा । सुकाल कम हूँगे दुष्काल अधिक । मानव की एक बार के भोजन में मूल नहीं मिटेगी किन्तु दिन में दो तीन बार खाते रहेंगे । मध्यम वर्षा होगी ।¹

षष्ठम काल इससे भी भयंकर होगा । उसमें सब मर्यादाएँ समाप्त हो जावेंगी । यह काल भी २१ हजार वर्ष का होगा । कृषि का विनाश हो जायेगा । एक जीव दूसरे जीव का आहार करेगा ।

प्रथम तीर्थंकर का जन्म

उक्त वर्णन के पश्चात् कवि चौदह कुलकरो में से अन्तिम कुलकर नाभि राजा से अपना कथन प्रारम्भ करता है । नाभिराजा विशिष्ट ज्ञान के धारी थे । उनकी रानी का नाम मरुदेवी था । इन्द्र ने जब जाना कि मरुदेवी के उदर से प्रथम तीर्थंकर जन्म लेने वाले हैं तो उसने नगरी को सब तरह से सुसज्जित बनाने का आदेश दिया । मरुदेवी ने एक रात्रि को सोलह स्वप्न देखे । जब उसने नाभि राजा से उनका पूल पूछा तो यह जानकर अत्यधिक प्रसन्नता हुई कि वह प्रथम तीर्थंकर की माता बनने वाली है ।

चैत्र कृष्ण नवमी के शुभ दिन आदिनाथ का जन्म हुआ । देवताओं एवं मानवों ने जिस उत्साह एवं प्रसन्नता के साथ जन्मोत्सव मनाया, कवि ने उसका ४७ बोहा

श्रीपाई अन्द में बहुत ही मनोरम बरान किया है। ऋषभदेव धीरे धीरे बड़े हुए। उनकी बाल सुलभ क्रीडा सबको प्रिय लगती थी। ऋषभदेव युवा हुये। राज्य कार्य में सबको सहयोग देने लगे। अन्त में नाभि ने ऋषभदेव को राज्यसिंहासन पर अभिषिक्त किया। ऋषभदेव ने इस युग में सर्व प्रथम विवाह की प्रक्रिया प्रारम्भ की। किसीकी का लड़का एव किसी की लड़की को लेकर दोनों का विवाह कर दिया। इस प्रकार विवाह सस्था को जन्म दिया।^१ स्वयं ऋषभ का भी कच्छ महाकच्छ की पुत्रिया नन्दा यशस्वती से विवाह सम्पन्न हुआ। जिससे भागे ससार चलता रहे।^२

वैहे प्रमु की व्याही राय, आनन्द मगलचार कराय।

भोग विलास करत सतोष, तब सबभिराणी को कोष ॥३६॥२०॥

ऋषभदेव के यशस्वती रानी से भरत आदि १०० पुत्र एव ब्राह्मी पुत्री तथा नन्दा से बाहुबली पुत्र एवं मुन्दरी पुत्री हुई। भरत बड़े हुए। वे बड़े प्रतापी एव योद्धा थे। जब प्रजा भूखे मरने लगी तो ऋषभदेव ने इक्षु उगाने की विधि बतलाई। अपने ही वंश में विवाह करने ही उन्होंने मनायी की। कुछ समय पश्चात् ऋषभदेव ने भरत को राज सम्हना कर वैराग्य धारण कर लिया।

स्वयम्बर की प्रथा

वाराणसी नगरी का अकपन राजा था उसे सब सेनापति कहते थे। उसके एक लड़की सुलोचना थी। वह भरत के पास आकर प्रार्थना कि उसकी लड़की विवाह योग्य हो गयी इसलिये उसके लिये कोई वर बतलाइये। भरत ने सोच समझ कर स्वयम्बर रचने के लिये कहा।

वरमाला कन्या की देहु, पुत्री निज इच्छा वर लेहु।

ताही वरत कोऊ मानै बुरी, ताकी मान मग सब करी ॥४५॥२०॥

इस प्रकार स्वयम्बर प्रथा की नींव रखी गयी।

१. तृप्ति नहीं भक्षे एक वेर, जेवें दुपहर सांभ सवेर।

मध्यम वृष्टि मेघ सब करै, घर्म विद्धिपति तहीं परवरे ॥४७॥१४॥

२. पुत्री काहू की आनिये, सुत काहूँ को तहा बुलाय।

करे विवाह लगन शुभवार, इह विधि बड़त चल्थी ससार ॥११॥१६॥

वैराग्य

एक दिन राजसभा में ऋषभदेव सिंहासन पर बैठे थे । नीलाजसा अपसरा का नृत्य हो रहा था । कवि ने उसे नटी की सजा दी है तथा प्राये पातुरी कहा है । ये तत्कालीन शब्द थे जो राज्य सभामें नृत्य करने वाली के लिए प्रयुक्त किये जाते थे । अचानक नीलाजसा नृत्य करती हुई गिर गयी इससे प्रभु को वैराग्य ही गया वे बारह भावनाओं के माध्यम से ससार के स्वरूप पर विचार करने लगे । कोष में इन भावनाओं बहुत ही उपयोगी एवं बिस्तृत वर्णन हुआ है । जो कवि की विषय वर्णन करने की शक्ति की धीर सकेत करता है ।^१ ऋषभदेव के वैराग्य के समाचार सुनते ही स्वर्ग से लीलातिव देव तत्काल वहाँ प्राये धीर उनके वैराग्य भावना की प्रशंसा करने लगे ।

उसी समय ऋषभदेव ने भरत का राज्याभिषेक किया । बाहुवली को पौदनपुर का राज्य दिया तथा अपने दूसरे पुत्रों को भी उनकी इच्छानुसार राज्य बाँट दिया । सब भाई भरत की सेवा में रहने लगे । उस दिन चैत्र कृष्णा नवमी थी । ऋषभदेव ने एक विराट समारोह के मध्य वैराग्य धारण कर लिया । सब प्रकार के परिग्रह को त्याग कर वे निर्ग्रन्थ दिग्म्बर हो गये । केश लुञ्चन किया । तथा सब प्रकार के पारवागिक एवं ग्रन्थ सम्बन्धों से अपने प्राप को मुक्त करके पंच महाव्रत धारण कर लिये ।^२ परम दिग्म्बर ऋषभदेव को स्वयमेव आठ प्रकार की ऋद्धियाँ प्राप्त हो गयी ।^३ जिनके कारण उनको अघार शक्ति मिल गयी । कवि ने इन ऋद्धियों का विस्तार से वर्णन किया है । जैसे बीज बुद्धि ऋद्धि के उदय से एक पद पढ़ने से अनेक पदों का ज्ञान हो जाना तथा एक श्लोक का अर्थ जानने से पूरा ग्रन्थ का ज्ञान स्वयमेव हो जाना बुद्धि ऋद्धि का फल होता है—

बीज बुद्धि जब उदय कराइ, पढत एक पद श्री जिनराय ।
पद अनेक की प्रापति होय, यह या बुद्धि तनो फल जोइ ।
एक श्लोक अर्थ पद सुने, पूरण ग्रन्थ आपत्तें भनै ॥३१॥२७।

-
१. ए शुचि बारह भावना, जिन लें मुक्तिनि वास ।
बी जिनकर के चित्त में, सब ही भयो प्रकाश ॥६॥२६ ॥
 २. मडे पंच महाव्रत धीर, त्यागी सकल परिग्रह जोर ॥१४/१५ २६॥
 ३. बुद्धि औपधी बल तप धार, रस विन्धिय क्षेत्र क्रिया सार ॥१८॥२६ ॥

तप ऋद्धि के प्रसंग में श्रुतस्कंध व्रत वर्णन में आचार्य कुन्दकुन्द के पांच नामों की उत्पत्ति कथा, विदेह क्षेत्र गमन, भट्टारक पद स्थापन आदि का गद्य में अच्छा वर्णन दिया है।

कवि ने सभी कल्याणको के वर्णन का आधार जिनसेनाचार्य कृत आदिपुराण को बनाया है जिसका स्वयं कवि ने उल्लेख किया है—

अल्प बुद्धि बरणों सक्षेप, आदि पुराण मिटै भ्रम वेपु।

बारह बिधि तपु कीनी ईश, जगत शिरोमनि श्री जगदीश ॥३८/५६

ज्ञान कल्याणक

ऋषभदेव को कैवल्य होते ही समोसरन की रचना की गयी। जिसका वर्णन कवि ने विस्तार से किया है। यद्यपि उसने अपने को अल्पबुद्धि लिखा है। लेकिन समवसरण का वर्णन उसने १७४ पद्यों में लिखा है। ऋषभदेव ने अपना उपदेश मागधी भाषा में दिया था।^१ सात तत्व एव नौ पदार्थों के विस्तृत परिचय के लिये कवि ने हेमराज कृत कर्मकांड, पचास्तिकाय ग्रंथों को देखने के लिये लिखा है।^२ इसके पश्चात् सात तत्व एव नव पदार्थ का विस्तृत वर्णन किया है—

जीव अजीव और आश्रव सवर निर्जर बध।

मोक्ष मिलें ए जानियें, सप्त तत्व सबध ॥१॥

पुन्य पाप हैं ए जुदे, नव इनि मांहि मिलाइ।

जिनबानी नव पद विमल, सो बरणो मुनि ताहि ॥२॥६३॥

जीव तत्व के वर्णन में कवि ने सात प्रकार के समुद्घातो का वर्णन किया है।^३ ये हैं जीव वेदना समुद्घात, कथाय समुद्घात, वैक्रियक समुद्घात, मरणांतिक समुद्घात, तेजस समुद्घात, आहारक समुद्घात, केवल समुद्घात, इसके पश्चात् सात प्रकार के

१. मुख्य मागधी भाषा जानि, सबके सुनत होई दुख हानि ॥६६/६३.

२. जो कोई इनि सातनि कौ भेद, व्योरी चाहों जो तजि खेव।

कर्मकांड पंचसुकाय, हेमराज कृत खोजो मांहि ॥७४॥६३॥

३. समुद्घात हैं सात प्रकार तिन के भेद सुनो तुम सार ॥२७॥६६॥

संयम स्थानों का वर्णन मिलता है ।^१ दर्शन स्थान का वर्णन के पश्चात् छह लेख्यों पर विस्तृत विचार किया गया है । कृष्ण, नील, करोत, पीत पद्म और शुक्ल लेख्या को निम्न उदाहरण द्वारा समझाया है—

सुनी एक इनिको हृष्टात, प्रकटै विमल, बोध की कांत ।
 गए पुरुष छह बनह मन्हार, भ्रात्र वृक्ष फल देख्यो सार ॥२६॥
 सघन शुभ्रम भर बहु फल पर्यो, जाकी छांह पथिक श्रम हुर्यो ।
 खेबट प्राणी तउ तरजाइ, फल भक्षण की ईछा भाई ॥३०॥
 कृष्ण धनी कहै जर काटिये, पीछे वांके फल बाटिये ।
 तब बोल्यो भ्रंग जाके नील, गोदें काटत करी न डील ॥३१॥
 था तरु की काटी सब डारि, कहि कापोत धनी निहारि ।
 गुच्छा तोरि लेहु रे मीत, यौ भावै जाके उर प्रीति ॥३२॥
 धीन लेहु पके फल सबै, बोल्यो पद्म धनी यह तबै ।
 गिरि लेहु मति लाउ हाथ, कहै सुकल वारी गाथ ॥३३॥
 धरि घट लेस्यां स्वांग भनूप, नाचत फिरें जीव बिद्रूप ।
 काल भनाधि गये इंहि भाति, घातम भनुभौ विना नसांत ॥३४॥७०

चौदह गुणस्थानों का भी वर्णन करके कवि ने चौदह जीव समासों का वर्णन किया है ।^२ ये सब दार्शनिक वर्णन हैं जिसे कवि ने अपने ग्रंथ में स्थान दिया है । ऐसा लगता है कवि ने गोमटसार जीवकांड को अपने कथन का मुख्य आधार बनाया है ।

पंच परावर्तन, एवं जाति स्थानों के वर्णन के पश्चात् कवि चार प्रकार के ध्यानों का वर्णन प्रारम्भ करता है ।

१. संजम और असजम जानि, छेदोपस्थापन परमान ।
 जनाख्यात सामायिक भ्रंग, सूक्ष्म सांपराय गुण चंग
 परिहार विभुद्धि कहौ संजमा, सांतीं स्वांग धरै घातमा । ८२॥६८॥
२. एई चौदह जीव समास, करै घातमा तहौ निवास ।
 जो ली ससारी कहबाइ, तोलीं इनमें भ्रमन कराइ ॥१०॥११॥७३॥

ध्यान का स्वरूप

रौद्र ध्यान वाला प्राणी हिंसा करने में आनन्दित होता है, चोरी करता है, झूठ बोल कर प्रसन्न होता है। विषयो के सेवन में अपना कल्याण मानता है। ये चारों रौद्र ध्यान के अंग हैं।^१ पृथ्वी, अग्नि, वायु, जलतरंगों का भी प्रस्तुत अर्थ में वर्णन हुआ है।

पिंडस्थान ध्यान पदस्थ ध्यान मोक्ष मार्ग का साधक है। कवि ने पदस्थ ध्यान का वर्णन विभिन्न मंत्रों के साथ किया है। इन मंत्रों में ह्रींकार मंत्र, अपराजितमंत्र^२, षोडशाक्षर मंत्र^३, षडाक्षरीमंत्र^४, चतुर्वर्णमंत्र^५, बीजाक्षरमंत्र^६, अक्षरमंगलमंत्र^७, त्रयोदशाक्षरमंत्र^८, सप्ताक्षरमंत्र^९, पञ्चाक्षरमंत्र^{१०},

१. हिंसा करत चित्त आनंद, चोरी साधत हिए ननद ।
बोलत झूठ सुणी बहू होइ, सेवत विषय दुलासी जोइ ।
रौद्र ध्यान के चारों अंग, कर्म बध के हेतु अमंग ॥६६॥७६.
२. एक शत आठ वार जो जपें, प्रभुता करि सब जग में दिपे ।
एक उपास जुती फल होइ, कर्म कालिमा डारे छोइ ॥४३॥८०॥
३. अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः
करि एकाग्र चित्त अरि प्रीति, होइ उपवास तनों फल मीत ॥४६॥
४. अरहंत सिद्ध इति षडाक्षरी मंत्र
५. अरहत इति चतुर्वर्णमंत्र
६. ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं इति आऊसा नमः इति बीजाक्षर मंत्र ।
७. मंगल सरण लोकतम जानि, चारि भाति करि कीयो वखान ।
ध्यावे अपें चित्त की ठोर, ताकी मुक्ति रमणि वरें दोरि ॥५४॥८०
८. ॐ अरहंत सिद्धासयोग केवली स्वाहा । इति त्रयोदशाक्षर मंत्र ।
९. ॐ ह्रीं श्रीं अर्हन्मः । इति सप्ताक्षर मंत्र ।
१०. नमो सिद्धाण

चन्द्ररेखामंत्र^१, श्रीवर्णमंत्र^२, पापभञ्जिणी विद्या मंत्र, अस्ति अङ्गुला मंत्र, सिद्ध मंत्र आदि का अष्टादश वर्णन मिलता है। जान पड़ता है कवि मंत्र शास्त्र के भी अच्छे ज्ञाता थे।

कवि ने रूपस्थध्यान एवं रूपातीत ध्यान^३, का भी वर्णन किया है।

ध्यान का वर्णन करने के पश्चात् कवि ने जीव की विभिन्न जातियों की संख्या का वर्णन किया है।

नर पशु नारक भी सुरदेव, लाख बीरासी जाति कहेव।

इतने रूप चिदानन्द धरें, जाति स्थान नाम परि बरें ॥१८/८३.

षट् द्रव्य वर्णन

अजीव तत्त्व पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इस प्रकार पांच प्रकार का है। पुद्गल द्रव्य मूर्तिक तथा शेष अमूर्तिक हैं।^४ शब्द भी पुद्गल द्रव्य का ही एक पर्याय है तथा वह मूर्तिक है^५ इनके पश्चात् कवि ने शेष द्रव्यों का संक्षिप्त वर्णन किया है।

षट् द्रव्यों का वर्णन के पश्चात् आठ कर्मों की प्रकृतियों का वर्णन किया गया

१. ॐ नमो अरहंताण इति मंत्र ,

२. ॐ ह्रीं ऽ श्री वर्णमंत्रः

राज रहित इंद्रि रहित सकल कर्म नसाइ।

जीन तनी विश्राम यह, रूपातीत कहाइ ॥१५॥८३.

३. इह रूपस्थ अनूप गुण जिन सम आतम ध्यान।

करि यांकी अभ्यास मुनि, पावै पद निरवान ॥४॥ ८३

४. पुद्गल धर्माधर्म आकाश, काल मिलें पाची परकार।

है अजीव इतिकी नाम, तिनि ने मूरति पुद्गल धाम ॥४४/८४॥

५. सुनि पुद्गल के सकल पर्याय, प्रथम शब्द भाष्यो जिनराज।

शब्द कहे वरण तम रूप, पुद्गल की पर्याय अनूप ॥४६/८४॥

है। जैन वर्णन कर्म प्रधान दर्शन है। जैसा यह जीव कर्म करता है उसे वैसा ही फल भोगना पड़ता है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, धायु, नाम, गोन और अन्तराय के भेद से आठ प्रकार के एक प्रकृतियो सहित १४८ भेद है। इसके पश्चात् प्रकृतियों के गुणों का विस्तृत वर्णन मिलता है जिसमें कवि में अगाध सैद्धान्तिक ज्ञान होने का प्रमाण मिलता है। प्रचला दर्शनावरण प्रकृति का लक्षण देखिये—

प्राणी जहाँ नीद बसि भाइ, महा अंचल हाथरू पाइ ।

नेत्र मात्र सब वैक्रिय होइ, मानो भार सिर जोइ ॥४७॥

करें नीद जब सहि विशेष, तब प्रम रेत भरे से देखि ।

मुद्रित मुकुलित भावें भाव, प्रचला दरशनावरण अगाध ॥४८/१०॥

प्रकृति गुणों के विस्तृत वर्णन के पश्चात् कवि ने चौदह गुणस्थानों की प्रकृति भेदों का वर्णन किया है।

सात तत्वों का स्वरूप

सात तत्वों में जीव, अजीव, आसव, बंध सवर, निर्जरा और मोक्ष तत्व गिने जाते हैं। जीव, अजीव तत्व का तो पहिले विस्तृत वर्णन किया जा चुका है इसलिये कवि ने आसव तत्व का विभिन्न दृष्टियों से व्याख्या की है। हास्य प्रकृति आसव के निम्न क्रियाओं के कारण होता है—

धर्मो जन घर दीन निहार, तारी वे तहाँ हंसे गंवार ।

मदन हास्य घर करे प्रलाप, धर्म जज्ञ लखि लोचनराय ॥२५॥

इन तें हास्य प्रकृति जु बधाइ, कही प्रगट श्री गौतमराय ।

बैठे देखे नर तिय सग, मिथ्याचार लगावें नग ॥२६/१०॥

मनुष्य जीवन कब किसे मिलता है यह एक विचारणीय प्रश्न है जिसका कवि ने निम्न प्रकार समाधान दिया है—

स्वस्फारंभ परिग्रह जान, भद्र प्रकृतियों चारि मानि ।

कृष्णा घनी आर्य परिणाम, धुलि रेल सम धीसे ताम ॥४८॥

पर दोषी न कुकर्म हि करें, मधुर वचन मुख तें उचरें ।

कानन सून्यो होइ जो दोष, भूलनि कबहु भावें दोष ॥४९॥

देव गृहनि कौ पूजे सदा, निसि भोजन माँक नही कदा ।

शुभ ध्यानी लेखा कापोत, बध मनुष्य आयु को हीत ॥२०/१०८॥

इस प्रकार कवि ने दार्शनिक एवं सौदामनिक वर्णन भगवान ऋषभदेव के ज्ञान कल्याणक के अन्तर्गत किया है । निर्वाण कल्याणक वर्णन में कवि ने दान की उप-योगिता पर विस्तृत प्रकाश डाला है । दान भी पात्र कुपात्र देखकर दिया जाना चाहिये । कुपात्र को दिया हुआ दान निष्फल जाता है । कवि के अनुसार साधु को दिया हुआ भोजन (आहार) उत्तम दान है । साधुओं को दिया हुआ दान मध्यम दाना है जिसके जनों को दिया हुआ दान तो एक दम व्यर्थ है । जिस प्रकार किसान भूमि की उपज देख कर उसमें बीज डालता है उसी प्रकार दान देते समय पात्र कुपात्र का ध्यान रखा जाना चाहिये ।

जो किसान खेती के हेतु, कल्लर भूमि रही चित देत ।

दान जु पात्र तने अनुसार, पात्र समान फल है बहुसार ॥ ७८ ॥ ११३

सम्राट भरत ने ब्राह्मण वर्णों की स्थापना की थी । कवि ने उनमें पाये जाने वाले ६ प्रकार के गुणों का वर्णन किया है । उनमें से आठवाँ एवं नवाँ गुण निम्न प्रकार है—

अल्पाहारी चित सतोषी, दुष्ट वचन सुनि नहि जिय रोष ।

आशीर्वाद परायण जानि, अष्टम गुण द्विज को यह जानि ॥६३॥

शुभोपयोगी विद्यावान, आतम अनुभव करण प्रधान ।

परम ब्रह्म को ध्यान कराइ, ए ब्राह्मण के नव गुण कहिबाइ ॥६४/११४

जब तक भरत रहे तब तक वे ११ गुणों से युक्त रहे लेकिन बाद में उनमें भी शिथिलता आती गयी ।

अक्षवर्ति के चौदह रत्न

कवि ने चौदह प्रकार के रत्नों के नाम गिनाये हैं । जो निम्न प्रकार हैं—

सेनापति अरु स्थपित बखान, हर्मपती अरु राज अश्व प्रधान ।

नारी चर्म अरु काकिनी, अरु परोहित मनि तहाँ गनी ॥८३॥

बडग दंड मिलि चौदह भए, इनि के भेद सुनौ भब जए ।

सेनापति भँसो गुन लेत, नव प्रकार सँन्या सज देत ॥८४/१२६॥

उक्त चौदह रत्न चक्रवर्ती के ही होते हैं अन्य किसी राजा को यह सीमाग्य प्राप्त नहीं होता। कवि ने इन सभी का विस्तृत वर्णन किया है। अन्त से लिखा है—

चर्ची पुष्य प्रताप बल, चौदह रत्न भनूप ।

झोरन काहू कौ मिलें, मिलें अनेक जग भूप ॥१७॥ १२७॥

गौतम द्वारा महावीर का अनुयायी बनाना

कवि ने चौरासी बोल, श्वेताम्बर मत उत्पत्ति वर्णन, आदि पर भी विस्तृत प्रकाश डाला है। इसके पश्चात् कवि एक दम महावीर के समवसरण में पहुँच जाता है। कंबल्य होने पर भी जब भगवान की दिव्य ध्वनि नहीं खिरती है तो इन्द्र को बड़ी चिन्ता होती है और वह एक वृद्ध के रूप में गौतम ऋषि के पास पहुँचता है। वह उससे “त्रैकाल्य द्रव्य षटक” श्लोक का अर्थ समझना चाहता है लेकिन जब अर्थ समझ में नहीं आता है तो वह अपने शिष्यों के साथ महावीर के समवसरण में आता है। समवसरण में लगे हुए मानस्थभ को देखते ही गौतम को वास्तविक ज्ञान उत्पन्न हो जाता है और वह महावीर की निम्न प्रकार स्तुति करने लगता है।

गौतम नम्यो चरन अष्टाग, लागी जिन स्तुति पढन अमग ।

दीन दयाल कृपा निधि ईस, कर पकज नाऊ गीस ॥१४/१३८॥

गौतम को तत्काल मनःपर्यय ज्ञान की प्राप्ति हो गयी। वह महावीर के शिष्य में प्रमुख शिष्य हो गया।^१

उसी समय मगध का सम्राट श्रेणिक रानी चेलना के साथ वहाँ आया। श्रेणिक बौद्धधर्म का अनुयायी था लेकिन चेलना महावीर की परम भक्त थी। समवसरण में आने के पश्चात् भगवान महावीर ने उसके पूर्व भर्षों का वृत्तान्त विस्तार के साथ सुनाया।

१. तब गौतम मुनिराज सरेष्ठ, सकल गनि मध्य भए बरेष्ठ ॥१६/१३८

ता घरनी बेलना धनूप, जाके रत्न सम्यक्त स्वरूप ।

तब सुनि श्रोक नृप की कथा, श्री गुरु मुख तें भाषी जु जया ।

श्रेणिक द्वारा जैनधर्म स्वीकार करने की कथा

पूरी कथा मे राजा श्रेणिक बेलना के आग्रह से किस प्रकार जैनधर्म का अनुयायी बना इसका भी वर्णन दिया हुआ है । सर्व प्रथम राजा श्रेणिक ने बौद्धधर्म की प्रशंसा की तथा जैनधर्म के प्रति अपने विचार प्रगट किये ।^१ बेलना के कहने से राजा ने पहिले बौद्ध साधु को बुलाया और विभिन्न प्रकार से उसकी परीक्षा ली । फिर जैन साधु की बेलना ने परिगाहना की । परीक्षा मे जैन साधु द्वारा खरा उतरने पर राजा श्रेणिक ने जैनधर्म स्वीकार कर लिया ।

सुनि श्रेणिक संसे उडि गई, हठ प्रतीति जिनमत पर भई ।

तब रानी कियो अंगीकार, धन्य सुबुद्धि पवित्र अवतार ॥३०॥

निज पति की तिन कीनों जैन, बोध तनो उर तें गयो फैन ।

वा मत बसि गयो पहिलेकल कहि न सकै

नहिं जहा दुख केते सषकं ॥३१॥ १४३ ॥

राजा श्रेणिक ने भगवान महावीर से साठ हजार प्रश्न किये और उनका समाधान भी सुना ।^२ इन्त मे अषाढ सुदी १४ को सभी मुनिजनों ने योग धारण किया तथा कार्तिक सुदी १४ तक योग धारण किये रहे । लेकिन कार्तिक बुदी अभावस्या की रात्रि को जब प्रभात काल मे चार घडी रही थी तब भगवान महावीर ने निर्वाण प्राप्त किया ।

कातिग षडि मावसक रीति, चार घडी जब रह्यो प्रमात ॥३॥

१. जैन कहां जाकी उरघरे, तहां न कोऊ क्रिया आचरे ।

बोध तनें गुरु दीन दयाल, जैन जती निरधन बे हाल ॥

अशुचि अपावन बोध विहीन, कौन अ ग निर्मे परबीन । ७६ ॥ १४०॥

२. राजा श्रेणिक चरित मे, कछौं सलेप सुनाइ ।

अति हितकारी भाव को, परमत नहीं सहाइ ॥१॥ १४३ ॥

श्री जिन महावीर तीर्थेज, पंचम गति को कीयो प्रवेश ।

मुक्ति सिद्ध सिला पर सिद्ध सरूप, परमात्म भए शिवरूप ॥६॥

महावीर सघ के शेष मुनि गणो ने चतुर्मास पूर्ण किया ।^१

इसके पश्चात् कवि ने काष्ठा सघ की उत्पत्ति की कथा लिखी है जो ४० दोहा चौपाई छन्दो में पूर्ण होती है ।

लोहाचार्य वर्णन

आचार्य गुप्ता गुप्त के भद्रबाहु शिष्य थे । उनके पट्ट शिष्य माघनन्दि मुनि थे । आचार्य कुन्दकुन्द उनके पट्ट शिष्य थे । तत्त्वार्थसूत्र के रचयिता उमास्वाति आचार्य कुन्दकुन्द के शिष्य थे । उमास्वाति के पट्ट शिष्य थे लोहाचार्य जिन्होंने काष्ठासघ की स्थापना की थी । लोहाचार्य विद्या के भण्डार एवं सरस्वती के साक्षात् भवतार थे । उनके एक बार शरीर में ऐसा रोग हो गया कि मरने की स्थिति आ गयी । वायु पित्त एव कफ तीनों का जोर हुआ गया । तब उनके उसी भव के श्री गुरु स्नेहवश वहां प्राये । उन्होंने उनको सन्यास (समाधि मरण) दे दिया क्योंकि जीने की तनिक भी आशा नहीं रही थी । लेकिन शरीर की व्याधियां स्वतः ही धीरे धीरे कम होने लगी और वे स्वस्थ हो गये । भूल प्यास लगने लगी । तब उन्होंने अपने गुरु से विशेष आज्ञा मागी । श्री गुरु ने कहा कि

श्री गुरु कहे न आग्या धान, करि सन्यास मरण बुधिवान ।

ज्यो आगे परमादी जीव, प्रतिपाले जो व्रत जोग सदीव ॥२३॥

लोहाचार्य ने गुरु की बात पर कोई ध्यान नहीं दिया और अन्न जल ग्रहण कर लिया । गुरु ने उनको अपने गच्छ से निकाल दिया और दूसरे किसी साधु को पट्टाधीश बना दिया । लोहाचार्य ने गुरु के इस विरोध पर गम्भीरता पूर्वक चिन्तन किया और अन्त में गुरु को छोड़कर अन्यत्र बिहार कर दिया । उस समय विक्रम सवत सात सौ ७६० था ।^२

१. जो हो इनिसो कहो प्रकार, पूरी करी जाइ चोमास ।

मति उर यो व्रत भंग जु भयो, तुम प्रभु के हित हो चित दियो ॥१३॥

२ लोहाचारज सोचि विचार, गुरु तजि कीयो देश बिहार ।

सवत त्रेपन सात से सात, विक्रम राय तनो विख्यात ॥ २५॥१४४॥

मोहोचार्ध अमरोहा ग्राम आये । जो नदीवर याँव के नाम से विख्यात था ।

अमरोहा ग्राम में अग्रवालों की बस्ती थी । वे अनाह्य वे तथा दूसरे धर्म को मानने वाले थे । दूसरे धर्म की परवाह नहीं करते थे । उनकी उत्पत्ति के बारे में कवि ने निम्न प्रकार बर्णन किया है—

अग्रवाल जैन जाति की उत्पत्ति

अगर नाम के ऋषि थे जो तपस्वी थे वनवासी थे तथा जिनकी माता ब्राह्मणी थी । एक दिन जब वे ध्यानस्थ थे तो किसी नारी का शब्द उनके कानों में पडा । नारी का शब्द सुनकर ऋषि कांमातुर हो गये । शब्द बड़े मधुर एवं ललित थे तथा उसका स्वर कोकिल कंठी था । ऋषि का ध्यान छूट गया तथा वह उसका सौन्दर्य निरखने लगे ।^१ उस नारी ने कहा कि वह नाग कन्या है इसलिये यदि ऋषि को काम सता रहा है तो वह उसके पिता से बात करे । वह ऋषि का रूप देखकर कन्या दान कर देंगे । यह सुनकर ऋषि खड़े हो गये और नाग लोक को चले गये । नागिनी ने ऋषि तपस्वी को बहुत आदर दिया । ऋषि ने नाग कन्या के पिता से प्रार्थना की कि वह अपनी कन्या का उसके साथ विवाह कर दे । नाग ने ऋषि की बात मान कर अपनी कन्या उसे दे दी । ऋषि कन्या को अपने साथ ले आया । उससे १८ लड़के हुए जिनमें गर्ग आदि के नाम उल्लेखनीय हैं । उनकी वंश वृद्धि होती गयी

१. अगर नाम रिष हें तप घनी, वनवासी माता वाग्नि ।
एक दिवस बैठे घरि ध्यान, नारी शब्द परयो तब कांन ॥१२॥

मधुर वचन और ललित अपार, मानों कोकिला कंठ उचार ।
छुटि गयी रिष ध्यान धनूप, लागे निरिखन नारी रूप ॥१३॥

२. तब ऋषिराय प्रार्थना करी, तब कन्या हसि जिय में बरी ।
अब तुम दे हमे करी दान, ज्यों संतोष लहे मम प्राण ॥१७॥

नाग दई तब कन्यां बांहि, कर गहि अगर ले गए ताहि ।
ताके सुत अष्टादस भये, गर्ग आदि सुत ये बरनए ॥१८॥१४५॥

और उनको भ्रगरवाल कहा जाने लगा । उनके १८ गोत्र हो गये जो ऋषि के पुत्रों के नाम से प्रसिद्ध हो गये ।^१

एक बार पुरवासियों ने सुना कि कोई मुनि आये हुये हैं और वे नगर के बाह्य ही उतरे हुये हैं । नगरवासी उन्हें साधु जानकर भोजन हेतु प्रार्थना करने गये । मुनि ने नागरिकों से कहा कि वह तपस्वी है इसलिए यदि कोई श्रावक धर्म के पालन करने की प्रतिज्ञा लेवे तथा जिसे धन्य धर्म श्रद्धा नहीं लगता ही तो वह उन्हें आदरपूर्वक अपने घर ले जा सकता है । उसके घर पर वे भोजन करेंगे । मुनि के वाक्य सुनकर सभी नागरिक विस्मय करने लगे तथा आपस में चर्चा करने लगे कि ये कैसे मुनि हैं जो भोजन देने पर भी भोजन ग्रहण नहीं करते ।^२

मुनि के प्रभाव से कुछ लोग जिनधर्मी बन गये और मुनि के चरणों में आकर वन्दना करने लगे । गुरु के उपदेश से धर्म का मर्म समझ लिया । उसके पश्चात् मुनि ने नगर प्रवेश किया । नव दीक्षित जंतो ने मुनि को भली प्रकार आहार दिया और अनेक प्रकार के उत्सव करने लगे । मुनि श्री ने उनको प्रतिबोधित किया और इस प्रकार भ्रगरवाल जैन बने । प्रारम्भ में वे केवल ७०० घर थे । वही जिन मन्दिर का निर्माण कराया गया और उसमें काष्ठ की प्रतिमा विराजमान कर दी । दूसरे ही पूजा पाठ बना लिये जो गुरु विरोधी थे । यह बात चलती चलती भट्टारक उमास्वामी के पास आयी । बात सुनकर मुनि को खूब चिन्ता हुई कि काष्ठ की

- १ तिन को वश बढयो भसराल, ते सब कहिये भ्रगरवाल ।
उनके सब अष्टादश गोत, भए रिषि सुत नाम के उद्योत ॥१६॥
२. तिन सुन्यौ एक आधौ मुनि, पुरु के निकट उतर्द्यू गुनी ।
भिक्षुक जानि सकल जन नए, भोजन हेत बिनवत भए ॥२०॥
तब मुनि कहें सुनों भरि प्रीति हम तपसीन की धँसी रीति ।
जो कोऊ श्रावक धर्म कराइ, मिथ्यामत जाको न सुहाइ ॥२१॥
सो अपने घरि आदर करें, ले करि जाइ दया तब चरें ।
और येह नहीं आहार, यह हम रीति सुनी निर्द्वार ॥२२॥ १४५ ॥

प्रतिमा बनाने की नयी परम्परा बसल दी। लेकिन जैनधर्म में मूर्तियों को शीलित करने की जब बात मालूम पड़ी तो उन्हें सन्तोष हुआ और वे भी वहीं धा गये जहाँ मुनि श्री लोहाचार्य थे।^१ जब उन्होंने भट्टारक उमास्वामी के आने की बात सुनी तो उन्हें वे लिवाने गये और बड़े उत्साह से उनका स्वागत किया।

लोहाचार्य ने उमास्वामी को चरण पकड़ लिये। मुनिराज ने ध्यानन्दित होकर लोहाचार्य को उठा लिया और उनको चरणों से उठाकर अपने पास पर बिठा लिया। सभी नागरवासियों ने उमास्वामी की वन्दना की और उन्हें ने सबको धर्म वृद्धि देते हुए आशीर्वाद दिया। उनकी भयवानी करके नगर में उसी मन्दिर में लाये जिसमें काष्ठ की प्रतिमा विराजमान थी। उमास्वामी से जब नागरवासियों ने उनसे आहार ग्रहण करने की प्रार्थना की तो वे कहने लगे कि जो उन्हें भिक्षा देना चाहेगा तो आचार्यजी को उनकी बात माननी पड़ेगी। लोहाचार्य तत्काल विनय पूर्वक आज्ञा देने के लिये प्रार्थना करने लगे जिससे उनका जीवन धन्य हो सके।

उमास्वामी ने कहा कि वे सब शिष्यों में सपूत हैं जो मिथ्यात्व का खंडन करने वाले एवं जैनधर्म का पोषण करने वाले हैं। तथा जिन्होंने जैनधर्म में वृद्धि की है। लेकिन एक भिक्षा वे उनकी भी माने और भविष्य कि काष्ठ की प्रतिमाविराजमान करना बन्ध-

१. चली बाल चलि आई तहा, उमास्वामी भट्टारक जहां।
मुनि जिय चिन्ता भई अगाध, करी काठ की नई उपाधि ॥२८॥
भावत सुनि श्री निज गुरु भले, धाये होंन धाचारज चले।
जीत सकल नगर जन सम, बाजन अति बाजे मनरंज ॥२९॥
२. तब मुनि कहे सुनो गुन जूत, शिष्यन में तुम भये सपूत।
परमत अंजन पोषन जैन, धर्म बढ़ायो जीत्यो मेन ॥३४॥
बही सीख हमरे करि धरो, काठ तनी प्रतिमा मति करो।
३. तबतें काष्ठ संघ परवरयो, मूलसंघ न्यारो विस्तर्यो।
एक चना कीज्यो डे दारि, त्यो ए दौऊ संघ विचार ॥३५॥

करें। क्योंकि काष्ठ, अग्नि, जल लेप, आदि से विकृत होसकती है। लोहचार्य ने अपने गुरु की बात मान ली। उन्होने उनके हाथ से सुरही के बाल वाली पिच्छी ग्रहण की। दोनों गुरु शिष्य प्रसन्न होकर उठे। उसी समय से लोहाचार्य का सघ काष्ठा सघ कहलाने लगा। और वह मूलसघ से पृथक माना जाने लगा यह कोई नया सघ नहीं है। सघ मे जैनधर्म के प्रतिपादित सिद्धान्तो का पालन होता है।

काष्ठासघ की उत्पत्ति का इतिहास कहने के पश्चात् कवि ने भक्तामरस्तोत्र एकीभावस्तोत्र, भूपालस्तोत्र, त्रिपापहारस्तोत्र एवं कल्याणमन्दिरस्तोत्र के रचे जाने की कथायें लिखी हैं। कवि के कथा कहने का ढंग बड़ा ही आकर्षक है।

जैसवाल जाति का इतिहास

कल्याणमन्दिरस्तोत्र कथा समाप्ति के पश्चात् कवि ने ईश्वरकु वशीय जैसवाल जाति का इतिहास कहने की भावना व्यक्त की है।

जैसवाल ईश्वरकु कुल, तिति को सुनो प्रबन्ध

ऋषभदेव तीर्थंकर ने गृह त्याग करने से पूर्व महाराजा भरत को अयोध्या तथा बाहुबली को पोदनपुर का राज्य दिया तथा शेष पुत्रो को उनकी इच्छानुसार राज्य शासन सौंप दिया। उन्ही मे से एक पुत्र शक्ति कु वर जैसलमेर चल कर आये और जैसलमेर मण्डल का शातिपूर्वक राज्य करने लगे।^१ उनका वंश बढ़ने लगा तथा जैन धर्म की वृद्धि होने लगी। कुछ समय पश्चात् उन्ही के वंश मे एक राजा ने जैनधर्म छोडकर अन्य मत की साधना करने लगा। शुभ कर्म घटने लगे तथा पृथ्वी पाप बढ़ने लगे। एक दिन दूसरे राजा ने राज्य पर चढ़ाई कर दी जिससे सब राज्य चला गया। लेकिन प्रजा ने उसे अपने यहा रख लिया। राज्य से वंचित होने के

१. श्री जिंगवेच कथभ महाराज, जब वाटयी सब महि को राज

अवधिपुरी गई भरच नरेस, बाहुबलि पोवनपुर देश ॥१॥

और सुतल जो मांग्यौ ठाम, श्री प्रभु ते बजौ अभिराम।

कु धर शक्ति जिन वाट नरेस, बलि आए जहां जैसलमेर ॥२॥

वे मंडल को साथे राज, सुख साता के सर्वे समाज।

तिति को वंश बढ़यो असराल, जैनधर्म पाले महिपाल ॥३॥

पश्चात् किसी ने खेती करना प्रारम्भ कर दिया तथा किसी ने चाकरी-बीकरी करली। इस प्रकार बहुत समय व्यतीत हो गया और वहाँ जैनधर्म का प्रचलन बन्द हो गया।

२४ वें तीर्थंकर महावीर को जब कैवल्य हुआ तो इन्द्र ने समवसरण की रचना की। प्रचंड पुष्य के चारी सुर असुरों ने समवसरण को आर्यसूड में घुसाया और एक बार भगवान महावीर का समवसरण जैसलमेर के बन में आ गया। समवसरण के प्रभाव से सब आतुषो में फूल खिल गये। वनमाली ने राजा के पास जाकर तीर्थंकर महावीर के समवसरण के आने का समाचार दिया। तत्काल राजा भी धार्मिक प्रसन्नतापूर्वक महावीर की बन्दना के लिए अपने परिवार एव नगरवासियों के साथ चल दिया।^१

राजा ने विनयपूर्वक महावीर की बन्दना की तथा मनुष्यों के प्रकोष्ठमें जाकर बैठ गया। उसने महावीर भगवान से निवेदन किया कि “हमारे देश में एक बात प्रसिद्ध है कि “हम पर देवताओं की कृपा है तब फिर उनके हाथ से राज्य कैसे निकल गया”।^२ इसका उत्तर महावीर के प्रमुख शिष्य (गणधर) गौतम स्वामी ने दिया। उन्होंने कहा कि उनके पूर्वजों ने जैनधर्म छोड़ दिया था इसलिए यह सब कुछ हुआ। यदि फिर वे जैनधर्म स्वीकार कर लें तो उनके सकट दूर हो सकते हैं। गौतम गणधर की वाणी सुनकर वहाँ उपस्थित सभी चार हजार स्त्री पुरुषों ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया। सबने मिलकर नियम किया कि वे भविष्य में जैनधर्म का

१ महावीर प्रभु प्रकट्यो ज्ञान, रची सभा सब अजरनि ध्यान ॥७॥

सकल सुरासुर पूज्य प्रचंड, ताहि लें किरें अररव खंड

खंड सकल परस्यो औ केर, बलि आये जहाँ जैसलमेर ॥८॥

२ सुनि राजा बल्थी बंदन हेत, मान रहित पुरलोक समेत।

प्रबल नमें भी जिनबर राइ, कुनि नर कोठें बँटे आइ ॥९॥

पूछत भी प्रभु को बात, जो ए बात बस विख्यात।

एहाँ कृपा करि सुर महाराज, छद्मों क्यों हमसे भुबराज ॥११॥

का आदर करेंगे^१। उन्हीं व्यक्तियों से अपना व्यवहार, खान पान एवं विवाह सम्बन्ध रखा जायेगा। इनको छोड़कर जो अन्यत्र जावेंगे वे सब दोष के भागी होंगे। इस प्रकार वे सभी पुनः अपने धर्म को ग्रहण करके जैसलमेर नगर में आ गये और भगवान महावीर का समवसरण भी मगध देश के राजगृही स्थित पंच पहाड़ी पर रखा गया।

उसी समय से वे सब जैसवाल कहलाने लगे। उनके मन से मिथ्यात्व दूर हो गया। नगर में मन्दिरों का निर्माण कराया गया और वे उत्साह पूर्वक जिन पूजन आदि करने लगे। चतुर्विध संघ को दान आदि दिया जाने लगा। प्रतिदिन पुराणों की स्वाध्याय होने लगी। जो लोग पहिले दरिद्रता से पीड़ित थे वे सब धन सम्पत्तिवान बन गये। सब के घरों में लक्ष्मी ने वास कर लिया। और वे सब भी धर्म्य कार्य छोड़कर व्यापार करने लगे।

कुछ समय पश्चात् एक श्रावक की कन्या विवाह योग्य हो गयी। वह अत्यधिक रूपवती थी इसलिये सारे नगर में उसकी चर्चा होने लगी। सभी उसके साथ विवाह करने के लिये प्रस्ताव भेजने लगे। वहाँ के राजा ने भी उसके साथ विवाह करने का प्रस्ताव भेज दिया। राजा के प्रस्ताव से सभी को आश्चर्य हुआ। जैसवाल जैन समाज के पंचों की सभा हुई। सभा में यह निर्णय लिया गया कि वे जैनधर्मावलम्बी हैं इसलिये विवाह सम्बन्ध भी उसी जाति में होना चाहिये।^२

पंचों का निर्णय राजा के पास भेज दिया गया। इस पर राजा ने उन सबसे जैसलमेर छोड़ने एवं राज्य की सीमा से बाहर निकल जाने का आदेश निकाल दिया। उन्होंने भी राजा का आदेश मान लिया और बाध्य होकर जैसलमेर

१ तब बौले गौतम बलराइ, जैनधर्म त्यागे रे भाइ।

जो वह फेरि आबरो धर्म, बिहुर जाइ सुन तें दुषकर्म ॥१२॥१५३॥

२. सुनत सबनि के बिसमय भई, कौन बुद्धि राजा यह ठई।

पंच सकल कुरिअब हम जैनधर्म द्रत लियौ ॥२०॥

अबर जाति सौ रह्यौ न काज, खान पान अथ सगपन साज।

नगर को छोड़ दिया इतने बड़े समूह को देख कर अन्य भाग्य एवं नगर वाले आश्चर्य करते और प्रश्न करने लगते कि यह विमाल संघ कहा से आया है तथा किस कारण से अपना देश छोड़ कर आगे जा रहा है। वे सभी कष्टर थे लेकिन अहिंसक प्रवृत्ति के थे इसलिये शान्तिपूर्वक निम्न उत्तर दिया करते थे—

कौन देश तें आयी संघ, कौन जाति कही कारण चंग ।

उत्तर देई सबें गुणमाल, बंश इलाक और जेसबाल ॥२४॥१५३॥

जेसबाल तही ते जानि, जेसबाल कहित परमान ।

जैसलमेर से चलते चलते अन्त मे वे त्रिभुवनगिरि-तिहुगिरी-नगरी आये । चतुर्मास आ गया था इसलिये उन सबको वहाँ नगरी के बाहर वन में ही ठहरना पडा ।¹

कुछ समय पश्चात् वहाँ का राजा जब वन क्रीडा के लिये आया और उसने इतने बड़े संघ को देखा तो उसने अपने मंत्री को पूछने के लिये भेजा तथा वापिस आकर मंत्री ने राजा को पूरा विवरण सुना दिया । राजा ने अपने ही मंत्री से फिर कहा कि ये लोग उससे आकर क्यों नहीं मिलते । इस पर मंत्री ने फिर निवेदन किया कि इनको अपनी जाति पर बडा गर्व है और यही जैसलमेर से निकलने का कारण है । पूरा वृतात जान कर राजा को भी क्रोध आया तथा उसने अपनी मूर्खों पर हाथ फेरा और वापिस नगर में चला गया ।²

राजा की यह सब क्रिया वहाँ एक बालक देख रहा था जो अपने साक्षियों के साथ वही था । वह बुद्धिमान था इसलिये वह राजा के मनोगत भावों को पहिचान कर तत्काल अपने घर आया और राजा की बात सबको कह दी तथा कहा

१. जले जले आए सब जहां, हुती तिहुगिरी नगरी जहां ।

सा पुर निकट हुतो वन चंग, उत्तरी तहां जाइ वह संग ।

पाये यह जहां चानुर मास, सकल संघ जहां कियो निवास ॥२६॥१५४॥

२. सखिच कहें इनें गर्बे अपार, याही तें नृप दिए निकार ।

सुनि राजा कर भूछनि धर्यौ, मन में रीस संघ परिकर्यौ ।३१॥

मुलतें कछन कर्यौ उचार, आए महिपति नगर मभार ॥३२॥१५५॥

कि उनको राजा से मिलना चाहिये नहीं तो मान भंग ही जावेगा जो अनिष्ट कारक होगा ।^१

बालक की बात पर विश्वास करके वे तत्काल भेंट मादि लेकर चले और बाकर राजा से भेंट की और निम्न प्रकार निवेदन करने लगे—

पहुं जे जाइ नृपति के द्वार भेंट करि प्रथ कर्यौ जुहार ।
 राजा पूछ्यै एको हेत, जिन में प्रीत तनी उबैत ॥३६॥
 सचिब कह्यै ए सब सुनीं भूपाल, हम चित नहीं सर्व को साख ।
 नृप समीति त्यागो निज देस, बलि प्राये तुब शरण नरेस ॥३७॥
 करी हुती जहां जिय मे चित बीतें भावब चरत पुनीत ।
 देखें जाइ चरण प्रभू तनीं, और मनोरथ चित के अनौ ॥३८॥

सबने उसी नगर मे रहने के लिये राजा से एक भूमि खड भाग लिया जिसमे सभी जैसवाल बन्धु रह सके । उन्होने यह भी कहा कि राजा के क्रोध के कारण ही उन्होने उनसे निवेदन किया है । राजा को आश्चर्य हुआ कि उसके मनोगत भावो को किसने ताड लिया क्योंकि उसने किसी से भी अपने मन की बात नहीं कही थी । तब सबने मिलकर इस प्रकार निवेदन किया—

तब सब मिलि नृप सों विनए, जा विन तुम प्रभू कीडा बन गए ।
 पूछी सकल हमारी बात, सचि बही जैसी इह तात ॥४२॥
 तहां एक बालक हमरो हुतौ, बुधिबान कीडा सचुतौ ।
 तिमि सब बात कही समझाय, बेगि मिलौ तुम नृप की जाई ॥४३॥
 क्रोध किये हम उपरि चित्त, मैं भाषी सबसौ सब सति ।
 या पर हम जिय मैं बहु सके, घ्राए मिलि महा भय चके ॥४४॥

राजा ने जब उक्त कथन सुना तो बालक को भीघ्र बुला का आदेश दिया गया । बालक जब आया तो उसकी सुन्दरता देखकर राजा बहुत प्रसन्न हो गया । राजा द्वारा मनोगत भावों की कहानी जानने पर बालक ने दोनों हाथ जोड कर निम्न प्रकार उत्तर दिया—

१ बालक सबसों भाषी बात, नृप की बेगि मिलौ तुम तात ।
 नहीं तौ मानभंग तुम होइ, सत्यबचन मानी सब कोइ ॥३४॥३५॥

बालक कहै उभय करि जोरि, जब प्रभू निज कर भूँछ खरीरि ।

जोय बिना भूँछ नहीं हाथि, बासैं ह्य सखैं नरनाथ ॥४७॥

बालक का उत्तर सुनकर राजा ने प्रसन्न होकर उसे गले लगा लिया । इसके पश्चात् राजा ने सबको सम्मान सहित विदा किया । सबको रहने के लिये नगर में स्थान दिया गया । सभी लोग सुख पूर्वक रहने लगे ।

कुछ समय पश्चात् राजा ने सभी जैसवाल जैनों से कहा कि वह अपनी लड़की उस बालक को देना चाहता है । वह उसकी बराबर सेवा करती रहेगी । लेकिन राजा के प्रस्ताव का सभी ने विरोध किया और ऐसी ही बात पर जैसलमेर छोड़ने की बात का स्मरण किया । राजा ने क्रोधित होकर बालक को पकड़ कर बुला लिया तथा उसके साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया । इसमें किसी की कुछ नहीं बली । लेकिन उस बालक ने राजा की अनीति के मार्ग पर जाते हुए देख कर अन्न जल का त्याग कर दिया तथा कह दिया कि जब तक वह अपने माता पिता को नहीं देख लेगा तब तक उसके हृदय में शान्ति नहीं आवेगी । यही नहीं वह प्राण त्याग देगा । राजा उसका क्या विगाड लेगा । राजा ने बालक के साथ किये गये कपट तथा बालक द्वारा किये जाने वाली अप्रयत्न पर भी विचार किया । राजा ने बालक के पूरे परिवार को गड में बुला लिया । साथ ही उसके अन्य हितैषियों को भी उसी के साथ बुला कर गड में बसा दिया । इस प्रकार दो हजार परिवार नीचे रह गये जो जिन वचनों के अनुसार चलते रहे । उन सबने मिल कर यह निर्णय लिया कि दोनों का (गड में रहने वालों का एक शहर में रहने वालों का) परस्पर में मिलना कठिन है । न तो उनका कोई व्यक्ति हमारे पास आता है और न कोई हमारा व्यक्ति उनके पास जाता है ।¹ उन्होंने गुरु की शिक्षाओं का

१. तिन सब मिल यह ठहराव, मेंइनितीं अइ परम अभाव ।

कोऊ हमरी उनिके नहीं जाइ, उनिकी ह्यां कोऊ धरें न पाइ ॥४७॥१५५॥

२. तब नृप सहित सकल परिवार, धाए गड नीचें सगार

बंटे जिन अन्धिर नृप आहि, सकल पंथ तहाँ गए बुलाए ॥६१॥

बिचली करी जोरि के हाथ, सोई करी जो होइ एक साथ ।

बगलीं चूक बु ह्य में बरी, बड़ी सोइ जो बिरा न बरी ॥६२॥

उलघन किया है। बाबक के जाने से क्या हुआ। धर्म के किना बन सम्पदा एवं जीवन सब व्यर्थ है। इस प्रकार बहुत सा समय व्यतीत हो गया। उस अवसर पर सब संत्रियों ने मिल कर उसे राज्य भार सौंप दिया। जब वह राजा बन गया तो अपने अपने सभी सम्बन्धियों का का बुला लिया। तथा सबको गांव दे दिये तथा स्वयं त्रिमुवन नगर का राजा बन गया। ब्राह्मण कुल में से पुरोहित की स्थापना की गयी तथा उन्हें लिख कर दे दिया कि जिस घर में पुत्र का विवाह होया तो वह पांच रुपया ब्राह्मण को देगा तथा इसमें कमी अथवा अधिकता नहीं होगी।

इसके पश्चात् सबके मन में यह बात आयी की वे सब बिछुड गये हैं। यदि वे सब मिल जाते हैं तो अत्यधिक धानन्द होगा। तब राजा सहित सभी परिवार वाले गड से नीचे धाये और जिन मन्दिर में भाकर एकत्रित हो गये। सब पक्षों को बुला लिया गया। सभी ने हाथ जोड कर यही प्रार्थना कि ऐसा काम करा जिससे दोनो एक हो जावें। जो कुछ गलती हो गयी उसे भूल जाना चाहिये। अब पहिले की परम्परा को भपनाना चाहिये। सभी ने यह भी निराण्य लिया कि राजा का मान भग नहीं करना चाहिये। सभी ने मिलकर राजासे आदेश देने की प्रार्थना की लेकिन परस्पर में विवाह करने की आज्ञा देने पर वे सब देश को ही छोड देंगे यह भी निवेदन किया। राजा नेभी मन में सोचा कि हठ करने से प्रसन्नता नहीं होगी। इस प्रकार समाज की बात मान कर राजा महल में चले गये।¹

इसके पश्चात जैसवाल जैन समाज दो शाखाओं में विभक्त हो गया। जो समाज गढ़ में रहता था वह उपरोतिया कहलाने लगा तथा जो नीचे रहता था वह तिरोटिया नाम से प्रसिद्ध हो गया। उस समय ये दोनो नाम प्रसिद्ध हो गये और इसी नाम से वे परस्पर में व्यवहार करने लगे। उपरोतिया शाखा वाले जैसवाल

१. विनसी करी राय सौं सबे, आग्या वेहु अब हम तबे

व्याहु काज नहीं नरेश, हठ करो तो तज है देश ॥६४॥

तब मन में सौंधियो नरिब, हठ के कीए नहीं धानन्द ।

मानि बात नृप गड पै गये, जैसवाल बुविबि तब अए ॥६५॥१५५॥

काष्ठा संघी बुधमों की सेवा करने लगे तथा तिरोतिया जैसवाल मूलसंघी बने रहे । इस प्रकार समय व्यतीत होता गया और दोनों शाखा वाला जैसवाल जैन समाज ध्यानन्द सहित रहने लगा ।

लेकिन कुछ समय पश्चात् राजा का स्वर्गवास हो गया और उसके मरने के पश्चात् दूसरा ही राजा वहां का स्वामी बन गया । उसका नाम तिहितपाल प्रसिद्ध था । वहां से जैसवाल चारो ओर निकल गये । इसी बीच अन्तिम केवली जम्बूस्वामी को मथुरा नगर के समीप स्थित उद्यान में कैवल्य प्राप्त हुआ भगवान के कैवल्य को देखने के लिए सभी मथुरा के उद्यान में एकत्रित हो गये । त्रिभुवन गिरि को छोड़कर सभी जैसवाल वहां आ गए । भगवान के दर्शन कर के अत्यधिक प्रसन्नता हुई । उसी स्थान से जम्बू स्वामी ने निर्वाण प्राप्त कर पंचम गति प्राप्त की । उसी स्थान पर जैसवाल रहने लगे तथा अपना २ कार्य करने लगे । अपने २ गोत्रो मे विवाह आदि कार्य करने लगे । इस प्रकार कवि ने जैसवाल जाति की उत्पत्ति क्या का अत्यधिक महत्वपूर्ण बर्णन किया है । उपरोतिया शाखा मे ३६गोत्र एव तिरोतिया शाखा मे ४६गोत्र माने जाने लगे ।^१

कवि प्रशस्ति—

वचनकोश के अन्तिम ११ पद्यों मे कवि ने अपना परिचय दिया है जिसका बर्णन प्रारम्भ मे किया जा चुका है । कोश के अन्तिम पद्य मे कवि ने लघुता प्रगट की है—

गुनी गडे ओ प्रीतिसों चूकहि लेइ सम्हारि ।

लघु हरिष तुक छव कौं, क्षमियो अतुर बिचारि ॥७५॥

इस प्रकार वचन कोश की रचना करके कविबर बुलासीचन्द ने साहित्यिक

१ जम्बूस्वामि भयो निरवान, पाई पंचम गति भगवान ।

जैसवाल रहे तिहि ठाम, मन मान्यो बु करइ काम ॥७३॥

कारख गाम गोत परनए, इहि धियि जैसवाल बरनए ।

उपरोतिया गोत छतीस, तिर् तिया गनि छह चासीस ॥७४॥१५६॥

शब्द को एक महत्त्वपूर्ण कृति में ही है। जिसमें सिद्धांत, इतिहास, समाज एवं काव्य गरिमा के दर्शन होते हैं। कोश नामान्तक इस प्रकार की बहुत कम कृतियाँ उपलब्ध होती हैं।

छन्द एवं अलंकार—

वचनकोश का मुख्य छन्द चौपाई छन्द है लेकिन दोहरा एवं शोरडा छन्दों का भी प्रयोग किया गया है। १८वीं शताब्दि में दोहरा एवं चौपाई छन्द अलंकार काव्यों का छन्द या तथा पाठक गण भी इन्हीं छन्दों के काव्यों को शब्द से पढ़ते थे।

गद्य का उपयोग—

कवि ने कोश में कुछ स्थानों पर गद्य के स्थान पर गद्य का प्रयोग किया है। व्रतो के वर्णन में गद्य का प्रयोग प्रप्रमुख रूप से हुआ है। इसे हम व्रज भाषा का गद्य कह सकते हैं। गद्य भाग के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार है—

(१) जिनमुखावलोकन व्रत ध्यासोज सुदी ५, भाववा यदि १ तें प्रारम्भ वर्ध
१ ता थी करै ताकी नीति श्री परमेश्वर जी की प्रतिमा देख्या बिना पारणों न करे
जो ज्ञबब बसि काहू दिन पहिले और कछु दिष्ट परें ता दिन उपवास करै ॥

इति जिनावलोकन मुख व्रत। पृष्ठ संख्या ३६।

(२) यह प्रकार जब धारमा बाहिर चिह्ननि करि और अंतरंग चिह्ननि
करि जथा जात रूप का धारतु हो है। ताते कुटुम्ब लोक पूछन धादि क्रिया तें ले
करि धार्ये मुनि पद के अंग के कारण पर द्रव्यनि के संबंध है तातें पर के सम्बन्ध
निषेध है इह कथन करै है।

पृष्ठ संख्या ५५।

ग्रन्थ ग्रन्थों का उद्धरण—

कवि ने व्रत पालन के प्रसंग में नाटक समयसार, प्रवचनसार के अतिरिक्त
ऊँचेतर ग्रन्थों से भी अलोक उद्धृत किये हैं। इससे कवि की शिक्षा, दीक्षा एवं
ज्ञान गम्भीरता के बारे में प्रकाश पड़ता है।

समीक्षात्मक अध्ययन—

बुलासीचन्द महाकवि बनारसीदास ने उत्तरकालीन कवि थे। आधारा से उनका विशेष सम्बन्ध था। लेकिन काव्य के अध्ययन के पश्चात् ऐसे लगने लगता है कि कवि पर बनारसीदास का कोई प्रभाव नहीं रहा। वचनकोश संग्रह ग्रंथ है। इसमें पुराण, इतिहास, कथा तथा सिद्धान्तों का अच्छा वर्णन हुआ है। कवि सीधे सादे शब्दों में अपनी बात पाठको तक पहुँचाना चाहता है। इसमें उसे बहुत कुछ सफलता भी मिली है। लेकिन यह भी सही है कि वर्तमान काल में भी विद्वानों का ध्यान उसकी ओर नहीं गया। यद्यपि वचनकोश की चार पाण्डुलिपियों की खोज की जा चुकी है इसलिए यह तो नहीं कहा जा सकता कि ३०० वर्षों में किसी ने उसे मान्यता नहीं दी। आखिर चार पाण्डुलिपियाँ भी भावकों के ही आग्रह से लिखी गयी होंगी फिर भी कवि समाज द्वारा उपेक्षित ही बना रहा इस कथन में पर्याप्त सत्यता है।

कवि स्वयं मनोवैज्ञानिक था। वह पाठको की रुचि एवं अरुचि को समझता था इसलिये उसने अपने कोश में कुछ महत्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन बड़ी ही चतुरता से प्रस्तुत किया है। उसने वचनकोश का प्रारम्भ २४ तीर्थंकरों के स्तवन से किया है यह स्तवन एक दो पद्यों का नहीं है किन्तु प्रत्येक तीर्थंकर का उसने सक्षिप्त एवं मधुर परिचय दिया है। जो पौराणिक के साथ २ कहीं २ ऐतिहासिक बन गया है। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के पार्श्व कल्याणको के वर्णन के अंतर्गत उसने चारों ही अनुयोगों का वर्णन कर डाला है जिसको पढ़ने से पाठक ऊबता नहीं है किन्तु रुचि पूर्वक ध्याये बढ़ता चला जाता है। कभी वह अपने विषय को गद्य में प्रस्तुत करता है तो कभी पद्य में जिससे पाठक रुचिपूर्वक ग्रंथ को पढ़ता चला जावे। वास्तव में बुलासीचन्द अपने समय का अच्छा कवि था।

वचनकोश में जैसवाल जैन जाति की उत्पत्ति का इतिहास, उसी के अन्तर्गत भगवान महावीर का समवरण सहित जैसलमेर आना, जम्बू स्वामी का मथुरा के उद्यान में कैवल्य एवं निर्वाण होना, काष्ठासंघ की उत्पत्ति, अग्रवाल जाति की उत्पत्ति के साथ अग्रवाल जैन जाति का इतिहास आदि कुछ ऐतिहासिक घटनाओं का भी कवि ने वर्णन किया है। जिससे ज्ञात होता है कि स्वयं बुलासीचन्द इतिहास प्रेमी था। वह जैसवाल जैन का इसलिये जैसवाल जाति का जो इतिहास लिखा है वह उस समय की मान्यता के आधार पर लिखा गया है। महावीर

के समवसरण का जैसलमेर में धाने का उल्लेख करने वाला समस्त बुलासी-बन्द प्रथम विद्वान है। उसने लिखा है कि महावीर जैसलमेर प्राये धीर जैसवालों को दिग्म्बर जैन धर्म में दीक्षित करने के पश्चात् पुन राजगृही चले गये। मार्ग में कही बिहार नहीं किया। इस घटना की सत्यता को सिद्ध करने वाले दूसरे प्रमाण नहीं मिलते धीर न किसी दूसरे विद्वान ने भगवान महावीर के समवसरण सहित जैसलमेर धाने का उल्लेख किया है फिर भी कवि के जो विवरण प्रस्तुत किया है उस पर गम्भीरता पूर्वक विचार की आवश्यकता है। इतना तो इस वर्णन में सत्य प्रतीत होता है कि जैसवाल जैन जाति की उत्पत्ति जैसलमेर से हुई थी।

अन्तिम केवली जम्बू स्वामी का कैवल्य एव निर्वाण दोनों का मथुरा नगर के उद्यान में होना तो ऐतिहासिक सत्य है। यद्यपि कुछ विद्वान जम्बूस्वामी के निर्वाण स्थल में मतभेद रखते हैं लेकिन निर्वाणकाठ गया में प्रतिशय क्षेत्रों के सम्बन्ध में जो महत्त्व लिखा है उनमें मथुरा से ही जम्बूस्वामी का निर्वाण होना माना है। सवत् १७३७ में रचित प्रस्तुत वचनकाव्य में इसी मत का समर्थन किया है यही नहीं मथुरा ककाली टीले से जो जैन पुरातत्व की विपुल सामग्री उपलब्ध हुई है वह भी इसी बात का द्योतक है कि मथुरा कभी जैन संस्कृति का महान् केन्द्र था। जम्बूस्वामी के पूर्व ही यह क्षेत्र जैन संस्कृति का प्रमुख केन्द्र बन चुका था। ग्रहिसक बातावरण एव अमण धर्म का केन्द्र होने के कारण जम्बूस्वामी भी स्वयं राजगृही से बिहार कर मथुरा पधारे थे और यही उन्हें कैवल्य हुआ था। यही नहीं उस समय बिहार से राजस्थान तक का यह मार्ग जैन साधुओं के लिए सुरक्षित बन चुका था इसका अर्थ यह हुआ कि भगवान महावीर का धर्म उस समय तक यहा लोकप्रिय बन चुका था और उनके अनुयायी पर्याप्त संख्या में मिलने लगे थे।

कोश में जैसवाल जैन जाति के समान ही अग्रवाल जैन जाति की उत्पत्ति का इतिहास भी दिया हुआ है। लोहाचार्ज ने अग्रोहा के निवासियों को जैनधर्म में दीक्षित किया जो बाद में अग्रवाल जैन कहलाने लगे। कवि ने इसे सवत् ७६० (सन् ७०३) की घटना माना है। अग्रवाल जैन जाति का दिग्म्बर जैन जातियों में अग्रणी विशेष स्थान है। इसलिए उसका इतिहास जानना आवश्यक है। अग्रवाल जैन जाति के इतिहास के साथ ही काष्ठा सभ की उत्पत्ति का जो दोषक इतिहास प्रस्तुत किया है वह भी कवि की ऐतिहासिक मनोवृत्ति का ही परिचायक है।

सम्राज में काण्ड की प्रतियां बनाने का एक समय बहुत जोर हो गया था । काण्डासथी भट्टारक इस दिशा में बहुत प्रयत्नशील रहते थे लेकिन भट्टारक उपा-
दशामी को काण्ड प्रतिमा का निर्मास अच्छा नहीं लगा इसलिये उन्होंने इसका
विरोध किया और लोहाचार्य से जब भेंट हुई तब उन्होंने निम्न शब्दों में अपना
मत व्यक्त किया—

वही सील हमरें करि धरो, काठ तनी प्रतिमा मति करो ॥

अग्नि जरावे तन जिहू बहें, अथ अंग नहिं बिन मूल लहें ॥

जस द्वारें चबल तसु धान, लेवु किये सबोध यहु अग्नि ॥३५॥

उमास्वामी की बात तो मान ली गयी लेकिन काण्डासथ ने झूठ संघ से
से अपना पृथक अस्तित्व बना लिया । इस प्रकार कवि ने काण्डासथ की उत्पत्ति
का ऐतिहासिक वर्णन दिया है लेकिन काण्डासथ के भट्टारक आचार्य सोमकीर्ति ने
ने जो काण्डासथ की पट्टाबली दी है उससे इसका मेल नहीं खाता । सोमकीर्ति ने तो
प्रथम आचार्य का नाम ब्रह्मदत्तभस्मुरि दिया है जब बुलासीचन्द ने लोहाचार्य को
काण्डासथ का संस्थापक माना है ।¹ लेकिन बचनकोश में मूलसथ एव काण्डा-
सथ को एक चने की दो दाल के समान माना है ।²

बचन कोश में भारत में यवत्रोत्पत्ति का वर्णन किया है उसके अनुसार वे सब
हिंसा में विश्वास करने वाले तथा शोच एव शील के विपरीत आचरण करने
वाले थे ।³

मन्त्र शास्त्र

बुलासीचन्द ने कितने ही मन्त्रों की साधना का भी अच्छा वर्णन दिया है ।
कवि के युग में अथवा आगरा, आदि स्थानों में मन्त्रों पर अधिक विश्वास था ।
स्वयं कवि कभी मन्त्र शास्त्र अच्छे ज्ञाता रहे होंगे ऐसा भी आभास होता है नहीं तो
अधिकोश काव्यों में मन्त्रों का उल्लेख तक नहीं होता । इसके अतिरिक्त सभी मन्त्र
विद्या आदि के प्रदाता एव कल्याणकारक मन्त्र हैं ।

वेदिकीये—

आचार्य सोमकीर्ति एव ब्रह्म यशोधर—डा० कासलीबाल—पृष्ठ संख्या २४ ।

२ एक चना कीचये ह्वे धारि स्त्री ए होळ संघ विचार ।

३ हिंसा तनो तहां अधिकार, लीच शील नहीं बीसैं सार ॥७॥१४३॥

मारण ताडन आदि क्रियाओं से कवि दूर रहा है। अधिकांश मंत्र छोटे हैं एवं नमस्कार मंत्र पर आधारित है। कवि ने मन्त्रों का पद्यों में महात्म्य लिखकर उनके महत्त्व में वृद्धि की है तथा उन्हें लोकप्रियता प्रदान की है। कवि ने मन्त्रों का वर्णन पदस्य ध्यान के अन्तर्गत किया है तथा मन्त्रों को मन निरोध का उपाय बताया है।

अष्ट सिद्धि तौ निधि सबन, मन निरोध कोरोह ।

अरन्धो ध्यान पदस्य यह, अष्टि अस्त परण नेह ॥६८॥८२॥

इस प्रकार बुलाखीचन्द द्वारा निबद्ध बचनकोश हिन्दी की एक महत्त्वपूर्ण कृति है जो अभी तक साहित्यिक क्षेत्र में पूर्ण अज्ञात थी। राजस्थान के ग्रन्थ भण्डारी ने इसकी निम्न पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित हैं—

(१) क प्रति—पत्र संख्या १५७। लेखनकाल सवत् १८५३ चैत्र अदि ११ मंगुवार। प्राप्ति स्थान—शास्त्र भण्डार दि० जैन तेरहपंच मन्दिर (बडा) जयपुर ग्रन्थ समाप्ति के पश्चात् निम्न पक्ति और लिखी हुई है—“ग्रन्थ प्रतापगढ तेरापंची भामनाय रो”। वेष्टन संख्या १६७०।

(२) ख प्रति—पत्र संख्या २५२। भा० १५ $\frac{1}{2}$ × ४ $\frac{1}{2}$ इञ्च। लेखनकाल ×। प्राप्ति स्थान—दि० जैन मन्दिर श्री महावीर स्वामी बून्दी (राज०) वेष्टन संख्या १

(३) ग प्रति—पत्र संख्या २८२। भा० ६ + ४ $\frac{1}{2}$ इञ्च। लेखनकाल—सवत् १८५६। प्राप्ति स्थान—दि० जैन मन्दिर कोटडियो का डू गुरपुर।



वचन-कोश

(दुलाबीचन्व छल)

अथ वचन कोश लिख्यते

ब्रह्मा

मंगलाचरण

समयसार के पय नमूँ, एकदेव गुरुध्वारि ।
परमेष्ठि तिनिस्यो कहें, पञ्च म्याल गुणधारि ॥१॥
वरण गध काया नही, अविनाशी अधिकारि ।
गुरु लघु गुण विनु देव यह, नमों सिद्ध अवतारि ॥२॥
श्री जिनराज अनंतगुण, जगत परम गुरु एव ।
अथ ऊरध मधिलोक के, इन्द्र करें शत सेव ॥३॥
पञ्चाचारि तपधनि, सहस्र परीसह धीर ।
श्री आचार्य धर्मगुरु, नमो नमो करिजोर ॥४॥
ध्यायक जिनवानी विमल, जगि अध्यायक नाम ।
ज्ञान धिवाकर परम गुरु, ताके पद परणाम ॥५॥
बीस धाठ जे मूलगुण, सावें मन वच काय ।
सर्व साथ हें कर्म ठाणु, वचों शीघ्र नवाय ॥६॥

१. आदिनाथ स्तवन

श्रीपई

पंच परम पद मुक्ति महेश । ज्ञायक बुभग परम श्रीनेश ॥
तासु चरण तमि अशुबाहें धर्मों । जिन श्रीबीस तवें पद नमुँ ॥७॥
अवें प्रथम श्री आदि जिनंद । नाभिराय मरुदेध्वानंद ॥
अनुष पांचसे ऊंची काय । जन्म कल्याणक जिनता धाय ॥८॥

सांख्यन वृषभ तस्यो सोमत । कथन वरस्य शरीर दीर्घत ॥
 बभू इक्ष्वाकु भाव परिमास्य । सस्य चौरासी पूरव जान ॥६॥
 ग्यारह भव तें ज्ञान उद्योत । तब तें बन्धो उत्तम मोत
 एक वरव पीछे प्राहार । प्रास्तुक इक्ष्वाक रस सार ॥१०॥
 नृष श्रीयांस दियो प्रभु दान । हस्तनाथपुर जाकी भाव ॥
 बट तर लोच कियो हे सार । मन्मथर हे झसी धरु सार ॥११॥
 समोत्तरण बनपति ने कर्दो । चारह योजन को विस्तर्यो ॥
 तथ करि उपज्यो केवल मान । राक्षरिदि भुगतें धनदात ॥१२॥

बोहरा

पदासन धारुह हूँ, जिनवर धरघो जु ध्यान ।
 गिरि कदलास धाकाक बत, तहाँ भयो निर्वाण ॥१३॥

चौपई

बदि अषाढ की दुतीया जोई । प्रभु को गर्भ कल्याणक होई ॥
 शैत बदि नौमी के दिना । तप श्रीर जनम महोच्चव घना ॥१४॥
 फागुण बदि ग्यारसि तिथि जान । श्री जिनवर भयो केवलज्ञान ॥
 ताको कवि कहा बरननि करे । रसना एक कितकर लक्ष्मर ॥१५॥
 कृष्ण चतुर्दशी माघ जु मास । भयो निर्वाण मुक्तिपद वास ॥
 शिवानंद परमात्म भए । तीनि लोक जाके पद नए ॥१६॥

बोहरा

नर नारी जे भक्ति जुत, तिन दिन करे उषवास ॥
 फिरि पावै भव मनुष्य को, मुक्ति होइ भव नास ॥१७॥

इति बृषभदेव चर्यां

२. अजितनाथ स्तवन

सागर लाख करोरि पचास । बीते अजितनाथ परवास ॥
 जित रिपु राजा विजया मात । गज सांख्यण हाटक सम मात ॥१॥
 पुरी अजोष्या जन्म कल्याण । तीनि भवांतर तें भयो ज्ञान ॥
 धनक चारिसै साढ़े फाय । मांस बहुतरि पूरव भाव ॥२॥

बस इषाक नवेविनि चार । तीन विजस अंतर आहार ॥
 वेनु वीर पीयो बुधि वेह । अज्ञान नुप विविधा वेह ॥३॥
 बद्धवृत्त तबे तपु सिद्धी एतन्नह्य ब्रह्म विमर्शु किन्ही ॥
 समोत्तरस्य श्रीविनवर इत्ये । अज्ञान ब्रह्मे एतन्नह्य ब्रह्म ॥४॥
 बरननि सको अल्प मोहि ज्ञान । अज्ञान कर्मे अती केवलमपान ॥ १
 बहुविध राज विभूति विनास । अज्ञाने एवापि वार्ई सुख राशि ॥५॥

श्रीरक्षा

ठाठे योगाभ्यास, किमो सिद्ध अज्ञेय पर ।
 पहूँके अविबल वास, सकल करम दून दहन के ॥६॥

बोहरा

जेष्ट बदि मावस वरम, जनम माघ सुदि नीमि ।
 चैत्र सुदि पांरै बु तप, अ्यान अचति कर्म हीमि ॥७॥
 माघ महीना शुक्ल पक्ष, दशमी तिथि को ज्ञान ।
 पूस उज्यारि प्रतिपदा, ता दिन प्रभु निर्वाण ॥८॥
 इति अश्विनमास अरान

३ सभबनाथ स्तवन

श्रीचर्च

तीस करोरि नाथ निधिचार । शीतै प्रभु संभव अवतार ॥
 पिता जितारथ खेम्बा भाइ । सावित्री नगरी के राइ ॥१॥
 पुरब पवन सति अन्न झाकार । कर्ण खरीर हेम इनिहार ॥
 साडि नाथ पुरब सिधि ज्ञान । अत्रुठ चरिते काव अमल ॥२॥
 कुल इषाक मे पुरखचद । अचोत्तरसो ब्रह्मचर बृह
 तीनि अचोत्तर जै बुधि अई । अज्ञानि विषय दीह्य में अई ॥३॥
 सूरदास सावित्री बनी । अज्ञान, अज्ञान की विधि बनी ॥
 तरवर शुभय जालि जिहि नाम । तातर तपु श्रीयो अचिराम ॥४॥
 अज्ञानक केवल रिद्धि बनी । अज्ञाने जोष मुक्ति के बनी ॥
 राजरिद्धि अज्ञाने सहुयो पार । अज्ञाने अज्ञाने विधि अज्ञान अकार ॥५॥

बोहरा

समवसरण जिनवर तराँ, रक्ष्यो देवतनि धाड ।
 म्यारह जोजन को ठयी, अघमजन सुषदाइ ॥६॥
 फानुण सुवि नौमी गरम, जनम पूर्णिमा पूस ।
 छठि ल्छ्यारि चैत की, लीको तप प्रभु तूस ॥७॥

सोरठा

कातिण पूष्यी ज्ञान, केवलरिद्धि जिनेस की ।
 काती वदि निर्वाण, हुती चौथि ता दिन प्रमट ॥८॥
 इति संभवनाथ वर्णन

४. अभिनन्दन नाथ स्तवन

सोरठा

उदककोरि विश लाख, वीतें जम उद्धित मये ।
 श्रुत सिद्धांत है साधि, अभिनंदन जिन भान वत ॥१॥
 चौपई
 समर राय कृह तिमिर नसाइ । प्राची विसा सिधारय माइ ॥
 अवाधिपुरी कधि लछरा जानि । कुल इक्वाक महा बलवान ॥२॥
 सुवर्णवत देही की काति । षोडश और शत गणेशर पाति ॥
 पूरब लाष पचास अरोम । काय अहूठ सत बनक मनोम ॥३॥
 इन्द्रदत्त विनिता पुर राइ । कूर्जे विन मोक्षीर घटाइ ॥
 सालरि वृक्ष सघन सोमत । ता तर जोग अर्यो अरहंत ॥४॥
 तीन जनम धार्ये सुधिबान । साभ समे भयो केवलज्ञान ॥
 छोडत राज न कीनो मोह । बहा एहै राग अर दोह ॥५॥
 समोसरण जोजन दश अइ । रक्ष्यो देव वनि सहित समरि ॥
 ठाडे जोग मोक्ष कौ मए । गिरि सम्भेद तीर्थकर मए ॥६॥

बोहा

बीशाल उजेरी छठि प्रकट, तप अरु नमं कल्याण ।
 माय उजेरी द्वादशी, ता दिन जनम अरु ज्ञान ॥ ७ ॥

पूख शुद्धि चौदश विमल, शुक्ल ध्यान धरि ईस ।
भयो कल्याणक पंचमौ, सिद्ध भए जगदीश ॥ ८ ॥

इति अग्निनन्दन वर्णनं

५. सुमतिनाथ स्तवन

दोहरा

वारधि लाख करोर नो, तासु षटे परंजल ।
सुमतिनाथ भावन भयो, प्रतिबोधन जिन संत ॥ १ ॥

चौपई

भेषराम कौशल्या धनी । श्रीजिन माइ मंगला गणी ॥
चक्रवाकार ध्वजा फरहरै । राजनीति त्रिभुवन की धरै ॥ २ ॥
निर्मलकुल इक्ष्वाक विचार । तीनि जनम धै करी सम्हारि ॥
वर्ण देह सौवर्ण भणंत । भोजन दोइ दिवस परजंत ॥ ३ ॥
परदत्त विजयापुर ईश । घट्यौ क्षीर आहार जगदीश ॥
प्रियगु वृक्ष उत्तम अवलोय । प्रभु को तहा तपोधन होइ ॥ ४ ॥
भाव बधी पूरब लख जाल । सत्तोत्तर शत गणधर जाल ॥
धनक तीन से जिन बलबीर । दिन के अस्त ज्ञान की भीर ॥ ५ ॥
समोसरण जोजन दश जानि । द्वादश कोठे मध्य बषान ॥
कायोत्सर्ग जोग धरि ध्यान । भयो सम्भेदधिरि पर निर्वाण ॥ ६ ॥

दोहरा

हुँज अरु नौमी आबण दिवस, शुक्ल पक्ष वैशाख ।
गर्म जन्म प्रभु तप कइयो, श्रीजिन आगम आष ॥ ७ ॥
क्षेत्र शुदी एकादशी, ता दिन तप निर्वाण ।
भवि चैत बधि एकादशी, उपज्यौ केवल ज्ञान ॥ ८ ॥

इति सुमतिनाथ वर्णनं

६. पद्मप्रभु स्तवन

दोहरा

नख करोरि सागर गए, उपजे पद्म जिनंध ।
भविजन सब सुकृत भए, कटे कर्म के फंद ॥ १ ॥

चौपई

घुर राजा कौशबी तनो । जिन जननी सुसीमा भयो ॥
 कमलाक्षत लाछण ध्वज चग । गिरिहोत्तर सो गणधर सग ॥ २ ॥
 तीन लाख पूरब की धाव । धरुण वरुण दीसे तनु भाव ॥
 धनक घटाईसो परवान । काय तुरगता शुभग वर्षान ॥ ३ ॥
 तीनि जन्म धै पहिलै जाचि । इक्षाक वश उपजै प्रभु सांच ॥
 सोमदत्त मगलपुर राय । दूजै दिन गोक्षीर घटाइ ॥ ४ ॥
 वृक्ष प्रियंगुतक्ष तपव्रत लीयो । कर्मनास को उदिम ठयो ॥
 गोमूलक को समयो जानि । केवलरिद्धि भई भगवान ॥ ५ ॥
 समोसरण जोजन नव धाव । अमरनि रच्यो भक्ति हित साधि ॥
 गिरिसम्भेद पचम कल्याण । ठाढे जोगजु कृपानिधान ॥ ६ ॥

बोहा

माघ बदि छठि गर्भे जिन, तप फागुण बदि चौधि ।
 कातिग बदि तेरसि मुनौ, जनम ग्यान गुण गोधि ॥ ७ ॥
 पूरणमासी चैत्र शुदि, कर्म सकल परिजारि ।
 मुक्तिस्थल अविचल लह्यौ, जिन स्वामी भवतारि ॥ ८ ॥

इति पद्मप्रभु वर्णन

७. सुपार्श्वनाथ स्तवन

बोहा

नौ करोरि सागर गए, प्रभु सुपार्श्व अघतारि ।
 जो जन ध्यावै भाव धरि, ते पावै भव पारि ॥ १ ॥

चौपई

सुप्रतिष्ठित नृप बानारसी । मात महिषेना पुत ससी ॥
 साछण स्वस्तिक कै आकार । नील वर्ण तन भूलक अपार ॥ २ ॥
 बीस लाख पूरब की धाव । दूंसै धनुक काय को भाव ॥
 गणधर नवै पांच सुम्यान । इक्षाक वश भै पर परवान ॥ ३ ॥
 तीन जनम धै स्वपर विचार । जुग बासर गोक्षीर आहार ॥
 महेंद्रवत्त राजा दियो दान । पाटनपुर नगरी शुभधान ॥ ४ ॥

वृक्ष अनूप अति श्रीखड । तहां तपु ले दियो इन्द्रिन दड ॥
 दिन समस्त गत समयी भयो । राजनीति तजि केवल ठयो ॥ ५ ॥
 समोसरण तब देबनि रष्यो । नो जोजन कौ रत्ननि खच्यो ॥
 गिरिसम्मेद चडि शिवपुर गए । ठाढे जोग जिनेश्वर लये ॥ ६ ॥

बोहा

भाबौ सुदि छठि गर्भ दिन, जनम जेठ शुदि बार ।
 तप फागुण बदि सप्तमी, कह्यो प्रथ निरधार ॥ ७ ॥
 ज्ञान जेठ बदि द्वैज कौ, समासरण मडान ।
 फागुण बदि षष्ठी कह्यो, श्री जिनवर निर्वाण ॥ ८ ॥

इति सुपाश्वजिन वर्णनं

८. चन्द्रप्रभ स्तवन

सोरठा

सागर नौसै कोटि, जब सपूरण हूँ गए ।
 शशिवत आभा कोटि, चन्द्रप्रभ जिन जनमियो ॥ १ ॥

चौपई

चन्द्रपुरी राजा महासेनि । लक्षमा राखी ता गृह बेनि ॥
 चन्द्र चिह्न दुतीया की भाति । हिमकर बरत देही की शाति ॥ २ ॥
 दश लाख पूरब आव गनत । धनक देडसँ काय दिपन्त ॥
 तिमिर नसायो कुल दृक्षाक । सात भवातरस्यो बैराग ॥ ३ ॥
 नव तीनि सग गणधार । दूर्जे दिन लियो दूध आहार ॥
 पद्मखड नगरी को ईश । चन्द्रदत्त दियो दान अर्धीश ॥ ४ ॥
 तरवर नाग नाम सोमत । तालर तप लियो घरहुंत ॥
 तीन लोक कौ साध्यो राज । कियो निज धातम काज ॥ ५ ॥
 दिन की आदि पचमौंग्यान । गिरिसमेद धानक निर्वाण ॥
 समोसरण जोजन बसु आष । कायोत्सर्ग जोग प्रभु साध ॥ ६ ॥

बोहा

गर्भ चैत्र बदि पचमी, जनम पोष बदि ग्यारसि ।
 फागुण बदि तिथि सप्तमी, तप निर्वाण हुलास ॥ ७ ॥

पुस बदी एकादशी, केवल ज्ञान उद्योत ।
सुरगी सब मिलि पद नमै, विमल आतमा ज्योति ॥ ८ ॥
इतिचन्द्रप्रथ वर्योनिं

६. पुष्पवन्त स्तवन

सोरठा

सलितापति सब कोरि, अनुकर्मै जब खिरि गए ।
भए प्रतापी जोर, पुष्पवन्त पुङ्गी प्रकट ॥ १ ॥

चौपई

काकदी जनम जिनराय । सुग्रीव पिता श्री रामा माइ ॥
लाछरण मगर करै पदसेव । अन्द्राकृत निम्मल वपु देव ॥ २ ॥
हुँ लख पूरब वरणी आव । वनक एक सो पुदगल भाव ॥
बड़ो बश मुमि पर इक्षाक । तीन भवातरितै प्रभु ताकि ॥ ३ ॥
सूरमित्र चित्र हर राइ । प्रभुको गोरस चगी आहार ॥
हुँ दिन बीतै आयो आहार । तप लीयो जहाँ मल्लिका झार ॥ ४ ॥
घड असी गणघर मडली । भेलै दिव्व छुनि उछली ॥
नृप पदवी को साधि विचारि । केवल प्रगट्यो साभी बार ॥ ५ ॥
समोसरण वसु जोजन जानि । रत्नजटित भरु कचन खानि ॥
पुरुषाकार जोग अम्यास । गिरि सम्मेदपर मोक्ष अवास ॥ ६ ॥

दोहा

फागुण बदि नौमी गरभ, जनम पुस सुदि एक ।
तप भादौ सुदी अष्टमी, इह जिन वचन विषेक ॥ ७ ॥
आघहन सुदि परिषा दिवस, भई ज्ञान की रिद्धि ।
कातिग सुदि तिथि हुँज की, भए जिनेश्वर सिद्ध ॥ ८ ॥

इति पुष्पवन्त वर्योनिं

१०. शीतलनाथ स्तवन

दोहा

नौ करोरि सागर गए, मिटे दुरति आताप ।
शीतल पदवी को धरै, शीतलनाथ प्रताप ॥ १ ॥

बीपई

मानलपुर हठरष सुष तात । नंधाराणी श्रीजिन्नात ।
 लाकल श्रीवृष्म द्विमंत देह । कुल इलाक सीं कीनो नेह ॥ २ ॥
 घाम एक लाख पूरष की बखरी । नबै बलुक काय प्रभु लनी ।
 इककासी बखरष सुष कइ । तीनि जनम बँ प्रभु शुषि लहै ॥ ३ ॥
 बीतँ जब निस बातर होइ । कर्षो बाहार दूष हँ सोइ ॥
 पुल बसु राजा सिवपुरी घाम । शान अशीश भयी अक्षिरंतम ॥ ४ ॥
 वृष पलास शुभता शुषि देषि । तातर बर्षी दिनम्बर भेष ॥
 राज करत सभकित उद्दोत । शक्ति रिपु अत ज्ञान की ज्योति ॥ ५ ॥
 समोसरण देबनि करि बन्यी । जोजन लप्त अर्द्ध को बन्यी ।
 बोष बर्षी प्रभु काबोस्तर्ग । गिरि सम्मेदि तँ बए शिवमय ॥ ६ ॥

घोहा

षैत बदी तियि अष्टमी, गर्भ महोत्सव माष ।
 माष बदि तियि द्वादशी, जनम ज्ञान कल्याण ॥ ७ ॥
 नवार शुषि की अष्टमी, बर्षी द्विम्बर भेष ।
 पूस बदि चौदशि दिना, मुक्ति शिला पर देषि ॥ ८ ॥
 एक लाख घट लाख शत, सागर अंतर जानि ।
 या मै कलुक घटाइयै तब पूरो परमान ॥ ९ ॥

इति शीतलनाथ वर्णन

११. श्रीघांसनाथ स्तवन

बीपई

लप निरानबै लबीस हुआर । इतने वरष दीजिये डारि ॥
 इतनो काल उल्लिषि जब बषी । तब श्रैयांस कौ घावन भयी ॥१॥
 सिवपुरी राजा विमल । विमला राणी बहु गुण अमल ॥
 लाहन बेडो कचन वरण । मणवर सत्तोत्तर सो सरण ॥२॥
 लाष पूरष की । भाष श्री जिनवर की जानि ॥
 असी बलुक की ऊँची काइ । तीनि जनमबै वरम सुहाइ ॥३॥
 इलाक बंश कुल बीपक भयी । सो दूष द्वे दिन परि लयी ॥

परिठपुरी नर नाह तरिज । ता घर लयो आहार जिन्द ॥४॥
 तैदू वृक्ष सचन बहभाम । तप घरि तहां भए वैराग ॥
 अरुण उदय बैला निर्मली । तहां भए प्रभुजी केवली ॥१॥
 छिरणक छंडि बसुधा की राज । गिरि सम्मेद पर मोक्ष समाज ॥
 समोसरण जोजन गरि सात । ठाठे जोम कियो कर्मघात ॥६॥

बोहा

षष्ठी स्याम जु जेठ की, भए गर्म कल्याण ।
 फागुण बदि एकादशी, जनम ज्ञान गुण धानि ॥७॥
 पून्यो सावन सुदि तनी, तज्यो गेह जगदीस ।
 माघ बदि मावस दिना, मुक्ति रमनि के ईश ॥८॥
 इति ध्येयांस बरान

१२. बासुपूज्य स्तवन

बोहा

एक पौन सागर भए, चपापुरी मभारि ।
 बासुपूज्य प्रभु श्रीतरे, त्रिमूवन तारण हार ॥१॥

घोषई

बसुपूज्य है तात को नाम । जयदेवी माता अभिराम ॥
 महिष जु लाक्षण बरननि दिये । सत्तरि वनक काय जिनमये ॥२॥
 बरष बहतरि साष प्रमान । ध्राव श्री जिनवर की जानि ॥
 अरुन वरुण दीसै तनुसार । इक्ष्वाक वरुण छारुठि नराधार ॥३॥
 तीनि भवार्तरि तें प्रभु जानि । अर्यो कुमार काल वैराग ॥
 सुंदर नृपति सिद्धारथ पुरी । ताके घर कौनि प्रभु चरी ॥४॥
 दूर्ज दीना गो क्षीर आहार । पाटलतर भए भगन शरीर ॥
 निस प्रवेश को समथी जानि । प्रभुजू की भयी केवलज्ञान ॥५॥
 समोसरण को सुनि विस्तार । साठे छह जोजन को सार ॥
 आसन पष अर्यो शुभ ध्यान । चपापुर तै मुक्ति भिसान ॥६॥

बोहा

भाषाढ बदि छठि के दिन, बर्म बरयी जिनमान ।
 फानुलु बदि चौदसि बनी, जनम भोर अवधत ॥७॥
 भाषब चौदसि ऊबरि, लौच लिकी बिनराज ।
 माब उजेरि हूँ ब कौं, पंचमवति ठहराइ ॥८॥
 इति बासुपुण्य वर्णन

१३. विमलनाथ स्तवन

सोरठा

सागर नी तीस परजंत, कंपिलापुर नबरीं जनन ।
 विमलनाथ भरहृत, स्यामा रापी जाइयो ॥१॥

चौपई

पिता जिनेज जानि कृत बर्म । शूबर लंछण शेषत सर्म ॥
 साठि धनक दीर्घता जानि । उतने लाष बरषति तिथि आनि ॥२॥
 कनकबर्लु भरु इक्ष्वाकुल । पोषलीन जनमयी भयो सतील ॥
 राजरिद्धि सापी सब देव । छप्पन मणभर करत जु सेब ॥३॥
 जंबू वृष्य सघन सुबिसाल । लीनी तपु तर्हा बीनब्याल ॥
 दूर्ज हूचु लीयी गोकरी । नहराब दाता बरबीर ॥४॥
 महापुरुष पाटन नृप जानि । सांभ समै भयो केवलज्ञान ॥
 राजनीति सब तजी निदान । समोसरण छह जोजन जानि ॥५॥
 सजे जोब शिषर सम्बेद । जानै मोक्षपुरी के भेद ॥
 जेठ बदि दसमी के दिना । मारता बर्म बरयी जिन तना ॥६॥
 इति विमलनाथ वर्णन

१४. अनन्तनाथ स्तवन

बीहरा

सागर नी पूर भए, ता पीछै जु धरतु ।
 बिनतै जग उदित भयी, चौदसि व्रत सु महंतु ॥१॥

बौपई

धवबपुरी राजा श्रीसेन । सुरजा देवी माता जैन ॥
 सेही माछण है पद चम । धनुक पचास मरीर उत्तम ॥१॥
 धाव चरी लाष तीस बरष । कुल इक्काक जनमते हरष ॥
 कनकवर्ण बौवन गणधार । तीन जन्म तें भई सम्हारि ॥२॥
 राज विभूति तजौ तप धर्यो । लोच विरष पीयर तब कियो ॥
 विशाषभूति घम्मंपुर राय । दूष तीन दिन आहार घटाइ ॥३॥
 केवलज्ञान साक अनुसर्यो । समोसरण जनपति विस्तर्यो ॥
 पंचघट्टे जोजन के मान । अंतरीक्ष गति ताकी जान ॥४॥
 उमै जोग महाबल वीर । गिरिसम्मेद तैं शिवपद धीर ॥
 कार्तिक बदि परिवा के दिने । माता गर्भ धरयो प्रभु तन ॥५॥

बोहरा

जेठ स्याम चौदसि जनम, अरु वारमि कौ ग्यान ।
 कैत्र बदि भावस विमल, ता दिन सप निवनि ॥६॥
 इत्यनन्त बर्यन

१३. धर्मनाथ स्तवन

सोरठा

क्यारि उदधि ना माहि, पौन पल्लि घट जानिये ।
 जब इतने बीताहि, धर्मनाथ जिन धवतरे ॥१॥

बौपई

रतनपुरी श्री भानु नरंद । राखी सुजतति जिनचंद ॥
 बरष लाष दस हीरा रेष । कुखंडी कचन सम देष ॥२॥
 पैतालीस धनुक वपुसार । दू चालीस सग गणधार ॥
 जब तीसरे कर्म छय भए । राजत्यागि तपकौ परणये ॥३॥
 दधि परनी कौ रूप अनूप । तातर प्रभु जु नगन सक्प ॥
 गहो क्षीर दूजी दिन जानि । वट्टमानपुर नगर बधान ॥४॥
 दानपति राजा धरसेन । सांक समे भयो केवलसेन ॥
 समोसरण जिनकौ जानिये । जोजन पाँच तनौ मानिये ॥५॥

ठाढे जोय बिनेश्वर भए । गिरि सम्भेद पंचम गति बए ॥
 बुदि पांच बैशाख जुमास । श्री जिनबर जू गर्भ निवास ॥६॥
 माघ बुदि तेरसि जब ठई । जनम धनव ज्ञान रिद्धि भई ॥
 जेठ उज्यारी चौथि बचान । भए तपोधन श्रीभगवान ॥७॥
 पूस बुदि पुन्यम के दिना । मुक्ति महोछव ग्रानंद घना ॥
 अतर पावपस्लि उनमानि । सहस करोरि वरष घटि बानि ॥८॥
 इति चर्मनाथ दर्शनं

१६. शांतिनाथ स्तवन

दोहरा

इतनी काल गए भयो, पुन्यतनी बलसार ।
 षोडशमो जिनराज गणि, शांतिनाथ अवतार ॥

चापई

गजपुर विश्वसेन महिईण । ऐरादेवी माता जगदीस ॥
 मृग लांछण लष वरष प्रमान । कनकबर्ण कुशवंशी जान ॥२॥
 काय धनक बालीस उत्तय । घट भौर तीस जु गणेशर संग ॥
 द्वादस भवतै समिकत बान । राज बिभूति तमी छिण्यमान ॥३॥
 नंदिक रुक्षतरें तप जोइ । वीर गहूी बीतें दिन बोइ ॥
 सुमनस पुर राजा प्रिय मित्र । भयो दानपति परम पवित्र ॥४॥
 केवल भयो सांक के समें । गिर सम्भेद ठाढे शिव रमैं ॥
 समोसरण ले घ्राये देव । जोजन चारि अष्ट करि सेर ॥५॥

दोहा

भावव बदि जु सप्तमी, लयो गर्भ अवतार ॥
 कारी चौदसि जेठ की, जनम तपोधन चार ॥६॥
 जेठ बदि तेरसि दिवस, केवल ज्ञान कन्याष ॥
 पूस उजैरी दशमि कौ, पायो पद निर्वाण ॥७॥

इति शांतिनाथ दर्शनं

१७. कुंधनाथ स्तवन

सोरठा

सहस्र कोरि गए वर्ष, रत्नवृष्टि गजपुर भई ।

कुंधुनाथ परतप्य, सूरराय के गृहभए ॥१॥

चौपई

श्री राणी माता जिन जानि । भद्रारूप लाक्षण पहिचानि ॥

सहस्र पञ्चानवै वर्ष की भाव । धनक तीस करि काय उचाव ॥२॥

हेमबरण कुरुवश प्रधान । गरणधर पांच तीस जुत जान ॥

तीनि भवातर तै हिय चेत । राज त्याग कियो तप सो हेत ॥३॥

उत्तम तरुवर तिलक बषान । तातर प्रभु कियो लौच विषान ॥

मदिरपुर बरदत्त नरेश । ताके क्षीर घट्यौ जु जिनेश ॥४॥

केवल लह्यौ समे दिन अत । ठाढे जोग भए अरहत ॥

समोसरण है जोवन च्यारि । गिरि सम्भेद ते मुक्ति पधार ॥५॥

बोहा

सावन वदि दशमी प्रकट, गर्भवास प्रमुलीन ।

बैशाख सुदि दसमी जनम, जानौ भव्य प्रवीन ॥६॥

सुदि वैशाख की प्रतिपदा, तप अरु जान समाज ।

तीज उजेरि चैत की, शिव पहुँचे जिनराय ॥७॥

इति कुंधनाथ वर्णनं

१८. अरनाथ स्तवन

सोरठा

बरष हजार करोरि, अनुकर्म जब पिर गए ।

अर जु नाथ भवतारि, गजपुर नगर सनाथ किए ॥१॥

चौपई

पिता सुदर्शन देवी भाय । लाखण नंदावती दिवाद् ॥

सहस्र अउरासी वृष जीवत । कुरुवंशी हाउ सब कंत ॥२॥

धनक तीस उत्तंग शरीर । तीनि तीस गरणधर बलवीर ॥

तीन जनम तै आपा लघ्यौ । राज समाज सकस तह्यौ नघ्यौ ॥३॥

वृद्ध आंब को उत्तम जोइ । तातर तपु लीयौ चम षोइ ॥
 अषराजित गजपुर भूपाल । तां घर बटपौ क्षीर किरपाल ॥४॥
 केवल उपज्यौ साहु प्रवीन । समोसरण जोजन अर्द्ध तीन ॥
 गिरि सम्मेद तैं उमै जोग । भुक्ति बधू स्थी भयो सजोग ॥५॥
 तीज उजेरी फागुण मास । ता दिन कियो गर्भ निवास ॥
 अषहन सुदि परिबा शुभ कर्म । इंद्रनि कियो महोच्छव जन्म ॥६॥

दोहा

चैत उज्यारी पूणिमा, तप लीनो भगवान ।
 अषहन सुदि चतुर्दशी, पचम ज्ञान विधान ॥७॥
 इत्यरनाथ बरान

१६. मल्लिनाथ स्तवन—

सोरठा

अंतर कहुौ विचार, चौवन लाष जु बरष को ।
 मल्लिनाथ अवतार, मिथिला नयरी जानियै ॥१॥

चौपई

पिता कुंभ हरिवशी गोत । प्रभावती का कौष उदोत ॥
 लाक्षण कलस वरुं तनु हेम । बीस घाठ गणघर सौं प्रेम ॥२॥
 पचवन सहस वर्ष की आब । बनक पञ्जीस सराहै काय ॥
 जाती समरण तीनि भव तनौ । कुमार काल दीव्या पद गर्नौ ॥३॥
 अशोक वृष्य तल कीनौ क्षोर । दूर्ज दिन पीयौ क्षीर न घोर ॥
 नंदिसेन नै दीनो दान । चहकहर पुर को राजा जान ॥४॥
 केवल रिद्धि निसाकी आदि । जोजन तीस सभा मरजाद ॥
 पुरुषाकार जोग की रीति । गिरि सम्मेद र्थे कर्म वितीत ॥५॥

दोहा

चैत उज्यारि प्रतिपदा, गर्भवास आनंद ।
 अषहन एकादशी, जनमरु तप जिनचंद ॥६॥

ज्ञान पूस बदि द्वैज कौं, प्रकट भयो ससार ॥
 फागुण सुदि की पंचमी, लह्यो मुक्ति पष सार ॥७॥
 इति मस्तिनाथ बर्णन

२०. मुनि सुव्रतनाथ स्तवन

बोहा

बरष लाख घठ बीत तै, मुनिमुव्रत परगास ।
 मुमतिराय पदभावती, राजग्रही मे बास ॥१॥

चौपई

कूरम चिह्न दीपे निसान । तीस हजार बरष लौं जान ॥
 बीस धनक दीरष जिनदेव । स्याम बरण हरिवश कहेव ॥२॥
 तीन जनम तें बसय गई । चंपक तखर दीष्या लई ॥
 विश्वसेन मिथिलापुर धनी । दान दियो करि विनती धनी ॥३॥
 दूजै दिन स्वामी बलबीर । सब तजि लीनों उत्तम धीर ॥
 राजरिद्धि तजि रवि के भ्रत । भए केवली श्री भरहत ॥४॥
 अष्टादश गणधर मइली । द्वादश सभा मधि कर रली ॥
 समोसरण धनपति तब रक्यो । अर्द्ध जुगम जोजन की बच्यो ॥५॥
 विनु वैठे कियो भ्रातमकाज । गिरि सम्मेद पर मुक्ति समाज ॥
 साबन बदि दुतिया गुण सनी । गर्भ कल्याणक रचना बनी ॥६॥

बोहा

बैशाख बदि दशमी विमल, जनमरु तप परधान ॥
 बैशाख बदि नौमी कही; उपज्यो केवलज्ञान ॥७॥
 फागुण बदि की द्वादशी पंचम गति के ईश ।
 करै महोछव भगति बर, नर तिरयंच सुरीस ॥८॥

इति मुनिमुव्रत बर्णन

२१. नमिनाथ स्तवन

सोरठा

बरष पंचलाय जानइनिहूँको जब होइ गये ॥
उपजे नमि भयवान, मिथिलानबरी विजय घर ॥१॥

चौपई

वीरा राखी जननी जैन । नीलोपल लाङ्गण बढ झैन ॥
पद्म धनुक भर कंचन रंग । दस हजार बरष लौं संघ ॥२॥
तीनि जनम ये छाडधौ कोह । कीनी हरिबंशनि स्वौं मोह ।
परिग्रह स्याम घोष को भार । बकुल नंदिसेनि नै कीनो दांन ॥३॥
नेमिदत्त सयोगी राय । दूजै दिन गोक्षीर घटाइ ॥
केवल उपज्यो निस की घादि । समोसरण हूँ की भरजाद ॥४॥
वांनी भलें दस भर तीनि । गणेशर सभा चतुर परबीन ॥
जिन जू ठाडे शिवपुर गए । गिरि सम्भेद कल्याणक ठए ॥५॥

दोहा

क्वार भ घेरि हूँज को, गर्भ कल्याणक होइ ।
बदि घाथाळ दसमी दिना, जनम महोखव सोइ ॥६॥
परिबा स्याम घाथाळ की, दीक्षा लई जिनेस ।
घाघहन सुवि एकादशी, उपज्यो ज्ञान महेश ॥७॥
बदि चौदश वैशाख की, गमण कियो शिव ओर ।
कर्म रूप अरिमादि कै, भए प्रतापी ओर ॥८॥
इति नमि बरुणं

२२. नैमिनाथ स्तवन

सोरठा

असी तीन हजार, अर्द्ध साल बरष में ॥
अनुकुल तारणहार, नैमिनाथ द्वारावती ॥१॥

चौपई

सिखा देवी राणी जिनमात । समुद्र विजय राजा गणिततात ॥
 लाछण संघ सहस्र वर्ष थाव । स्याम वरण दश अनुक उचाव ॥२॥
 ग्यारह नरणघर सेवा रहैं । समकित जनम दशक तैं कहैं ॥
 बिवाह समय छोडपी सतार । भीडासिगी तरु डलैं तब धार ॥३॥
 वीरपुरी राजा नरदत्त । दई खरी गोक्षीर पवित्त ॥
 केवल धरुन उदै संचरघी । जोजन देह सभा यल कहघी ॥४॥
 पद्यासन प्रभु जोग विचार । मुक्ति स्थल प्रभु कौ गिरनार ॥
 छठि उज्यारी कासिग मात । जिनवर भको नर्म निवास ॥५॥

दोहा

सुकल पक्ष सावनी, तिथि पण्ठी शुभवार ।
 जन्म कल्याणक शीर तब, इन्द्रनि कौयी विचार ॥६॥
 काती सुदि एकादशी, प्रगटघी ज्ञान महत ।
 सुदि भावाढ की श्रष्टमी मुक्ति गए धरहत ॥७॥
 इति नेमिनाथ वर्णनं

२३. पार्श्वनाथ स्तवन

दोहा

वरष पांचसैं गत गये, जगमे कियो प्रकाश ।
 नागराय धासन दिमें, पापहरण जिनपासि ॥१॥

चौपई

धश्रसेन वानारसी गामि । वामा जिनमाता को नाम ॥
 नौ हार्थ करि काय विशेष । एक शत वरष धावकौ लेश ॥२॥
 उग्रवश तनु हुति है नील । ग्यारह भवतैं साध्यो शील ॥
 धरघौ कुमारे दीक्षा रूप । तरवर तरु परम धनूप ॥३॥
 दाषपुर धनदत्त नरेश । धीर खरी धीन्ही परमेश ॥
 निश के समें पंचमी ग्यान । सकोसरण सेवा जोजन मान ॥४॥

दश पराधर जानी राजेंत । जिन अतिबोधे जीव महुँत ॥
ठाठे जोग भयो निर्बाण ॥ विरि सम्मेद जिनकर शुभ धरन ॥११॥

बरेहु

कुरंग हुँज बैशाख की, गर्भवास प्रवतार ॥
पूस बदि एकादसी, जनमरु तप अधिकार ॥१॥
चौथि जु कारी चैत की, प्रगटधी पंचम ज्ञान ।
सावन सुदि सातै दिना, जिनजू करै निर्बान ॥७॥
इति चारवैनाथ बर्येन

२४. महाबीर स्तवन

बोहा

बधे प्रठासो के गए, महाबीर जिनराय ।
कु डलपुर नदरी जनम, धन्य कु त्रिगला माय ॥१॥
चौपई
पिता सिघारथ लाछण सिब । साथ हाथ की काय उत्तम ॥
प्रभु को ज्ञान बहुरि वर्ष । गणधर ग्यारै हूँ परतप्य ॥२॥
उग्रवंश देही हुति हेम । तेतीस जनम धेँ बाँझी येम ॥
योग धरधी सब राजकुमार । सधन वृष्व शालिज को सार ॥३॥
कुमार सें कु डलपुर घनी । दूषधरी ताके धर बनी ॥
केवल उपज्यौ साँझी बेर । समोसरण जोउन के फेर ॥४॥
बावापुरी धरधी दिड ध्याल । ठाठे जोग भए निर्बान ॥
घायाड सुदि छठि गर्भे निवास । जनम चैत सुदि तैरस सास ॥५॥
भगहन बदि ग्यारसि तप जानि । बैशाख बदि दशमी को ज्ञान ॥
कातिग बदि मावस पुनीत । सिद्ध भए सब कर्म्वे जितल ॥६॥
इति श्री बद्धमान बर्येन

सरस्वती बन्दना

चौपई

सिद्धे बुजिर धार्यै पद धरें । सारब तनी बबति अनुसरें ॥

श्वेत वस्त्र करि शीना लसें । सुमिरत आह कुमति सब नसें ॥१॥
 मुख जिन उदभव भंगल रूप । कवि जननी श्रीर परम अनूप ॥
 करि भंजुली कर शीशु नवाइ । करो बुद्धि कौ मोहि पसाइ ॥२॥
 जनम जरा मरण विहृद । सोभित छह दशम तुंड ॥
 रनु म्रुण पग नेवर भ्रुणकार । अविरेल शब्द तनी दातार ॥३॥

इति मगलाचरणं

मानुषोत्तर चरणं

नमिता चरण सकल दुष दहीं । जेपवाल उतपति सब कहीं ।
 अघो मधि है लोकाकाश । पुरुषाकार बधानें तास ॥१॥
 लोकमध्य है उभी त्रश नालि । चौदह राजू उचित बिसाल ॥
 चरण स्थल जुग वनें निगोद । नित्य इतर जिन वचन बिनोद ॥२॥
 धनतानंत जीव की धानि । कबहूँ ताकी होइ न हानि ॥
 तहां धावतनी न मरजाद । पंच जीव यह रीति धनादि ॥३॥
 जितने जीव मुक्ति नित जाहि । तितनें इच्छातें निषराहि ॥
 घटें नहीं निगोद की राशि । बढें न सिद्ध धनत बिलास ॥४॥
 अघोलोक तनी परमान । कटि प्रदेश तें नीचो जानि ॥
 ऊपर ऊदर लिलाट परजत । ऊर्द्धलोक की हृद् गणत ॥५॥
 मध्यलोक उद-स्थल गनौ । द्वीप समुद्र संख्या विनु भनौ ।
 पडयो पेत्र नाभि के ठाम । मानुषोत्र है ताकी नाम ॥६॥
 मानुषोत्र मरजादा जानि । द्वीप अढाई सागर मानि ॥
 पश्चिमी जंबूद्वीप बिचार । जोजन लाख एक बिस्तार ॥७॥
 तीनि साथ हैं बलयाकार । मध्य सुदर्शण मेरु पहार ॥
 जोजन लाख तुंभ है सोइ । जोजन सहस भूमि में होइ ॥८॥
 ताके पूरब पश्चिम भागगणौ । क्षेत्र तीस द्वै अविचल अणौं ॥
 भरत ऐरावत द्वै ए जानि । उत्तर दक्षिण परे बखान ॥९॥
 ए सब मिलि भए तीस रु चारि । तहां द्वै शशि द्वै रवि को उजियार ॥
 द्वीप समुद्र पर भावें जानि । दुगुण दुगुण इनकी परमान ॥१०॥

तार्थ धीर जु परबत पडे । पदम ब्रह्म ऊपरि तिति बडे ।
 श्री भूत ध्याधि जुवे ध्यारारि । तिनकीं तहा सदैव निबास ॥११॥
 तिनतै नदी चतुर्दश बली । अविचल तहा समुद्र हे मिली ॥
 गंगा सिधु रोहिता नाम । द्रोहित भौ हरिता अभिराम ॥१२॥
 हरिकाता सीता ए रोड । सीतोदा नारी अचलोइ ॥
 नरकाता श्री सुवर्ण नागनी । स्यकुला रक्ता फुनि सुनि ॥१३॥
 रक्तोबा चौवह ए नाम । स्वच्छोदक तिनमें अभिराम ॥
 मतापाबलि लवनोदधि धीर । जोजन लल हँ गहन गभीर ॥१४॥
 वारी जलनिधि बहु जंतुनि भर्यो । ठोर ठोर बडवानल भर्यो ॥
 जिष्टोदक पीवै सब सोइ । उदधि मधि नहि रंच समोइ ॥१५॥
 द्वीप धातुकी तापोफेरि । जोजन लाख चारि में मेर ॥
 विजयाचल जानी गिरि नाम । गिरि प्रति भई ऐरावत ठाम ॥१६॥
 सलिता गिरि प्रति दस अरु चारि । पूर्ब रीति हँ लेहु विचारि ॥
 ता चा फेर समुद्र कौ नाम । कालोदधि मीठो जल ठाम ॥१७॥
 घाठ लाप जोजन बिस्तार । बेह्यो वज्र बेदि अपार ॥
 ता पावल पुष्कर बर दीप । जोजन सोलह लाख समीप ॥१८॥
 जोजन घाठ लाख बिस्तार । पुष्कराढं ता माहि विचार ॥
 पूरब पश्चिम गिरि अभिराम । मंदर विद्युत माली नाम ॥१९॥
 मेरु संबंध हँ जे गयो । भरथ ऐरावत चारिजु भयो ॥
 पूर्ब विदेह साठि अरु ध्यारि । तिनकीं प्रलय न कहूं लगार ॥२०॥
 नदी चतुर्दश गिरि प्रति जानि । सत्तरि ओर एक सो जानि ॥
 इहां लौ मानुषोत्तर पिहचानि । देव विनां कोऊ धार्ये न जानि ॥२१॥
 यह अनाधि की त्रिधि कहबाइ ॥
 अथ सब क्षेत्रनि कीं परमान । सत्तरि और एक सो जानि ॥
 तामें दश ऐरावत भरथ । सी और साठि विदेह समर्थ ॥२२॥

विरहमान वरतैं जिन बीस । सदा साश्वते प्रमु जगधीस ॥
 एक तनो जब होइ निर्वान । दूजे को होइ गर्भ कल्याण ॥२३॥
 क्षेत्र सदा भविनाशी जोइ । सदाकाल चौपई तहां होइ ॥
 विनाशांक तिनि मैं अब लहौं । भरत ऐरावत दश जे कहौं ॥२४॥
 कछु न भविचल दीसैं तहा । छहो काल वरतैं हैं जहां ॥
 सुनि सो साठ क्षेत्र को हाल । तहां सदा चतुर्थम काल ॥२५॥
 मुक्तिपथ सम्यक् परिकार । तहा तैं चलतु रुकन लगार ॥
 जब दशमे पंचम परवरें । कोऊण मुक्ति पंथु पगु धरें ॥२६॥
 जो कोई जीव सम्यक्ती होइ । बारह अनुदत पालें सोइ ॥
 ताके फल विदेह भवतार । जेतनि ह्वैं जु करैं सम्हालि ॥२७॥
 सुख सो मुक्ति रमणि को वरें । कर्म उपद्रव सो निज्जरे ॥
 धल्प बुद्धि सूक्ष्म मम ज्ञान , अढाई दीप तनो बखान ॥२८॥
 करबी सक्षेप पनै विस्तार । व्योरो कहत ग्रन्थ अधिकार ॥
 जा को सब व्योरे की चाह । बड़े ग्रन्थ देखो भवगाह ॥२९॥
 इति मानुषोत्तर वर्णनं

असंख्यात अनंत गणित भेद बरण

या तैं द्वीप समुद्र जे भौर । दुगुण दुगुण गणि तिनि काँ दोर ॥
 अंसैं करि भाषैं असंख्यात । स्वयभू रमन अत विष्यात ॥१॥
 लेषो असंख्यात कौ गुणौ । जिनवाणी जैसो कस्यु सुनौ ॥२॥
 तब पहीले मे सरसौ भरें । सो सरसो सुर निज करि धरें ॥
 द्वीप एक प्रति समुद्र जु एक । डारतु जाईय है जु विवेक ॥३॥
 जासु द्वीप मैं खूटे सोइ । फिरि गरता वाही सम जोइ ॥
 पूरे होत एक हर करैं । सो पहिलै गरता में ले भरें ॥४॥
 भवगरता जो द्वीप समान । जहा सरसौ पूटी ही जान ॥
 ताकी सरसो लेइ उवाइ । एक एक फिरि डारतु जाय ॥५॥

बन्धन कौश

एक रहै जब पाछै फिरै । ताहि प्रथम गरताले भरै ॥
फिरि घूटै ता द्वीप समान । गरता एक वनै भरि ग्यान ॥६॥
ता घर सरसौं फिरि उचकाय । द्वीप समुद्र एक डारतु जाय ॥
एक रहै फिर ताहु लाइ । पहिले गरता मध्य भराइ ॥७॥
जब बहु भरे करत इह रीति । लै उगइ सुनौ रे मीत ॥
एक दुतीय गरता कर सोइ । पहिले कल्पित गरत समोइ ॥८॥
कणि एकत्र जु डारतु जाइ । नाथत नाथत एक रहाइ ॥
कणि गरता गिरि ताहि समान । एक वचे पहिले घरि घान ॥९॥
अमुक्रम फिरि गरता बहु भरे । सब ले एक दूजे मे करै ॥
सो सब ले कल्पित सो भेल । द्वीप समुद्र प्रति ठानै खेल ॥१०॥
फिरि पहिले के भरतौ जाइ । पूरण भए तो उचकाय ॥
एक एक दूजे मे चलै । तब वह रीति दूसरो सले ॥११॥
एक तीसरे सर्व जु गोद । कल्पित ले फिरि करै विनोद ॥
वह सब घटि जब एक रहत । फिरि दूजो गरता मेलत ॥१२॥
पूर्व रीति जब जब वह भरै । तब तब एक तीसरो करै ॥
बहु विधि भरै तीसरो जबै । चौथो एक जु डारै तबै ॥१३॥
घोर सकल कर ले उचकाय । कल्पित गर तासौं जुर लाइ ॥
करतु चलै पहिली की रीति । एक रहै तीजै भरि भीत ॥१४॥
जब जब तीजो भरतौ जाइ । एक एक चौथो जु भराइ ॥
भौंसी रीति अतुर्थम भरे । पूरो भए सकल उदरे ॥१५॥
जब जब जहां छेहली सरसौ जाइ । स्वयम्भू रमण समुद्र कहाइ ॥
असंख्यात याही कौ नाम । मेरु तै अद्भ रजू सो ठाम ॥१६॥
मध्य लोक कौ अतर जोइ । बात बलय वेदघो अन्न सोय ॥
पात अक्षया घोर अक्षयात । नाम अतत ही विख्यात ॥१७॥

बोहरा

जिनवर मुख उदभव प्रगट, श्रुत घग्घ सिद्धांत ॥

तिनमें मुनिमें बरनई, गण सत असध्य घनत ॥१८॥

इति असंख्यात घनंत गणित भेद बर्णन

घोजन गणित भेद बर्णन

चौपई

अब सुनि घावपलिका कथा । जिनवानी भाषी है जया ॥
 राई षाठ तनो तिल एक । एक जब वसु तिल यह विवेक ॥१॥
 अब वसु उदरे उदर मिलाइ । सो तो घागुल एक कहाइ ॥
 द्वादश घागुल मामे कोइ । एक विलादि कहावै सोइ ॥२॥
 जम्म विलादि जहा ली दोर । कहियेँ हाय एक सा ठोर ॥
 लीजँ हाय चारि की बड । ताकी नाम कहायै दंड ॥
 डँ हजार जब गनता जाइ । सो तो एक कौश ठहराइ ॥३॥
 चारि कौश जब एकतकरै । ताको लघु जोजन उच्चरै ॥
 अब गणिएँ जोजन सो पच । जोजन महा एक गणि सच ॥४॥

इति जोजन गणित भेद

पर्यायु भेद बर्णन

चौपई

पलि घावकी गणियै जदा । घनि गरता लघु जोजन तदा ।
 घाडी ठाडी जोजन एक गहरौ तितनी यहै विवेक ॥१॥
 भोग भूमि मेढा के बाल । जो दिन सात तना हीइ बाल ।
 ताइ पडु घनभागी करै । रौदि दावि ता कूपहि भरै ॥२॥
 चक्रीरथ सुर नगापूर । करि पसकै ताकीँ चकपूर ॥
 एक सप्त वर्ष बीति जब जाइ । तहां वें एक षड निसरइ ॥३॥

अनुक्रम रूप रिक्त वह होइ । धाव पति कहावै सोइ ॥
जोतिख भीतर धाव प्रमान । इनही पति नखी तु जानि ॥४॥

इति वलपानु भेद

पल्यसागर भेद बर्यांन

चौपई

धब सुनि सागर धाव प्रमान । ज्यों श्री जिनबर करधौ बखान ॥
रूप महा जोजन को मंड । तब धनभागी धावै षड ॥१॥
ज्ञान शक्ति सौ सत षड वरै । तांसु वा गरताले भरै ॥
धीरै एक शत वर्ष विकार । एक केश करि षड निर्धार ॥२॥
खाली होइ रूप वह जवै । सागर पल्य कहावै तवै ॥
पति जहाँ दश कोराकोरि । तब इक सागर सख्या जोरि ॥३॥

इति पल्यसागर भेद बर्यांन

राजु गणित भेद बर्यांन

चौपई

धब सुनि रज्जू गणित को भेद । जैसो जिनबर भाष्यो वेद ॥
महालाव जोजन को रूप । पहिली ऊँचै पूरव रूप ॥१॥
सागर पल्य कुबा को चार । एक षड है लीया विचार ॥
ताको षड तब एक ली करै । ज्ञान शक्ति सौ रूपे भरै ॥२॥
एक षड तब वहाँ लै कटे । मेघ सुदर्शन माथे वडे ॥
जोजन लाख तनी परिमान । एक षड धरि श्री फिरि धरनि ॥३॥
इह विधि धरतु जिन कटे सोइ । रज्जू पल्य तब ही बखलोइ ॥
कोराकोरी दश पल्य जवै । सागर एक कहावै तवै ॥४॥
जब सागर दश कोराकोरि । सूचि एक तहाँ सु जोरि ॥
सूचि आइ दश कोराकोरि । धनरो बचन सुनि मोरि ॥५॥

दश कोराकोरि धनरोष । ताकी होइ एक पदरोष ॥
 वं दश कोराकोरी जब वहाँ । तब जग सेठि नाम जिन कहँ ॥६॥
 ता जग सिद्ध की सतम भाग । गमत एक रज्जू यह लाग ॥
 धँसे चौबहू रज्जू प्रमान । उँचे तीनि लोक को जान ॥७॥
 रज्जू तीन सँ तेतासीस । घनाकार वरण्यो जगदीस ॥
 धब सुनि पूरब की मरजाद । जामै सहियै अँतरु प्रादि ॥८॥

इति रज्जू गणित

बोहा

सत्तरि लाख करोरि मित, छप्पन सहस करोरि ॥
 इतनै वरष मिलाइये, पूरब संख्या जोरि ॥१॥

इति पूरब गणित

षट्काल धरान

चौपई

मध्यलोक सब रज्जू प्रमान । श्रुत सिद्धान्त करै बधान ॥
 धब सुनि छहौं काल व्यौहार । कितक जीव कैसो विस्तार ॥१॥
 अँतकाल नासी दश घेत । अगत ऐरावत भूमि समेत ॥
 छहौं काय प्राणी नही दीस । तब एक जुक्ति करै जसईस ॥२॥
 जुगल बहुतरि ले उछंग । विजयारष घर लेउ धमग ॥
 तब फिर दशो घेत्र निमये । जैसे के तैसे वेदिये ॥३॥

सुषमा सुषमा काल धरान

चौपई

सुषमा सुषमा प्रथम जो काल । आयु प्रवर्तते तहां विसाल ॥
 जब उनि जुगलनि इन्द्र विचार । दश घेत्रनि मैं करे संचार ॥४॥
 धब सुनि काल रीति क कछु कछो । जितक प्रमाण व्यवस्थिति लहौं ॥
 सागर कोराकोरी आरि । प्रथम काल मर्यादि विचार ॥५॥
 जुगल जीव वरतै तहि काल । सुंदर कोमल धति सुकमाल ॥
 मति श्रुति अचधि जु तीनो ज्ञान । उपज तहां थै साथ बखान ॥६॥

तीन पत्थ की पूरी आय । छह हजार धनक की काय ॥
 बेर प्रमाण्य आहार जु करै । सोऊ तीनि दिवस में लहै ॥७॥
 पूरै दस विधि उत्तम दान । कल्पवृष्य सब के ग्रह जान ॥
 सो तह दस प्रकार बरनये । तिन के नाम सुनी गुण जये ॥८॥

कल्प वृक्षों के नाम

शौचई

तूरज मध्य विभूषा जानि । स्रग्य अरु ज्योति द्वीप मुख छानि ॥
 ग्रह भोजन भाजन अरु भास । सुनि अरु इनकी धान प्रकास ॥६॥
 मद्य वृष्यमादिक दातार । तूर्य्य देय वाजिन्न विचार ॥
 आभरण देइ विभूषा रूप । स्रग्य तरु देइ पुष्य विनु हूष ॥१०॥
 सूर्य समान हरै तम जाल । ज्योति वृष्य अंसो गुणमाल ॥
 दीपदान दीप तै जानि । ग्रह दाता ग्रह रूप बवान ॥११॥
 भोजन तरुवर भोजन त्यागि । भाजन पातर वृष्य सौलागि ॥
 वसन सकल देइ वस्त्र उदार । कल्पवृक्ष ए दस परकार ॥१२॥
 इहि विधि सुष सौ काल बिताइ । आब जहां नौ मास रहाइ ॥
 नारी गर्भ होइ तिहि समै । पूरौ होइ जुगल तह जमै ॥१३॥
 माता छोकि पिता जभाइ । ततविणवे बदलै परजाइ ॥
 सकल शरीर जाइ थिरि ऐसैं । पढमै तै कपूर उठ जैसे ॥
 कर्म बेदनी की नही पीर । अगनी दाह नहीं करै शरीर ॥१४॥
 वे दोऊ मरि स्वर्ग अचतरे । जिनबाणी प्रकास यो करै
 दोऊ शिशु अमुठा रस पीय । दिन उंचास तरुण बपु कीय ॥१५॥
 जनमतै भया बहु नब धान । तरुण भये पति नारी जान ॥
 सनै सनै बहु बीतै काल । परिवसों दूजी मुणमाल ॥१६॥

सुषमा काल वर्णन

शौचई

सुषमा नाम ताको स्तुत कहै । जुगल जीव तामें हू रहै ॥
 कोराकोरी सागर तीनि । काल मर्यादा कही नबीन ॥१७॥

दोह पत्य भ्रायु डतकिष्ट । बनसहस्रहे काय बरिष्ठ ॥
 लेह भ्राहार गसे दिन दोह । परमित तसु बहेस जोह ॥१५॥
 कल्पवृक्ष करं मध्यम दान । महिमा काल तनि यह भानि ।
 इह विधि काल दूसरी जाइ । काल तीसरी तब सरसाइ ॥१६॥

सुधमा दुषमा काल बरान

सुधम दुधम है ताको नाम । जीव जुगल ताके अभिराम ॥
 कोरा कोरी सागर दोह । काल तनी मर्यादा होइ ॥२०॥
 धनक सहस्र दोह की काय । एक पत्य की भाव विहाय ॥
 लेह भ्राहार एकांतरी जीव । कहुँ भावले भरि जु सदीव ॥२१॥
 दान अवन्य कल्प तर देहि । जीव सकल धारति से लेहि ॥
 अष्टम अक्ष पल्लि की कहुँ । तृतीय काल मे बाकी रह्यौ ॥२२॥
 गुप्त भए कल्पद्रुम धोर । जुगल धर्म तब लइ मरोर ॥

चौदह कुलकर

भया चतुर्दश मनु औतार । चंद्र सूर उने निरधार । २३॥
 पहनौ कुलकर प्रतिश्रुत जान । दूजो सनमति सुभग बपानि ॥
 क्षेमकर तीजे को नाम । क्षेमधर चौथो अभिराम ॥
 क्षीमकर पंचम मनुराय । क्षीमधर षष्ठम बरनाय ॥
 विमलवान सप्तम बर्नयो बक्षुष्मान तहा अष्टम भयी ॥२४॥
 प्रसेनजित नौमौ जानियै । अभिचन्द्र दशमौ मानिये ॥
 चन्द्रप्रभ ग्यारहौ बपान । हेमदेव द्वादशमो बान ॥२६॥
 प्रश्नजीत तेरमौ मनुचन्द । चौदहो कुलकर नाभिनद ॥
 परम विशुद्ध सकल गुणलीन । सब जीवन मे महाप्रबीन ॥२७॥
 सोप होइ कल्पद्रुप ज्यौ ज्यौ । कुलकर भावै भागै त्यों त्यों ॥
 भावी काल बखानै यथा । कहै सकल जीवन सौ कथा ॥२८॥

बोहा

इह विधि चौदह ए भए, कछु कछु अन्तरकाल ।
 तीन ज्ञान सजुगत सब, मति श्रुती अथवि बिसाल ॥२९॥
 अब सुनि चौथे काल की, महिमा अधिक अनूप ।
 प्रमटै बडबीसी जहूँ, नवहर भुक्ति स्वल्प ॥३०॥

चौपड़

तहाँ मुक्ति को मारग खुले । तजि मिथ्या सब उद्दिम रुल्ले ॥
 सागर कोराकोरी जानि । सहस बयालीस घटती मानि ॥३१॥
 इह मर्यादा चतुर्थम बाल । आयु कोडि पूरव विसाल ।
 धनुक पांचसै काय जु कही । अनुक्रम घटत जाइ जो सही ॥३२॥
 जुगल धर्म मिट्यो तिहिकाल । प्रकटे सकल जीव गुणमाल ।
 असि मसि कृषि वारिण्य उपजाइ । गये कल्पतरु यह अषिकाइ ॥३३॥
 मेघ पटल जुरि वर्षा करै । तिमकी वृष्टि कृषि बहु करै ।
 बाबल भुवि तै जोजन चारि । ऊँचे रहै श्रवै जलधारि ॥३४॥
 सबको बेल प्रमाण आहार । निति प्रति भुंक्त होइ करार ।
 हैं सुकाल सदा तिहि काल । परै न कबहूँ नदी अकाल ॥३५॥
 अरु सुनि पंचम दुष विचार । रहै वर्ष इकईस हजार ॥
 मुक्ति पय को भयो निरोध । रहै न तल्प पदारथ बोध ॥३६॥
 सो भौरु बीस वर्ष की आयु । भली त्रिमंगी होइ बषायु ॥
 अशुभ त्रिमंगी साधन हार । अल्प अरु धरि दुषी अपार ॥३७॥
 कहौ त्रिमंगी को सुनि भेद । औसौ जिनवर भाष्यो वेद ॥
 बाल तरुण बिरधा पे चार । त्रिमंगी प्रथम याहि विचार ॥३८॥
 तिनि के उदै मध्य अरु अस्तु । दुतीय त्रिमंगी भेद प्रशस्त ॥
 निर्धन धन बालरहि तसु जान । तृतीय त्रिमंगी ताहि बखान ॥३९॥
 बीज सबनि कीं मन बचकाय । इनि त्रिमंगिनी को परम सहाय ॥
 इनि समयनि मेभाव जु होइ । शुभ अरु अशुभ बंधता होइ ॥४०॥
 तासु प्रताप आवकौ बंध । पाप पुण्य ते बटि बधि बंध ॥
 जितक आयु घारी जाइ वरी । ताकौ लेहु भाग तीसरी ॥४१॥
 वामें बचे आगिली आयु । श्री जिनमार्ग यह ठहराय ॥
 तहां न होइ जो बंध विचार । साग करो यह बिधि नब वार ॥४२॥
 नबम भाग तीजो वर जानि । आयु समो अन्तमों सो जान ॥

होइ अब मबंध तथा जो सही । ऐसी जिनबानी तैं लही ॥
 एक समे गति बाधें जीव । चार्यौं गति मे फिरै सदीव ॥४३॥
 जीव देह को त्यागे जबै । ध्यानपूरवी भावै तबै ॥
 बंधी होइ जोग तिहकाल । ले पहुँचावै तहाँ सम्हालि ॥४४॥
 तासौं मूढ कहैं जमराज । जीव निकासै करि दुख काज ॥
 साठे तीन हाथ की काय । जीव अनेक कहैं मुनिराय ॥४५॥
 कृपि तैं पोषे जीव शरीर । अलप सुकाल काल बलबीर ॥
 सबकी भूष तनों सुनिमान । फल कुषमाड जानि परमान ॥४६॥
 तृप्ति नही भक्षे एक बेंर । जेबैं दुपहर साभ सवेर ॥
 मध्यम वृष्टि मेध सब करै । धर्म विलिपति तही पर वरै ॥४७॥
 ता पीछे होइ छठम काल । दुषमा दुषम महा विकराल ॥
 मिथ्यादृष्टि सब जीवनि तनी । धम्म वासना रंच न गनी ॥४८॥
 बेटी बहिन न मानें कोइ । सर्वे कुशील नारी नर जोइ ॥
 काल मर्यादा कही श्रुत ज्ञान । बरस हजार बीस एक जानि ॥४९॥
 हाथ जुगल देही उत्तग । बीस वरष लो भाव प्रसग ।
 जबकं सहस वर्ण गत होइ । षोडश वरष भाव अवलोइ ॥५०॥
 कृपि विनाष होइ सब ठोर । जीवै जीव आहार अवलोइ ॥
 जलचर नभचर जोवन षाड । तृप्ति बिना सब क्षुधित फिराइ ॥५१॥
 सजम तप नही दीसे रच । पाप अघम्म तनो तथा सच ॥
 अनुक्रम होइ काल को अन्त । रवि शशि निकट उदैत करत ॥५२॥
 तिहि के तेज सकल कौ नाम । वृष्यादिक जे सुष निवास ।
 प्रलय समीर बहै परचड । बिनासीक सब कहै विहड ॥५३॥
 जीव सकल तिथि ऐसी करै । जाइ चतुर्गति मे अवतरै ॥
 अवसर्पिणि यह काल कहावे । फिरि उत्सर्पिणी काल प्रभावे ॥५४॥
 ज्यो ज्यो अनुक्रम ओरें गिलें । त्यो त्यो उतसर्पिणी उगिलें ॥
 छठो पाचमो पहिलो जोइ चौथो तीजे कै सम होइ ॥५५॥
 तीजे मे अउबीसी कही । पाप निवार जग निवारण सही ॥
 ऐसे फिरित रहै छहकाल । है अनादि कौ भसी ब्यास ॥५६॥

धनन्तानन्त चौबीसी जानि । या लेषें परतल प्रमाण ॥
केवल बिना न जानी जाइ । यातें धनंतानंत कहाइ ॥५०॥

बोहा

जब जब होइ चतुर्थमे, सतजुग भठतालीस ।
गए चौबीसी सु होइ, तहां हुडासपिनि इस ॥५८॥
ऊण मालाका पुरुष, जहां दर्प रूप पांखड ।
होई उपसर्ग जिनद कौ, चक्की मान बिहंड ॥५९॥
छहौं काल फिरिते रहें, ज्यौं भरहठ कौ हार ।
भरष ऐरावत क्षेत्र मे, जे बरनै दश सार ॥६०॥

इति षट्काल बर्णनं

शुषभदेव गर्भ कल्याणक बर्णन

चौपई

शुभ सुनि तू फिरि उतपत्ति सिष्ट । जथा जुक्ति जो कही बरिष्ट ॥
तीजें काल अन्त मनु वृन्द । चौदहीं कुलकर नाभि नरिद ॥१॥
मरुदेव्या राणी कौ नाम । शीलवत सब गुण अभिराम ॥
आयु कोडी पूरव की दीस । काय धनक शत पष पचीस ॥२॥
आयुभूमि कौ सार्वें राज । सुख साता के सर्वें समाज ।
तीन ग्यान सयुक्त नरिद । सब जीव कौ भेटें दद ॥३॥
निसि दिन धर्म नीति सों काम । दुखी न दीसैं काउ तिहि ठाम ॥
ऐसी भाति काल बहु गयो । श्रवधि सुरपात चितितु भयो ॥४॥
धनपति कौ लियो तब बुलाइ । जिन आगमन कह्यौ समभाइ ॥
सो आयी चल आर्य मभार । नगरी रचना रची सवार ॥५॥
नव जोजन चतुरी निरमई । बारह जोजन लांबी ठई ॥
सब कें कनक मई आवास । रत्नजड़ित बहु विधि परकाश ॥६॥
बन उपवन तहाँ रचे अनूप । घर घर कामिनि परम स्वरूप ॥
बापी रूप तड़ाग अनत । निर्मल अंब कमल विकसंत ॥७॥

तब धन पनि भागै नवमास । घर घर बरघाई नग रासि ॥
 भाई भाठ जु देवी तबै । प्रायुक उसघ लाई सबै ॥१॥
 जननी की सेवा प्राचरै । वैऊपष गर्म घोषना करै ॥
 वैह जनित के जिते विकार । दूरी किय नही रहे अहार ॥१॥
 जिन माता सोवत सुख चैन । सुपने देखै पश्चिम रैन ॥
 गज देख्यो सुर गज सम तोसि । बबल घुरघंर रूप अमोल ॥१०॥
 केशरी सिध महा बलवान । कमला रूप मनोहर जान ॥
 सुन्दर रवि शशि महल चंग । मीन सुभग अंचल अति रग ॥११॥
 पूरण सजल द्वै हाटक रूप । कमल कुलित सर सुभग अनूप ॥
 सिंहासन अमुपम अविकार । देखै जगनी स्वपन विचार ॥
 अमर विमान महा रमनीक । फणपति सुभग क सुन्दर नीक ॥
 विमल प्रचुर रत्न की रासि । जरन अग्नि उत्तम परगास ॥
 ए घोडस सुपने अदलोइ । दर वेदन भव जाग्रत दोइ ॥१४॥
 जिनमाता घोडप देषई । चक्री की द्वादश पेघई ॥
 नारायण की देखै आठ । वेदराम की इह श्रुत पाठ ॥१५॥
 उत्तम जलसै मुख प्रछाल । पहिरे नौतन वसन रसाल ॥
 नव सत साज सिंगार अनूप । जलि घाई जहाँ बैठे भूप ॥१६॥
 भक्ति जुक्ति सौ सीसु नवाई । राजा की दिग नैठी जाइ ॥
 स्वपन वृत्तात सकल उन्धर्यो । फल सुनवे को चित्त अनुसर्यो ॥१७॥
 सुनत नूप हिय अधिक हुलास । अवधि म्यान बल फल परगास ॥
 नाभिराय फल कही विचार । तुम सुत ह्वै हो त्रिभुवन तार ॥१८॥
 प्रथम तीर्थकर जनम मही । तुम्हरी कूष जानियो सही ॥
 प्रथक प्रथक स्वपने गुणमाल । वरान सुनाऊ सुनी उहो नारि ॥१९॥
 पहली देख्यो गज मय मंत । तुम सुत ह्वै हैं श्री अरहत ॥
 वीर्य बलादिक म्यान अनंत । बडे देवी देव अन्नत ॥२०॥
 बबल रूप को सुनि फल साद । जग जेष्टी जग गुरु सिरदार ॥
 इन्द्र नरेन्द्र लगेसर देव । ज्योतिक ब्यतर करै पद सेव ॥२१॥
 सिंह प्रताप महा बलवीर । भयो न ह्वै हैं कोऊ न धीर ॥
 अनन्त मर्यादा कही बल तास । अनन्त ज्ञान में करै बिलास ॥२२॥

सुनि लक्ष्मी दरशन को भाव । बहुतें लक्ष्मी करे सहाव ॥
 जनममें इन्द्र मेरु ले जात । करै कल्याणक धन विपराव ॥२३॥
 पुहप दाम की फल जु धनूप । कीरति उखल काम सरूप ॥
 जस बस्ती पसरी त्रियलोक । हरै सकल प्राणी का शोक ॥२४॥
 हिमकर देषण की परताप । तू सब भेटें जग आताप ॥
 सूरज फल प्रतापी जोर । भेटें पाप तिमिर की सोर ॥२५॥
 श्रीडा करत जु देखें मीन । तू बसतु सुवगर परबीन ॥
 पूरण घट को यहै विचार । बिना पढ़ै विद्या सु भण्डार ॥२६॥
 सरवर कुलित तनो फल एह । शुभ लक्षण सब सुत की देह ॥
 सख्या सहस्र आठ की सुनों । तिनें सुभिरें सब वापनि हनों ॥२७॥
 देष्यी सागर उठत तरंग । केवलजानी पुत्र धर्मंग ॥
 लोकालोक तनो विस्तार । यथा जुगति प्रकटे संसार ॥२८॥
 सिंघासन फल एसो जानि । लखिन अनेक मुक्तो निर्वाणि ॥
 सुर विमान तें राज समाज । रूप सोभाग बहुत गजराज ॥२९॥
 नागरूप जनमत त्रिय ज्ञान । तीन लोक के नाथ बखान ॥
 रत्नगसि फल उत्तम जोइ । सुत श्रुत गुण के सागर होइ ॥३०॥
 प्रभु जित अग्नितने परभाव । ध्यान अगनि बसु कर्म अभाव ।
 कलुष दुष्ट संपूरण जारि । तू वसै मुक्ति रमणी भरतार ॥३१॥
 फल सुनि परम अनंदित भई । धर्म बुद्धि अधिक ईसई ॥
 सर्वाभिसिद्धि तें चले जगदीस । मुक्ति भाव सागर तेतीस ॥३२॥
 कारी द्वंज आषाढ को पास । मरुदे गर्भ कियी जु निवास ॥
 गर्भ कल्याण पूजो देव । इन्द्रादिक सब करइ सेव ॥३३॥
 करै कुमारी छप्पण सेव । सकल दुहिले पूरहैं हेव ॥
 है अनादि की ऐसी रीति । सेवा करे सबें घर प्रीति ॥३४॥
 निसवासर सब सुख सों जाइ । नव महीमें जव पूरे थाय ॥
 जननी हृदय परम आनन्द । कब ह्वै हैं सुत त्रिभुवन चन्द ॥३५॥

बोहरा

महिमा गर्भ कल्याणक की, सुनो मध्य धरि हेत ।
 भ्रमहारी मुख करणहैं, पटुं चावें शिवखेत ॥३६॥

इति श्री गर्भकल्याणक वर्णन

जनम कल्याणक वर्णन

षोपई

भ्रम सुनि जनम कल्याणक रीति । करे इन्द्र सब मन धरि प्रीति ॥
 चैत्र सुदी नौमी के दिना । उत्तराषाढ जनम भागिना ॥१॥
 मुनि भ्रवतरे जगत के नाथ । मति श्रुति भ्रवधि विराजै साथ ॥
 कछु कष्ट नहि मातें होइ । सुख साता सौ प्रसवें सोइ ॥२॥
 तब इन्द्रनि जान्यो बल ज्ञान । पुहुमि धौतरे श्री भगवान ॥
 हृषित लोक तिनिए लोक । दूरि बहाये ससय सोक ॥३॥
 कल्पवासी घटा ध्वनि करै । और अनाहुद रव ऊचरै ॥
 ज्योतिकी सषनाद पूरियौ । करि उछाह अशुभ चूरियौ ॥४॥
 भवनवासि गृह भयो भ्रानद । सिष रूप गर्जे सुर वृन्द ॥
 पटहू बजायी व्यतर देव । पटुलास करि है प्रभु सेव ॥५॥
 भवनवासि चालीस अनूप । व्यतर दोइतीस णुचि रूप ॥
 कल्पवासी चौबीस महत । भावें पूजन श्री भगवत ॥६॥
 रवि शशि नर तिरयच जु चारि । ए सब मिलें शत इन्द्र विचारि ॥
 जान्यो जनम लीगो जिनराज । गज ऐरावत लाए साज ॥७॥
 भ्रम वरणी वा गज श्रु गार । जो गुरु कही जिनागम सार ॥
 एक लाख जोजन गज सोइ । ताके मुख इकशत भवलोय ॥८॥
 बदन बदन पर भ्राठ जु दत्त । रदन रदन इकसर ठाठ ॥
 सर प्रति कमलनि सो पञ्चीस । एक लाख कमलनि सब दीस ॥९॥

राजहि कमलनि प्रति पनवीस । कमल भए सब साख पचीस ॥
 कमल कमल प्रति दल सो छाठ । दल दल एक भपछरा ठाठ ॥१०॥
 नर्त करे बहु आनंद भरी । हाथ भाव नैनवि भाषरी ॥
 सब मिलि कोटि सताईस नारि । करै नर्त गज मुख पर सार ॥११॥
 कनककिफिणी श्री घनघंट । ऐसे ऐरापति के कठ ॥
 चमर पताका धुजा विशाल । त्रिभुवन को मनमोहन बाल ॥१२॥
 ता हाथी पर हूँ असवार । आयी इन्द्र सहित परिवार ॥
 सब मिलि पुर प्रदक्षारु करे । मुख तें जय जय रब उच्चरे ॥१३॥
 गई गुप्त इन्द्र की सची । जिन जननी को निद्रा रची ॥
 माया मई राधवी त्रिशु भंग । श्री जिनबिब लयी उखंग ॥१४॥
 निरषत रूप त्रिपत नहि होइ । परम हुलास हृदय नहि सोइ ॥
 धौं सो जपे बारबार । मेरें लोचन होहु हजार ॥१५॥
 निरयो नयननि रूप अथाह । होहु पुनीत परम पद पाइ ॥
 धानद भरि ले धाइ तहा । हरषत बदन इंद्र सब जहाँ ॥१६॥
 प्रथम इंद्र करि लेइ उठाइ । प्रभु चरननि को श्रीसु नवाइ ॥
 गज आरूढ भए भगवान । छत्र लिये सौधम ईमान ॥१७॥
 सनतकुमार देख जो दोइ । डारें चमर अनुपम सोई ॥
 शेष शक जय जय उच्चरे । देव चतुविध हर्षित फिरै ॥१८॥
 ले गए गगन उलघ्य अपार जोवन नन्यानवें हजार ॥
 मेरु खिखर राजै वन चारि । सघन सजल कबहू न पतभार ॥१९॥
 सुमन पांडुक नदन बन्न । भद्रशालि लषि चित प्रसन्न ॥
 कल्पान्त बात नही परसें कदा । फूलें फलें छहो ऋतु सदा ॥२०॥
 चारघो दिसा मेरु की लसें । पहिलें भद्रशाल बन बसें ॥
 ता ऊपर नदन बन संच । उँचो है जोवन सत पंच ॥२१॥
 तितनी ही जानी विस्तार । नदनवन की गिरदाकार ॥
 ता ऊँच सुमनस बन होइ । मेरु पाषली सोमें सोइ ॥२२॥
 तासु फेर की गगती कहों । सहस्र साठि ई लपौ सहो ॥
 अक्षिक पांचसें जोवन जानि । तापर पांडुक बन शुभधान ॥२३॥

जोवन सहस्र छत्तीस उत्तंग । सुमनस बन तें दीसैं चंग ॥
 चौराणवैं अघिक सो चारि । बन बिराजत बलयकार ॥२४॥
 चारि सिला पांडुक हैं जहां । जनम कल्याणक महोद्यन तहां ॥
 बन बन प्रति चैत्यालय देव । पूरब दिसा घादि दे भेव ॥२५॥
 ऊंचे चोरे को परवान । श्रीर ग्रन्थ तें सुनियौ जान ॥
 मंदिर प्रति प्रतिमा जिन तनी । भद्रोत्तर सो संख्या गनी ॥२६॥
 सत्रहसैं भठविशति सदा । बनें अक्रुत्रिम नास न कदा ।
 धनक पांच सैं बिब उत्तंग । तीन काल बढौ मनरंग ॥२७॥
 सकल पुरदर हरषित भए । पाहुक बन विशिन्न ले गये ॥
 तहां बिराजै पाहुक शिला । जानौं अद्भुतचन्द्र की कला ॥२८॥
 चौरी हैं जोजन पचास । सो जोजन लाबी परगास ॥
 बसु जोजन की ऊंची गनी । ललित मनोहर सोभा सनी ॥२९॥
 तहाँ रच्यौ मठप मणि मई । ता मध्य सिंघासन छवि दई ॥
 भरी ताल कसाल जु छत्र । दप्परां अमर कलस ध्वज पत्र ॥३०॥
 प्रथम घरै हैं मंगल अष्ट । रचे कलस तहां महा बरिष्ट ॥
 बदन उदर ओ गहि परिणाम । एक च्यारि बसु जोजन जान ॥३१॥
 तापर पघराए जिनईस । पूरबमुख कमलासन ईस ॥
 पूजा पाठ पढै सब इन्द्र । द्रव्य अाठ साजै प्रति इन्द्र ॥३२॥
 जलगंधाक्षत पुष्प अनूप । नेवज प्रचुर दीप अरु धूप ॥
 फल जुन अाठ द्रव्य परकार । पूजा करै भक्ति उरधार ॥३३॥
 करै अारती पढइ जयमाल । गावे मंगल विविध रसाल ॥
 बाजै ताल मृदंग जु बीन । दुंधुभि प्रमुख घुरि ध्वति छीन ॥३४॥
 नत्तित सुर गधर्व की नारि । हावभाव विभ्रम रस चारि ॥
 सची सकल मनोहर नैन । अन्द्रवदन विहसत सुख दैन ॥३५॥
 अग मोरि भवैरी अब लेहि । देसी विषै परम सुष देहि ॥
 धिगदि धिगदि तत बेई ताल । भिमक भिमक अालरी कमाल ॥३६॥
 धिगदि धिगदि मुख की बधकार । दिगदि दिगदि सगीत सुतार ॥
 द्रुमकि द्रुमकि बाजै दुरगुरी । धुमिकि धुमिकि करि किकन करी ॥३७॥

इनन इनन घटा इननन । मनन मनन जेर मन नाह ॥
 ताताथै ताताथै ताताथै ताता । तल यमु सब बाबे सुर तात ॥३८॥
 बीना बंस मुरज भजनकार । संत वितत बने सुवकार ॥
 मूपुर ध्वनि बकित सुबंश । जिन सुरा कडत मनो कलहंस ॥३९॥
 मयल नाद करें सब कोइ । सुर नर सब यह कौतिक जोइ ॥
 सुरनरि कलस लेहि एक साथि । श्रीर समुद्र तें हाथि हि हाथि ॥४०॥
 नब सुरेस सौवर्ष ईसान । प्रभु कीं करै अभिलोक विधान ॥
 बही थीव भिष्टादिक जानि । अघटोरत रस सकल्पित मान ॥४१॥
 ध्यौ पचापृत परमत कहूँ । ताही समेलो बनिए बहूँ ॥
 इन्द्रनि कीनी इनकी धार । जिना धीर प्रभु कें सिरमाज ॥४२॥
 जो मम बचन न मानें कोइ । देवो धादि पुराण मे जोइ ॥
 सहस्र अष्टोत्तर कलस विधि । काले जिनवर सीस पवित्र ॥४३॥
 श्रीर प्रभुल श्रु मार धाधार । इन्द्रनि कियो सकल निर्धार ॥
 भए जग ज्येठ बरिष्ठ अभिराम । ऋषदेव राध्या प्रभुनाम ॥४४॥
 फिरि उलाह सहित बें फिरे । धाय अजोष्या मे अनुसरे ॥
 तथा कियो बहु विधि ध्यान । माता की सौंपी जिनचन्द ॥४५॥
 धनपति कीं प्रभु सेवा राधि । इन्द्र सकल निज गृह धाए भाधि ॥
 याही तें धनपति धनराय । प्रभु की सेवा करै चितु लाइ ॥४६॥

बोहरा

इह महिषा जिन जनम की, पडत सुगत अघ नास ।
 निज स्वरूप अनुभव करै, बहु बिन धर्म निवास ॥४७॥

इति श्री ब्रह्मवैवर्तक ब्रह्मवैवर्त

ऋषभदेव जीवन

बौवई

तामिराय अरुवेष्ठा नाह । जालय बहुयी न अर्थ समाइ ॥
 मुकजय पुत्रजन सब गृह धाम । भंगल करै सकल नर धाम ॥१॥

पञ्च शब्द वाजे धनवार । मोतिन भूलै बदनवार ॥
 रत्नचूरि सो चोक पुराइ । फिरि जिनको अभिषेक कराइ ॥२॥
 जग व्योहार करण विस्तार । फेरि किए सब प्रमुखाचार ॥
 बदी जन बहु दीनै दान । तिनही कौ नही सकौ बखान ॥३॥
 जुग की भादि भयी भ्रवतार । भादिनाथ धर्यो नाम विचार ॥
 भ्रमजल सब मल रहित सदीव । रुधिर वरण जैसी गोकौर ॥४॥
 प्रथमसार सघनन स्वरूप । सहज सुगण सुलक्ष अनूप ॥
 मधुर वचन बल अतुल न मान । भाव विचित्री सब सो जानि ॥५॥
 ए दश प्रतिशय सहजोत्पन्न । तीर्थकर बिन होइ न भन्न ॥
 भ्रमर भाइ वैक्रिय बल फोर । कोऊ मराल ह्वै कोकिल मोर ॥६॥
 विविध रूप ह्वै प्रभु सो रमै । बाल विनोद करत दिन गरमै ॥
 देव पुनीत सकल सिंगार । सुर दिनें मल्यावै त्रिय बार ॥७॥
 पहिरावै प्रभु को धरि हेत । निरषत तात मात सुप लेत ॥
 झोर अनूपम भोग विनास । भोगै प्रभु जूनें सुखरासि ॥८॥
 बीस लाख पूरब लौ जानि । कुमार काल भुक्त्यो भगवानि ॥
 पाछे दीयो नृप पद भार । नाभि नरेन्द्र परम उदार ॥९॥
 बैठे सिंघासन श्रीजगदीस । युगल धर्म निवारघो ईस ॥
 खेती बिनज निखन चाकरी । परजा पालन कौ बिस्तरी ॥१०॥
 पुत्री काहू की भानियै । सुत काहू कौ तहा जानियै ॥
 करे विवाह लगन शुभ वार । इहि विधि बढत चल्थो सवार ॥११॥
 सो मोपे वरथ्यो क्यो जाइ । हौं मतिहीन बियनके माइ ॥
 भए प्रच्छन्न कल्पतरु भूमि । क्षुधा तृषा की बाढ़ी भूम ॥१२॥
 परजा सब दुख पीडित भई । नाभिराय के भ्रामे गई ॥
 जो कुछ कहो सु कीजे नाथ । क्षुधा तृषा करि भए अनाथ ॥१३॥
 पुद्गल जंजरी मूत प्रतक्ष । बिनु आहार न कोइ रक्ष ॥
 नाभि नरेश सुनि यह बात । चिंता उपजी उर न समात ॥१४॥
 चलि आए जहा त्रिभुवन राय । कुल परजा को कह्यो सुनाय ॥
 श्री भगवत विचारघो म्यान । भूत भविष्यति श्री व्रितभान ॥१५॥

भैसी ही भनादि की रीति । सबको समझाई धरि प्रीति ॥
 पुहुमि करष उपजाउ जाइ । ता फल भधि पोषो निज काम ॥१६॥
 जो लो कृषि फल उपजै मही । लौलों एक करो तुम सही ॥
 ए भनादि के इक्षुपु दड । ले भावो इनि करो जु णड ॥१७॥
 पेलि पेलि रस काढतु जाव । काया पोषोया कर भाव ॥
 सब परषा भानदित भई । क्षुषा पीर ते बन महि गई ॥१८॥
 लीये इक्ष दड सब तोरि । रस काढयो तिनकी करि मोरि ॥
 भक्षित भागी भूख पियास । घर घर भानद परम ह्लास ॥१९॥
 सब जुरि आए देन भसीस । तुम इक्ष्वाकु वंश जगदीश ॥
 तब तै प्रमु को वश इक्ष्वाकु । बरणे सुर नर किकर नाक ॥२०॥
 तब जान्यो प्रमु यह निज बश । थाप्यो और तीन भवतस ॥
 कुरु भरुउग्र नाथ ए तीनि । प्रमु ने नाम प्रतिष्ठा दीन ॥२१॥
 करे परसपर व्याह विधान । तजि निजवश समारथ जान ॥
 प्रमु के राज दुषी नहि कोइ । धरि धरि जैन धर्म भवलोइ ॥२२॥
 तिहि पुर मढ गयंद सौं रहैं । मदिरा नाम और नहि कहैं ॥
 मारु सोइ जो बल बुधि होइ । पुष्प पत्र लें बाधें सोइ ॥२३॥
 दड सोइ जो जोगी लेइ । औरण दड न कोऊ देइ ॥
 चल चोर कटाक्ष तिया के । जो नित चोरें चित्त पिया के ॥२४॥
 चक्रवाक बिनु कोइ न भान । निशि के समे बिरह दुख खानि ॥
 बिरहाकुल पिक बिना न कोइ । बिरहाकुल पिय पिब रट सोइ ॥२५॥

बोहा

दीपदु बधिक बसे तहां, ज्यों निस बधे पतंग ।
 भवधपुरी ऐसो चलन, रक्ष्यो ईस मन रग ॥२६॥

चौपई

सबकें ह्योइ अतुबिध दान । जिनपूज और गुण सनमान ॥
 धर्म राज बरतें संसार । पाप न दीसे कहूं लगा ॥२७॥

नाभिराय तब हूलस्यो चित्त । तरुण भए प्रभु परम पवित्र ॥
 काँजे ब्याह सकल सुखरासि । बंदी जन की पूर्वे भ्रास ॥२८॥
 भ्रँसे जगत जीव यह रीत । करें सकल हिरवे धरि प्रीत ॥
 इह प्रकार विरधे संसार । होइ प्रवर्त्ते लोकाचार ॥२९॥
 तब प्रभुस्यो विनवै मनुराय । तुमतो जगत पिता जिनराय ॥
 धादि धन्त विनु वरतो सदा । जनम मरण की बुख न कदा ॥३०॥
 जो मोहि दियो पिता पद ईस । तो मम वचन सुनो जगदीस ॥
 पाणिग्रहन करी धरि प्रीति । जगमें जोइ यह बाहे रीति ॥३१॥
 लोक बढत नै धर्म अधिकार । यह प्रभु जू कौ है उपगार ॥
 जो मम वचन न करि हों कान । पिता वचन की निश्चय हानि ॥३२॥
 पुत्र सपूत कहावें तबै । पिता वचन प्रतिपालै जबै ॥
 तब प्रभु होनहार सब जान । बै कियो फिर बहु सनमान ॥३३॥
 नामि नरेन्द्र फूल बहु भई । सकल नृपति के घर सुधि लई ॥
 कच्छ महाकच्छ ए द्वै भूप । तिनिके द्वै दुहिता जु भनूप ॥३४॥
 कच्छ तनी नंदा गनि बाल । नमि कुमार बेदो गूणमाल ॥
 जस्ववती महाकच्छ की सुता । विनमि पुत्र सब गुण संजुता ॥३५॥
 वै है प्रभु कौ ब्याही राय । भानंद मगसाधार कराय ॥
 भोग विलास करत सतोष । तब सब भिराखी को कोष ॥३६॥
 भरखराय धादि सो पूत । उपजे सुन्दर सुभग सपूत ॥
 शाह्यो सुता पवित्र भवतार । पूर्वे पुन्य लीयो जु विचार ॥३७॥
 भव सुनि दुतिय रागनी बात । नदाराणी परम विख्यात ॥
 पुत्र अन्यो बाहूबलि नाम । सुता सुन्दरी गुण अभिराम ॥३८॥
 यह विधि बढघो परिग्रह धोर । एक तें एक प्रतापी जोर ॥
 वानारसि नगरी कौ भूप । नाम भ्रकपन काम स्वरूप ॥३९॥
 सेनापति बडो सब कहैं । लाम नाथ वश बेदता बहैं ॥
 प्रभु के भाइ चरण सिर नई । दर्श लहें भानंद अधिकाई ॥४०॥
 विनती करी जुगल करि जोरि । असरठा सरण नाथ हों मोरि ॥

तनुजा भ्रम ग्रह भई अन्निराम । सुखीबना ताकी है नाम ॥४१॥
 भई बर जोग सुता बह ईस । देख काहि भाषी जनबीस ॥
 तब प्रभु भाषी काल विचार । भाष्यी चलें जयत ध्यैहार ॥४२॥
 निजु ईश्वर काहुं को वैइ । चक्रीमान भंग रस लेइ ॥
 जो चक्री सब परततु जाइ । ठी कंठे संसार षटाइ ॥४३॥

स्वयम्बर बरण—

मात पिता इच्छा गुण धीर । सबल निबल परिकरि हूँ दीर ॥
 तातें रच्यो स्वयम्बर जाइ । तहां सकल नृप लेहु बुलाय ॥४४॥
 वरमाला कन्या को देख । पुत्री निज इच्छा बस लेहु ॥
 ताहि बरन कोऊ नानै बुरो । ताको मान भंग सब करो ॥४५॥
 इहु सुनि भरथ परम भ्रानंद । राजनीति भाषी जिनचन्द ॥
 सुनि राजा भ्रपनें भर गयो । प्रभु भाषी सो करती लयो ॥४६॥
 देश देश के चाले राय । सुता स्वयम्बर को ठहराय ॥
 भ्रकर्क भादि भरथ सुत चले । कवर्ण रूप विराजै भले ॥४७॥
 धीर सकल भाये महिपाल । जिनदेखत नाचें उरसाल ॥
 रचि विभूति भ्रपनी सब तहां । भाए सकल स्वयम्बर जहां ॥४८॥
 कन्या के कर माला बई । भाइ स्वयम्बर ठाड़ी भई ॥
 कन्या के संभ दासी दीन । सबके युगु जानत परवीन ॥४९॥
 एक धीर तैं बरनती बली । नाम राजजु स्तुत करि बली ॥
 भावी के बस पहुँची तहां । गजपुर धनी विराजै जहां ॥५०॥
 भरथ तनी सेनापति सार । नाम तास है अयकुमार ॥
 रतिपति देषत रूप लजाइ । बल उनमान कही नहि जाइ ॥५१॥
 कुचवंहनि को नाथ प्रवीन । जाके राज न कोऊ दीन ॥
 सुखीबना देख्यो बह रूप । कंठ करि वरमाल भ्रनृप ॥५२॥

जय जयकार शब्द तब भयो । जयकुमार उत्तम वर लयो ॥
 सकल नरेश चले निज गेह । उपज्यो कोह भवर्क के देह ॥५३॥
 प्रभु देषित क्यो सेवा करै । दीठ पनीं क्यो देषी परै ॥
 दयो निसान जुद्ध के काज । लेउ छुडाइ भगे तर आज ॥५४॥
 तब मत्रिनि मिलि यह बुधि दीन । पहले पठऊ दूत प्रवीन ॥
 मागे देइ जुद्ध मति करौ । नहि तो मनवाञ्छित आदरौ ॥५५॥
 पठयो दूत ततक्षिण तहाँ । जयकुमार बँठो जहाँ ॥
 दूत बचन सुनि वह परजरघौ । मानो अगनि मे पुलो परघौ ॥५६॥
 सुन रे दूत मूढ मति मद । अविबेकी भयो प्रभु को न-द ।
 यह मरजाद पितामह तनी । तोरघौ चाहत धरि सिरमनी ॥५७॥
 भरथ सुनै दुज पाबे धनों । क्यो निज प्रभुता चाहै हन्यो ।
 हम सेवा तोहि लो करै । जो लो नीति पथ पग धरै ॥५८॥
 लोप्यो चाहै जो इह रीति । तो मौसो नहि सकि है जीति ॥
 वह नहि जानत हे बलवत । जानै भरथ राथ गुणवत ॥५९॥
 पर्वत गुफा फोरि मै बइ । भव छह सड तनी जय भई ॥
 काहे हो राणो अग्यान । क्यो मिलि हूँ जु बरी बलवान ॥६०॥
 दूत गयो फिर जहा कुमार । सुनि ता बचन भयो असवार ॥
 आनि जुद्ध कीनो परचड । जयकुमार तब दीनो दड ॥६१॥
 अर्ककुमार बाधि ले गयो । करि विवाह निजु घर ले गयो ॥
 ह्ला ते कुँवर दयो तब छोडि । आदर सो दयो लच्छ करौडि ॥६२॥
 भरथ निरधि सुत कीयो धिकार । करै सु पावै यह निद्धरि ॥
 जयकुमार को कियो पसाव । हय गय देस बहुत सिर पाव ॥६३॥
 राजनोति तुम कीन्ही सही । नतर कुधात बिचरती सही ॥
 सेवक सुत सम तजो जानि । जो प्रभु की भेटे नहि आनि ॥६४॥
 तब तै यह जग भरती रीति । करै स्यम्बर नृप धरि प्रीति ॥
 आहि वरै सोही ले जाइ । फिर न ताहि कोउ सफँ सताइ ॥६५॥

इति स्यम्बर नीति अर्णव

पूर्वं लाख श्लेसिठि लौ जानि । करघी राज श्री कृपानिधान ॥
 या अतर हक दिन जिन राज । बैठे हुते सभा सुख साख ॥१॥
 नीलजना नटी कौ नाम । नृत्ति करख आई बहु ठाम ॥
 चीन उपय वासुरी बाजै । डाढी यंत्र भ्रमृती राजै ॥२॥
 सुर मंडल बाजै घन तनी । सारंगी पिनाक बहु भनी ॥
 जलतरंग भ्रमृत कुंडली । कु भर वाव मिलै भ्वनि मली ॥३॥
 ए बाजे सब बाजन लाग । तब मिलि जु भलापहिराव ॥
 प्रथम सप्त स्वर साधि जु लीन । पुनि मिलि सकल सुर एक कीन ॥४॥
 रगभूमि पातुरि पग भरघी । रब संबति बदन उचरघी ॥
 सुर सुर कुम कुम धमपि बोलैं । तार धार संग लागैं ठोलैं ॥५॥
 तत थेई तत थेई तत करै । ततकि ततकि मुषतैं उचरै ॥
 अग मोरि भवरी जब लई । परि धरिबि मृतक ह्वै यई ॥६॥
 परमहंस दूजी बति ययो । देखत सबनि अचंभो भयो ॥
 प्रभु वा मरण विचारघी चित्त । उर उपजयी बैराग्य पवित्त ॥७॥ ।

बारह भावना वर्णन

बोहरा

अघ्रुव असरण जग भ्रमण, एक अनंत प्रबुद्ध ।
 आश्रव सवर निर्जरा, लोक धर्म दुर्लभ ॥८॥
 अघ्रुव वस्तु निश्चल सदा, अघ्रु भाव पञ्जाव ।
 स्वरूप जो देखिये, पुद्गल तनीं विभाव ॥९॥

चौपई

जिते पदारथ वल्लभ जानि । यगन नमर सम बखी समान ॥
 धन जोबन जल पटल जु होत । सञ्जन नारि सुत तडित उद्योत ॥१०॥
 जल बुद बुद जो बरतैं सदा । बिनासीक धिर नाही कदा । ।
 इनसौं जहौं न उपज्यो मोह । कहै भावना अघिरण सोह ॥११॥

बोहरा

असरण वस्तु जु परिणामन, सरण सहार्ई न कोइ ।
अपनी अपनी सक्ति कै, सबै बिलासी जोइ ॥१२॥

चौपई

अरखु सभे कायरता त्यागी । रत्नत्रय के मारग लागी ॥
बुध्यनास कुम्हलाई देव । करितु फिरै सबही के सेव ॥१३॥
राखि सकै नहीं कोऊ ताहि । सरखक जोहे वषु भाहि ॥
ताके सरणत कै मुनिराव । इह असरण भावना कहान ॥१४॥
अरहंतो असलीमत्वो तारण लोया । इदीह ससारे मग्गइ ॥
देसाइ कुमुलाइ, जे सरति तेम मालमाई ॥१५॥

बोहा

ससार रूप कोऊ नही, भेद भाव अग्यान ॥
ग्यान दृष्टि करि देखिये, सब जिय सिद्ध समान ॥१६॥

चौपई

परग्रहण जहां प्रीति बहु होइ । भांति भांति कै दुख सुख जोइ ॥
चारधौ गति में हिंडतु फिरें । स्वाग लाल बौरासी घर ॥१७॥
जो स्वछन्द बरतें त्रय काल । ता स्वभाव दीजें दृग चाल ॥
डरि दर्ई सब पुदमस रीति । तब संसार भावना प्रीति ॥१८॥

बोहा

एक दिसा मानिजु देखि कै, भापा लेहु पिछान ॥
नाना रूप विकलपना, सोतो परकी जानि ॥१९॥
बोलत बोलत सोवता, बिर मानें जग भाति ॥
भाप स्वभाव भाप मुनि, जित तित अनु अनभांति ॥२०॥

चौपई

करि जन्म घरधौ मरहै कौन । क्षिन में बिनसि जाइ ज्यौ लौन ॥
स्वर्ग नरक दुख सुख कौ सही । मुक्ति सिला पर जाइ जु रहै ॥२१॥

ए सब जीव द्रव्य के खेल । पुदगल सौं नहीं बीसै खेल ॥
 बल बीरजु सुख ज्ञान महत । सहजानव स्वभाव अनत ॥२२॥
 धरघो ध्यान जोऊ ता रूप । सदा अकेलो विमल स्वरूप ॥
 जहाँ बू जाकी होइ अभाव । एकतानू भावना कहाव ॥२३॥

बोहा

अन्न अन्न सत्ता धरें, अन्न अन्न पर देश ॥
 अन्न अन्न तिथि माइला, अन्न अन्न पर बेज ॥२४॥

बौपई

तू नित अन्य जीव सब काल । पुदगल अन्य परिग्रह बाल ॥
 सपे पुत्र कलित्र शरीर । कोइ न तेरो सुनि बल बीर ॥२५॥
 या दिन हस पयानी करै । सगी हूँ कोऊ न सग धरै ॥
 जहि सेवग साहिब नहीं मान । अनतानू भावना कहान ॥२६॥

बोहा

निर्मल गति जो जीव की, विमल रूप त्रियकाल ।
 अशुचि अग जो देखिये, पुज वरगना जाल ॥२७॥

बौपई

अशुचि खानि कहियै यह देह । तासो जीव कहा तोहि नेह ॥
 रक्त पीबुरु मूत पुरीख । इनि सौं भरी सदाई दीख ॥२८॥
 हाड चाम केशनि के झुड । यातें नेह नकं कौ कुड ॥
 या सो जीव रचे नहीं जहा । अशुचि अग बखानै तहा ॥२९॥

बोहा

ज्यों सवस्त्रिद्र नोका विधै, भावै चउदिशि नीर ॥
 त्यौ सत्तावन द्वार हूँ, होइ जु आश्रव भीर ॥३०॥

बौपई

जो परद्रव्य तनी है पार । राग द्वैधर करण स्वभाव ॥
 बसु मद धौ संकल्प विकल्प । सकल कषाय ग्यान गुण अल्प ॥३१॥

उपजै इनके कर्म अनेक । सो सब पुदगल तनो विवेक ॥
इहाँ छाडि जिन प्रापा गनें । प्राभव भाव सकल तब वमै ॥३२॥

बोहा

छिद्र मूडिए नाव के, बहुरि न जल परवेश ।
सचो सूचो काल बल, सवर को यह भेष ॥३३॥
इह जिय संवर प्रापनी, प्रापा प्राप मुनेय ।
सो सवर पुदगल तनो, करम निरोध हि हेय ॥ ३४॥

चौपई

प्रावत देखे जल ही अपार । तब जिय ऐसी बुद्धि विचार ॥
मू दे सकल नाव के छिद्र । राग दोष जल करे न षद्र ॥३५॥
करण विषै मद प्राठ प्रकार । इनि तजि अपनी करे सम्हारि ॥
द्वै किरिया तब घेचै नाव । सवर तनो कहावै भाव ॥३६॥

बोहा

वियोगी अपने वियोग सौ, न्यारी जानत जोग ।
वाकें देख न सकति है, वा गुण धारण जोग ॥३७॥
इह योगी की रीति है, मिलि करे सजोग ॥
तामो निर्जर कहत है, बिछुरण होइ वियोग ॥३८॥

चौपई

जनम जनम जे जोरे कर्म । अन्न जानो इनको गुण मर्म ॥
ता नासन को उद्दिम रक्ष्यौ । चारित बल रीति तब पक्ष्यौ ॥३९॥
उष्ण काल गिरि पर्वत बास । सीत समे जल तट हि निवास ॥
वर्षा ऋतु तरुवर के तल । सहुँ परीसह नेकु न हल ॥४०॥
मन चञ्चल को धामे धोर । इन्द्री दड देइ अति जोर ॥
पूरब कृत धिति पूरी होइ । प्रागे बहुरिण सचै कोइ ॥४१॥

यह पुचकल निज्ज्वर की रीति । निश्चय नय जब ध्यातम प्रीति ॥
तजें जीव परबुद्धि प्रसय । यह निज्ज्वर भावना सुरंग ॥४२॥

बोहा

सकल ब्रह्म तिय लोक में, मुनि के पटतर दीन ।
जोग जुगति सों यापना, निश्चय भाव धरीन ॥४३॥

बापई

तीन लोक सब पुरुषाकार । चौदह राजू उचित विचार ॥
जुगपद ए निगोद हैं दोइ । पिडुरी नर्क सात भवसोइ ॥४४॥
धम्मा बसा मेधा जानि । धजन अगिठा मध्य हैं ठाम ॥
मधवा सप्तम नर्क विचार । धाव तीनि तीस निधिवार ॥४५॥
अधस्थान परे धल चारि । द्वीप नाम प्री असुर कुमार ॥
बसे भवनबासी तिहि ठोर । ऊपरि मध्य लोक की दोर ॥४६॥
उदर समान बह्यो भुवि लोक । अगन्ति द्वीप समुद्र को थोक ॥
ज्यौ पजरहे लगराकार । त्योही सो रहै सुरग विचार ॥४७॥
प्रथम सोधम्म ईशान जु दोइ । सनतकुमार माहेन्द्र है जोइ ॥
ब्रह्म ब्रह्मोत्तर दो अभिराम । लातव धार कापिष्ट सु नाम ॥४८॥
शुक महाशुक सुर गेह । सतार महासतार गनेह ॥
धानत प्राणत ए सुरधाम । आरण अच्युत घोइस नाम ॥४९॥
वक्ष स्थान है प्रीवक तीन । अद्यो मध्य ऊरध परबीन ॥
नवनबोत्तर कठ स्थान । एक भवातरी तहा जान ॥५०॥
तापर पचानोत्तर नाम । अहिर्मिद्वनि के पांच विमान ॥
सो कहियें सरवारध सिद्धि । बदन ठौर जानियो प्रसिद्ध ॥
मुक्ति स्थल जलाट पर गनी । लोकाकाश यहि तुम भरीं ॥५१॥
त्रिय बलेन बेठधी केम । छालि लपेटधी तर बर जेम ॥
घनाकार है तासु बिसाल । रज्जु तीनसैं धोर लेवाल ॥५२॥

छहो द्रव्य करि यो भरि रह्यौ । ज्यों घृत परि पूरण घट धर्यौ ॥
 याते अघर अलोकाकाश । तहा सदा ही सुम्नि निवास ॥१३॥
 यह अनादि की धिति अवतार । करता तामुन को निर्द्वार ॥
 निवसे सिद्धि रूपता सीस । जीव सदैव दे भाप शरीस ॥१४॥
 तजो अजोग ठीर जिय जान । तब लोकानुभावना बलान ॥
 आयु छाडि जो चिर मैं अत । तो न बने लोकानु सतु ॥१५॥

बोहा

धर्म करावे शीर करें, क्रिया धर्म नहीं शीर ।
 धर्म जु जानु जु वस्तु है, ज्ञान दृष्टि धरि सोइ ॥१६॥
 करन करावन ज्ञान नहि, पढन धर्म इह शीर ।
 ज्ञान दृष्टि बिनु उपजै, मोप तरनी जु भकोर ॥१७॥

सोरठा

धर्म न क्रिये स्नान, धर्म न काया तप तपै ।
 धर्म न दीये दान, धर्म न पूजा जप जपै ॥१८॥

दोहरा

दान करो पूजा करो, जप तप दिन करि राति ॥
 जानन वस्तु न बीसरो, यह करणी बड बात ॥१९॥
 धर्म जो वस्तु स्वभाव है, इह जानी जो कोइ ।
 ताहि शीर क्यो दूए, सहज ही उपजै सोइ ॥२०॥

चौपई

छिमा प्रादि जो दश विध धर्म । षोडशकारण शिव पद धर्म ॥
 दान बिना पूजदिक भाव । नय्योहार धर्म जु कहाव ॥२१॥
 जो लीहै सराग चरित्र । तो लो इन गुण महा पवित्र ॥
 बीतराज चरित्र जब होइ । आयुकी प्राप मुनि सब कोइ ॥२२॥
 यह धर्म भावना विचार । करतें भवदधि पावै पार ॥
 इह अनादि की व्यापक अर्थ । कोऊ तजो मति धर्म प्रसव ॥२३॥

सोरठा

दुर्लभ पर को भाव, जाकी प्रापति हूँ नहीं ।

जो आपनी स्वभाव, सो क्यों दुर्लभ जानिये ॥६४॥

चौपई

जब जिय चरते मध्य निगोद । दुर्लभ सप्तम नरक विनोद ॥

जब भावें सातो पाथरे । एकेन्द्री दुर्लभ मन धरें ॥६५॥

एकेन्द्री यह करे सदीव । पानी तेज बाय के जीव ।

सात सात लाख परजाय । बनस्पति दस लाख मनाइ ॥६६॥

प्रध्वी काइ सात लख जानि । चौदह लाख निगोद बखानि ॥

तामे इत निगोदी सात । उनके दुषनि की भगनित बात ॥६७॥

ज्यों लुहार को सडसो भाहि । कबहू भगनि कबहूँ जल मांहि ॥

सेष सात लख इतर निगोद । अब सुनि उनके दुष विनोद ॥६८॥

सात उस्वास एक मे सार । जामन मरण भठारह बार ॥

वायु तनी सध्या नहीं तास । एकेन्द्री शरीर दुष रासि ॥६९॥

सब मिलि एकेन्द्री की जाति । थावर पञ्च प्रकार विख्यात ॥

तामे मुब जल हरित जु तीन । कहँ अनंत काम परवीन ॥७०॥

मसुरी दारि तने परमान । रहे जीव तिनिके सुख मानि ॥

वे जो जीव होइ मरि कोक । ती भरि उपलटै तीनों लोक ॥७१॥

तति इन्द्री दुर्लभ होइ । इँ लख जाति तामु की जोइ ॥

यो घास खुलासा पय दारि । लाट गडोई की अनिहारि ॥७२॥

रसना दोई इन्द्री मनी । श्री जिन भाग्ये ऐसी मनी ॥

यातें इन्द्री दुर्लभ तीनि । इँ लख जाति ठीकतादीन ॥७३॥

जोक मांकड बीछू भादि । देह नाक रसना की स्वाद ॥

यातें चौइन्द्री गति हरि । इँ लख जाति रही शरिपूर ॥७४॥

बर बांस माखी ह भौव काय । भृंगी भवरी कीट पलंग ॥

रसना नाक भांछि भौ देह । चौइन्द्री को बिबरण एहु ॥७५॥

जे सब मिलि अट्टावन लाख । लाख छबीस पंचेद्री भाषि ॥
 नस चारि बिनु हाड न होइ । बेइग्री लो जानै सोइ ॥७६॥
 ताहू मे सम्मूर्छन गना । यौ कहि गए सकल गुनि गना ॥
 तामे चौदस लाख नर जाति । चारि लाख तिरयंच विख्यात ॥७७॥
 ताहू में अ्योरे परबीन । जलचर नभचर थलचर तीन ॥
 नभचर सब पक्षि पहिचानि । जलचर मीनाधीक बचानि ॥७८॥
 अल्प अतुष्यद पशु अतीतर । ए सब थलचर नाम विख्यात ॥
 लाख चारि गति देवनि तनी । सोऊ चारि भेद करि सुनी ॥७९॥
 भवनवासी कल्प जु दोइ । अ्योतिग अ्यंतर सु होइ ॥
 कल्पवासी स्वर्गनि मे रहै । सुखसौ सकल आपदा दहै ॥८०॥
 दशविधि भवनवासी सुर जानि । पृथक पृथक गुण कहौ बखानि ॥
 पहलें असुरकुमार हें जोइ । दड देहै नरकनि को सोए ॥८१॥
 नागकुमार दूसरे रहै । तिनिसौ अष्ट कुली जग कहै ॥
 विद्युत योजो नाम कहत । चपला दामिनि जो चमकत ॥८२॥
 सुपरण चौथो नाम बखान । अग्निकोल पंचम सुर जानि ॥
 षष्ठम वात बखानी सही । जाले अशिक प्रवल बल मही ॥८३॥
 सप्तम सतति देव बिचार । जो नभ मडल गर्जय सार ॥
 अष्टम आवध नाम जु चरथो । जासौ कहै बज्र भुवि पर्यो ॥८४॥
 नवमो दिव्य ध्वनि आदेव । दशमे दश दिगपाल गनेय ॥
 अ्योतिग देव तनी परि शर । रवि ज्ञानि आदि पंच प्रकार ॥८५॥
 अह नखत्र तारांगन सुनो । ऊंचे चलो ताहि अरब अणो ॥
 पृथ्वी तें जोजन से तात । अौर नगे ऊंचो अशिकात ॥८६॥
 रतन जटित अ्योतिगी बिमान । तिनिकी अ्योति चमक परवान ॥
 शशि बिमान अजन मनि लसै । ता ५ तिविब अन्द्रवधु असो ॥८७॥
 वह स्यामता निरध मति अंध । थाप्यो जगत् कलकी अद ॥
 पथ चनित आप पर असो । तिनितें अगनि कोस भुव विषे ॥८८॥
 भरथो देव कुमति यो कहै । अौर टरथो तारो सब कहै ॥
 राहु केतु द्वै अह ए स्याम । निकट न हो रवि शशि के धाम ॥८९॥

इं रवि शशि इनि ऊपरि भलें । जोजन एक ग्रहो ए चलें ॥
 शशि ग्रह केत बोऊ एक जोट । दयो चलें छाया की ओट ॥६०॥
 ज्यो ज्यो छाया खून्ति जाइ । त्यो त्यो चन्द्र विमल प्रगटाइ ॥
 पूर्वो के दिन केतुम ग्रग । सोहत पूरण कहा मयक ॥६१॥
 यहां काहू जिय सशय भई । श्री गुरु सौ उन बिनती ठई ॥
 सुनियो जो पूर्वो को नाथ । केतु तजे हिमकर । को साथ ॥६२॥
 तो काहू तें चन्द्र ग्रनूप । कबहूँ कबहूँ स्वाम सरूप ॥
 तब गुरु कहैं सुनौ बुधिवत । कहौं प्रगट जो कही सिद्धन्त ॥६३॥
 ता दिन धरैं राहू की छाहूँ गहन कहैं भवनी सब माहि ॥
 ताको भेद कह्यो निरधार । ज्योतिग ग्रन्थनि के अनुसारि ॥६४॥
 फिरि परिबा ते दावें केतु । छाया तरउ पति को लेत ॥
 भावस के दिन सुनो प्रबीन । दीसैं हिमकरि कला विहीन ॥६५॥

बोहरा

रवि शशि सूरह सत्तमौ, होइराय एकत ।
 चन्द्रग्रहण तब होइसी, वादहि वरीय सत ॥६६॥
 जासु नक्षहि रवि बसैं, तासु ग्रभावसु होइ ॥
 राहू सूर सौ जब मिले, सूर ग्रहण तब होइ ॥६७॥

चौपई

ग्रह सुनि व्यन्तर देव विचार । कहिये सकल ग्रष्ट परकार ॥
 किनर भौ पुरुष बिराम । गधर्वं भौघ महोरग नाम ॥६८॥
 राक्षस जक्ष पिशाच व भूत । इहि विधि देव कहैं गुण जूत ॥
 नारक गति लाल जु चारि । लाल चौरासी सब मिलि सार ॥६९॥
 निकसि पावरिनि बाहिर परे । तिर्यग सुख दुर्लभ अनुसरे ॥
 तिर्यग को दुर्लभ नर बेह । तिनिकौं दुर्लभ लग सुर बेह ॥१००॥
 ए दुर्लभ लहि भटक्यो सबा । श्रावक कुल उपज्यो नहि कदा ॥
 कबहूँ भरथी नपुसक रूप । तातैं दुर्लभ नारि स्वकृप ॥१०१॥

नारी भए अधिक दुख खांनि । दुर्लभ पुरुष वेद प्रधान ॥
 कर्म शभाशुभ उदै प्रमाण । पायी नर शरीर शुभधान ॥१०२॥
 सत मुरु मुख सुनियौ उपदेश । जान्यौ निज स्वरूपको भेस ॥
रस विक्रिय क्षेत्र क्रिया सार ॥१०३॥
 तामें प्रथम बुद्धि रिद्धि कहौ । भेद अडारह तामे लहौ ॥
 केवल अवधि जानियौ दोइ । मनपरजय तीजी अवलोक्य ॥१०४॥
 अथ दुर्लभ शिव सरवर तीर । जामे विषे रहित शुचि नीर ॥
 अथ वह नीर हियौ जिय जाइ । कर्म घाताप सबस बुझि जाइ ॥
 सेन न जाउ कहूँ तुम दूरि । आतम ताल रह्यौ भगपूरि ॥१०५॥
 तू जिय निर्मल हस सुजान । और न कोऊ ताहि समान ॥
 पीवत लहै मुक्ति पब घोर । यह दुर्लभ भावना भकोर ॥१०६॥

बोहा

ए शुचि बारह भावना, जिनते मुक्ति निवास ।
 श्री जिनवर के चित्त मे, तबही भयो प्रकाश ॥१०७॥
 इति बारह भावना

शुद्धम देव गृह त्याग करान

चौपई

तब आए लोकातिक देव । कुसुमाञ्जलि दे कीनी सेव ॥
 पंचम सुरग है सु विशाल । यह नियोग आवै तिहिकाल ॥१॥
 जग अनित्य ताकी सब रीति । बरन सुनाऊ महा पुनीत ॥
 तुम प्रभु हो जिभुवन के ईश । सक्र दिवाकर हो रजनीस ॥२॥
 प्राणनाथ अविचल गुणवृन्द । अनभो ईदित भोल धमद ॥
 अगम अघट अघ्यातम रूप । गिरातीत श्री अलख अनूप ॥३॥
 केवल रूपी करुणाकार । नित्यानंद रहित अविकार ॥
 इहि विधि बहु स्तत परकार । श्री जिन आर्षे बरनी सार ॥४॥
 जो वह बुद्धि न प्रभु की होइ । जगत जीव निस्तरेड न कोइ ॥
 प्रभु समुभाइ गए निज धाम । तब जिनराज महाबल साम ॥५॥

भरतगाय को लियो बुलाइ । सौंपी राज भार समुझाइ ॥
 सकल देश वांटत तब भए । बाहुबलि पौदनपुर गए ॥ ६ ॥
 धीर सुतनि जो ओ थाह्यो ठोर । बाटि धीमी स्वाधी सिरधोर ॥
 इतने अंतर धीर जु देश । धार्ये प्रभुने अपर नरेश ॥८॥
 भरथ तनी सेवा भनि धरे । अज्ञा अंगन कोऊ करे ॥
 प्रथम ही अकवलि भरतेश । सावें षंड छहंनि के देश ॥९॥
 इहि विधि सबकी करि सनमान । जोगारूढ होत भगवान ॥
 सविचार चित्र विचित्र आनियौ । अंत बदि लोमी को जानियौ ॥१०॥
 तामे बेंठा श्री जिनचद । नाभि नरेश धरे निजु कद ॥
 सात पैड लों बे चले । भाव सहित मन अति ऊजले ॥११॥
 सुर नर देख सकल अभिराम । ले गए नदन बन अभिराम ॥
 इद्रनि कियो अति उछव तबै । जय जयकार उच्चरे जबै ॥१२॥
 बट तरवर वहां परम पुनीत । तातरि रिद्धि तजि भए अतीत ॥
 नम सिद्ध मुख तें उच्चरयो । पचमुष्टि लोच तब करयो ॥१३॥
 मडे पच महाव्रत धोर । त्यागी सकल परिग्रह ओर ॥
 मरिणमय आजन मे धरि केश । क्षीर समुद्र मे डारत भयो ॥१४॥
 पुष्कराद्रं पर पहुँच्यो जबै । न्यौहर गए करतें कच सबै ॥
 भाव द्रव्य ले मघबा गयो । धीर समुद्र मे डारत भयो ॥१५॥
 नाधि चिहुरसो निज पद जाय । मजम बल प्रमु अधिकाय ॥
 सजम तें मनपर्यय ज्ञान । प्रमु के हृदय भयो सुख खानि ॥१६॥
 मौन सहित तपु करत दयाल । तहा बीत्यौ तब किचिन काल ॥
 प्रगट भई आप वसु रिद्धि । धी जिनधर की परम प्रसिद्धि ॥१७॥
 अरु सुनि पृथक पृथक गुण तास । हाइ सकल मिथ्यामत नास ॥
 बुद्धि धौधधी बल तप चार । रस विक्रिय क्षेत्र किया सार ॥१८॥

बुद्धि धौधधी बल ऋद्धि—

तामे प्रथम बुद्धि ही रिद्धि । अठारह तामे लहो प्रसिद्धि ॥
 केवल अथधि जानियौ दोय । मनपरजय तीजी अरुलोय ॥१९॥
 बीज चतुर्थम पंचम गोष्ठ । षष्टम संभिन्न श्रोष्ठता श्रोष्ठ ॥
 सप्तम पादार सारिणी बुद्धि । दूरस परसन अष्टम शुद्ध ॥२०॥

दूरा रसन नवम बुद्धि जान । दूरा घ्राण दशम बखान ॥
 चतुर्दश पूरब तेरम गनी । प्रत्येक बुद्धि चौदही भनी ॥
 निमित्त ग्यान पन्द्रही अनूर । बाद बुद्धि पौडशमे स्वरूप ॥२२॥
 प्रगया हेतु सत्रही विचित्र । दश पूर्वा अष्टा पद पवित्र ॥
 श्रव वरणी सबके गुण जुदे । जाके सुनत होइ मन मुदे ॥२३॥
 केवल रिद्धि कहावै सोइ । जहाँ सर्वं दृष्टि जिन होय ॥
 तीन लोक प्रतिभासे जेम । जल की बू द हस्त पर एम ॥२४॥
 श्रवधि बुद्धि की कारण यहै । गत प्रागत भव सात जु कहै ॥
 द्विनि पूर्वे नही श्रवदात । कहै जब कोऊ पूर्वे बात ॥२५॥
 सोइ श्रवधि तीन परकार । देश परम सन्धावधि सार ॥
 देश एक की मानै बात । सो देशावधि नाम विख्यात ॥२६॥
 मानुषोत्र लौ वरने भेद । परमावधि जानै जियवेद ॥
 तीन लोक सबधी कहै । सर्वावधि ऐसो गुण लहै ॥२७॥
 मनपरजय जब उपजै भेद । मन विकार तजि निर्मल शुद्धि ॥
 सबके मनकी जाने त्रीय । जैसी जाके बरते हीय ॥२८॥
 बाहू मे द्वै भेद बखान । रिजु विपुल भाखे भगवान ॥
 सबके मन को मरल स्वभाव । रिजुमति बारै की जु लखाव ॥२९॥
 सूधी टेढी सब जानई । विपुलमति ताकी मानई ॥
 बीज बुद्धि जब उदय कराइ । पठन एक पद श्री जिनराय ॥
 पद प्रनेक की प्रापति होइ । यह वा बुद्धि ननो फल जोइ ॥
 एक श्लोक अर्थ पद सुने । पूरण ग्रन्थ आपते भने ॥३१॥
 रत्नी न भेद छिपी कछु तहा । कोष्ठ बुद्धि प्रगटत है जहा ॥
 नव जोजन की है विस्तार । बारह जोजन लाभो सार ॥३२॥
 चक्रवर्ति दल जितक प्रमाण । देश देश के नर तहा जान ॥
 एक ही बेर जो बोलै सबै । पहिचानै सब के बच तबै ॥३३॥
 सभिण श्रोष्टता बुद्धि विशेष । प्रतक्ष प्रगटै ऐसे गुण दोषि ॥
 श्रादि को एक अन्त की एक । पढ ग्रन्थ पद सुनी विवेक ॥३४॥

होइ समस्त अर्थ को ज्ञान । कठ पाठ सब ग्रन्थ बखान ॥
 एह पादुनासारिता बुद्धि । जिनबानी तें पाई सुद्धि ॥३५॥
 गुरु लघु रूक्ष उच्छ्र जो सीत । तित्त कटुक चिकन रस रीति ॥
 घ्राठ प्रकार जिनेश्वर कहै । सपरसन रस इन तें गुण लहै ॥३६॥
 द्वीप भटाई ते जु भ्रमग । परसे रिद्ध घनि के भ्रम ॥
 इह मरजादा पर उतकिष्ट । जोजन नो तें गणो कनिष्ट ॥३७॥
 सब गुण जुदे कहन को इच्छ । दूरी परसन बुद्धि प्रतक्ष ॥
 मीठो करवो औ चरपरो । चिकनी और कसेली घरे ॥३८॥
 रसन भेद ए वरगै पाच । दीप जुगल अर्थ तेलहि साच ॥
 जो कोऊ सब खोलइ तहा । खाद बखानै रिद्धि बल इहा ॥३९॥
 दूरा रसन बुद्धि बलवत । जिन भ्रमग भाषित भरहत ॥
 दुर्गंधा भर परम सुवास । ए नाना के परम बिलास ॥४०॥
 पूर्वरीति जानें रिद्धिवान । यह कहिये बुद्धि दूरा भ्राण ॥
 रिसभ निषाद गघार बखान । षडज औ मध्य धैवत जान ॥४१॥
 पचम सकल मिले सुर सात । मुनि इनके प्रगटन की जात ॥
 पुरुष नाभिख रिघ भगवान । सुर निषाद नभ घरज प्रमान ॥४२॥
 पचम कठ कोकिला जेम । सप्तम सुर जु उचारे एम ॥
 कहा कहा प्रगटै सुर मात । पच शब्द कहिय विख्यात ॥४३॥
 प्रथम शब्द जो चर्म बजत । दूजा फूंक तीमरी तन्त ॥
 चौथी भाभि मजीरा ताल । पचम जल तरंग को ख्याल ॥४४॥
 पूर्व रीति ते दोइ लखाव । दूरा श्रवन बुद्धि परभाव ॥
 श्वेत पीत भर रक्त सुरग । हरित कृष्ण गुरु चक्षु भ्रग ॥४५॥
 बाहा भाति दूरते ग्यान । रिद्धि दुराव भवलोकन जान ॥
 दश पूरब भर ग्यारह भ्रग । विनुम सकति विष्वाजा भ्रग ॥४६॥
 रोहिणी आदि पचसो जानि । क्षुलक आदि सातसो मानि ॥
 ए देवी सब ता डिग आव । करे कटाक्ष हाव भर भाव ॥४७॥
 तिनिकी चचल चित्त कदा । करत आधे न होइ धिर सदा ॥
 अर्थ सकल मुल कहौ विचार । दशपूर्व बुद्धि के अनुसार ॥४८॥

जहाँ चतुर्दश पूरव पढे । ग्यारह अंग बिना श्रम बढे ॥
 बुद्धि चतुर्दश पूरव एह । सोहै रिद्धवत की देह ॥४६॥
 सजम श्री चरित्र विधान । बिनु उपदेशनि दुहुनि के धाम ॥
 दया दमन इन्द्री तप घोर । इह प्रत्येक बुद्धि को जोर ॥४७॥
 इन्द्र आदि को विद्यावान । आवैं वाद करण घरि मान ॥
 उत्तर प्रथम रहैं सब मनी । इह बल वादि बुद्धि के घनी ॥४८॥
 तत्त्व पदारथ सजम संतु । तिनिके सूक्ष्म भेद अनन्त ॥
 द्वादशांग बानी विनु कहैं । प्रग्या बुद्धि होइ गुण लहै ॥४९॥

दोहरा

अन्तरीक्ष भौमग सुर व्यंजन लखिन छिन्न ।
 स्वपन मिले जब देखिये, छाठ निमत्तम अन्न ॥५३॥

चौपई

सूर सोम ग्रह नक्षत्र प्रशस्त । तिनिकी ग्रहन अरु न उदयस्त ॥
 शुभ अरु अशुभ जानत फल तास । अतीत अनागत सकल प्रकास ॥५४॥
 वर्तमान जैसे कछु होय । अन्तरीक्ष को बरुन सोइ ॥
 निमित्त अंग पहिलो यह भलौ । अन्तरिक्ष कहिये निम्मलो ॥५५॥
 छिपी वस्तु जो भूमि मझार । द्रव्य आदि नाना परकार ॥
 जथा जुगति सी देय बताइ । स्वय बुद्धि पर कौन सहाय ॥५६॥
 भूमिकप फल बरते जेम । सब विधि बरण सुनावैं तेम ॥
 भूमि भेद कछु गोप्य न रहै । भूमि ऐसो गुण कहैं ॥५७॥
 नर निरयच अंग प्रत्यग । तिनिके दरसय परस अमंग ॥
 दुख सुख सब कऊन जानइ । बैद्यक सामुद्रिक मानइ ॥५८॥
 करणाजुत भाषै उपचार । सब जग पर उनिकी उपगार ॥
 लक्षण प्रमट कोप ग्यान । अ ब नाम ऐसो गुण जान ॥५९॥

खग चौपद की भाषा जेती । प्रगट घांनि हृदय सौ तेती ॥
 तिनितें जो कछु भावी काल । प्रगट बखान्यो दीन बयाल ॥६१॥
 सुख दुख को भाषम यही । भव जग सगुण कहावें सही ॥
 इह निमित्त को चौयो भेद । सुर कहि नाम बखानें वेद ॥६२॥
 निलम से श्री लसन है आदि । सामुद्रिक तें जुदे अनादि ॥
 तिनिके फल को पूरण ज्ञान । व्यंजन अग तनीं गुण जानि ॥६३॥
 श्रीवच्छादि लाखण लीक । अष्टोत्तर सौ तिनिकीं ठीक ॥
 कर पतरत शुभा शुभ जेम । लक्षण केवल भाखें तेम ॥६४॥
 वस्त्र शस्त्र उमापति छत्र । आसन सेनादिक अरु वस्त्र ॥
 राक्षस सुर नर अन्त मन्कार । मूषक कटक शस्त्र पहार ॥६५॥
 गोमय अगनि बिनासो होइ । शुभ श्री अशुभ ताल फल जोइ ॥
 प्रगट बखानें ससे नाहि । यह अधिकारी छिन के माहि ॥६६॥
 सकल पदारथ जो जग रचे । जब वे आइ स्वपन मे वचे ॥
 तिनिके प्रगट सुख श्री ताप । बरणि सुनावै स्वपन प्रताप ॥६७॥
 इह विधि जे अष्टाग निमित्त । बरण सुनावै तहां पवित्त ॥
 सबकी ससे खारै घोर । बुद्धि निमित्त प्रतिभ्या जोर ॥६८॥

दोपदा

इह अष्टादश अग जुत, । बुद्धि रिद्धि गुण गेह ।
 विमल रूप प्रगट सदा, आइ तपोधन देह ॥६९॥

इति बुद्धिर्द्धि बखानं

अथ श्रौषधी रिद्धि बखानं

चौपई

अथ सुनि रिद्धि श्रौषधी भेद । अष्ट प्रकार बखानी भेद ॥
 विटुमल आमज्जल शूल अंग । सब दृष्टि विष महा अमग ॥१॥

तिनिकी विष्टा लेपेँ गात । सकल रोग को होई निपात ॥२॥
 निर्मल अमल निरोग शरीर । विट प्रताप यह परम गंभीर ॥
 दात कान नासा कौ भैल । देखत रोग सबै गहै गैल ॥३॥
 सकल धातु को होइ कल्याण । मल प्रताप यह ररम गभीर ॥
 रोग प्रसत औदारिइ हन्यो । भागहीन चित्त करि सुन्यो ॥४॥
 हाथ छुवत सावासव छोर । ग्राम प्र ग की ज्ञानोदीर ॥
 अमजल मे रज जागे अ ग । मुख साता दुखहरण अमग ॥५॥
 टले असाता लागत देह । जल अ ग है सब मुख गेह ॥
 लार बषार थू कि ते जानि । व्याघहरण औ धातु कल्याण ॥६॥
 पूरण करे मनोरथ महा । धूल अ ग गुण उत्तम कहा ॥
 परमें अ ग तो आवै ठाइ । जिनको लगै परम सुखदाइ ॥७॥
 हरे अताप करे अघ नाम । सर्व अ ग को इह परगाम ॥
 काटथो होइ सर्प नै काई । कै काहु विष पीयो होई ॥८॥
 दृष्टि परै अतापन रहै । दृष्टि अंग ऐसो गुण लहै ॥
 जो कोऊ नै विषु देइ । व्यापै नही परम सुख लेइ ॥९॥
 बचन योग सबको बिस हरै । अ ग असन विषं यह गुणघरै ॥
 सप्य दिक्क लहि उनिकी बास । वरै नही मुनि निबट निवास ॥१०॥

दोहरा

यह विधि आठ प्रकार जू, रिद्धि औषधी सार ।
 प्रगटै श्री मुनिराज की, तप बल यह निरधार ॥११॥

इति औषध रिद्धि वर्णन

बल अर्द्धि वर्णन

चौपई

अब तुम मुनी रिद्धि बल सार । मन बच काय त्रिविध परकार ॥
 भिन्न भिन्न गुण तिन के गहो । ऐसो गुण आगम मे लहो ॥११॥

श्रुत आवरणी कर्म प्रधान । ताके छय उपशम तें जानि ॥
 अन्तर महरत विषै समर्थ । द्वादशाय बानी कौ अर्थ ॥२॥
 तिनके मनमे करे बिलास । यह कहिये मन बल परकास ॥
 द्वादशाय बानी अध्ययन । करत महामुख उपजै चैन ॥३॥
 तिनको कष्ट न होइ लगार । अंग वाक्य बल के अनुसार ॥
 बानी पठत देह श्रम नाही । पढइ मंत्र महरत माही ॥४॥
 काय अखडित बन कौ करै । अंग काय बल यह गुण धरै ॥
 प्रतुल अखड बली बलवीर । सीढ़े जिनको सुभग शरीर ॥५॥

दोहरा

यह बल रिद्धि गभीर गुण, प्रगट बखानी देव ।
 उदय होइ तप जोग तें, यह जिनबानी भव ॥६॥

इति बल ऋद्धि वर्णन

तप ऋद्धि वर्णन

चौपई

सुनौ भव्य अब तप ऋद्धि सार । तामें सात अंग निरधार ॥
 घोर महत औ उग्र बनत । दीप्त गुण घोर भनंत ॥१॥
 सप्तम ब्रह्मा घोर बखान । अब तिनके गुण सुनौ सुजान ॥
 महानसान भूति अनि होइ । जोग धरै रुचि सौं मुनि जोइ ॥२॥
 सहै उपसर्ग धुरधर घोर । याही सैं कहिये तप घोर ॥
 सिधनि क्रीडित आदि उपवास । तिनको करै सदा अभ्यास ॥३॥
 मोन अन्तराय सौ यह पाल । इह कहिये तप महतिरमाल ॥
 वेद काय बसु द्वादश मास । इत्यादिक जे औ उपवास ॥४॥
 करै निर्वाह योग आरूढ । यह तप उग्र तनौ गुण गूढ ॥
 करत उपवास घोर बहु भांति । घटै नही वेही की कान्ति ॥५॥

उपजै नहीं दुर्गन्ध शरीर । यह कहिये तप दीप्त गंभीर ॥
 तप्त लोह गोला पर नीर । परत ही सूकं सहे नही पीर ॥६॥
 लियैं घ्राहार निहारन जहां । तप्त भ्रग तप जानौं तहां ॥
 भतीचार बिनु मुनि अभिराम । घोर गुण तप याको नाम ॥७॥
 दुषमादिक होइ न तास । घोर ब्रह्मचर्य गुण भास ॥
 व्रत कत श्रीरु भ्राठ निरघार । तितिके मुनिवर साधन हार ॥

बोहरा

तप ऋद्धि के सात गुण भ्रम्यसैं मुनिराज ।
 भनुक्रम तातैं जानिये, केवल ज्ञान समाज ॥६॥

× × × × × ... × × × × × .. × .. × .. ×

काष्ठा संघ उरपत्ति बर्णन

समोसरण श्री सनमति राय, आरजखड परघौ सुखदाइ ।
 भ्रन्ति समै पाषापुर भ्रानि. पुन्य प्रकृति कीर्त्तन गई हानि ॥१॥
 सुदि आषाढ चौदसि के दिनो । घाप्यो जोग सकल मुनि जना ॥
 पुर की सीम नखे नहि कोइ । पार न जाइ नदी ज्यो होइ ॥२॥
 कातिग सुदि चौदसि आवई । ता दिन मुनि चौदसि घावई ॥
 अ्यारि मास पूरो भयो योग । देव ठान भालें सब लोग ॥६॥
 गौतम भ्रादि सकल मुनि चग । ता तल घप्यो जोग प्रमु सग ॥
 हुतो तडाग तहां शुचि रूप । एक कूट ता मध्य भ्रनूप ॥४॥
 तापर निबसे श्री भगवान । हिरदें तुरीय पद शुक्ल जु ध्यान ॥
 कातिग बदि मावस की रीति । चारि घडी जब रह्यो प्रभात ॥५॥
 श्री जिन महावीर तीर्थेश । पंचम गति को कियो प्रवेश ॥
 मुक्ति सिलापर सिद्ध सरूप । परमातमा भए चिद्रूप ॥६॥
 जो मुनि देखें नेन निहार । कूट नही प्रमु प्रतिमा सार ॥
 उनि समान मुनि सुध डारि । प्रमुजू नें किल कियो बिहार ॥७॥
 भटकत डोलें चरदिसि मुनी । गौतम ज्ञान रिद्धि तब सुनी ॥
 श्री गौतम मुख बानी सिरी । सब के जिय को संसय हरी ॥८॥

धाए इन्द्र सकल जुरि तहां । प्रभु निर्बान ज्ञान मुनि जहां ॥
 किबो महीबो पूरब रीति । मुनि सों कहैं इन्द्र धरि प्रीति ॥१६॥
 काहे कों मुनि जन भ्रम करघी । जोग दिसा क्यौं सुधि बिसरघी ॥
 सिद्ध सिला निबसैं भगवान । काहे को तुम चित्त मलान ॥१७॥
 तब मुनि कहे सुनी सुरपती । जोग दिसा तबि दो रे जती ॥
 भाग्या मिटी भयो व्रत भग । करें कहां प्रब भाष्यी धंग ॥१८॥
 तब सुरपति जिय सोच धपार । धावतु है पंचम धनवार ॥
 धर्म रहित परमादी जीव । बरतेंगे ता काल सदीब ॥१९॥
 जो हो इनिसो कहो प्रकार । पूरी करौ जाइ बीमास ॥
 मति डरयो व्रत भग जु भयो । तुम प्रभु कें हित हो चित्त दयो ॥२०॥
 सो पंचम परमादी लोग । संख्या तोरि करेंगे जोग ॥
 ता तैं ध्राज भली दिन जानि । श्री गौतम भयो केवल ज्ञान ॥२१॥
 उद्धव करि सब करघो बिहार । ज्यों अलण्ड व्रत की नहि हार ॥
 तबते धाहूठ मास कौ जोग । पंचम काल धरें मुनि लोग ॥२२॥

बोहरा

बाही निशि श्री वीर कों पूजें पद निर्बान ।
 कथा काष्ट जु संघ की, धारें करौ बखान ॥२३॥

इति चतुर्मास भेद जोग बखानं

चौपई

गुप्तागुप्त धाधारज रिष्य । भद्रबाहु मुनि तिति के शिष्य ॥
 तिति के पट्ट जु माघनदि मुनि । ज्यों चरननि मे जाइ गुनी ॥२४॥
 उनके पट्टाधीश बखानि । श्री कुन्दकुन्द धाधारज जानि ॥
 तिनिके पट्ट जु उमास्वाति । जिनतैं तत्त्वारथ विख्यात ॥२५॥
 तिनिके पट्ट लोहाधारज भए । जिन काष्ठासब निरमये ॥
 धाधारज बिद्या भण्डार । साक्षात सारथ अक्षतार ॥२६॥

तिनके तन क्यों उपज्यो रोग । ध्राय बन्यो मरवाको जोग ॥
 बाय पित्त कफ घेरी देह । भव श्रीगुरु घरि आए नेह ॥२०॥
 हूँ दयाल दीनों सन्यास । जब जीवन की रही न आस ॥
 पुन्य प्रभाव बेदनी घटी । व्यापी सकल मुनिवर ते हूटी ॥२१॥
 क्षुषा पिपासा व्यापी भ्रम । बिनती जु गुरु सो चग ॥
 टली असाता प्रायु प्रताप । अब कीजें जो प्राज्ञा प्राप ॥२२॥
 श्रीगुरु कहे तब आग्या भ्रान । करि सन्यास मरण बुद्धिवान ॥
 ज्यो आगे परमादी जीव । प्रतिपाले जो व्रत जोग मदीव ॥२३॥
 लोहाचारज घग्गी न कान कियो आहार अन्न र पान ॥
 गुरु सुनि गच्छ बाहिरे । पट्टाधीस और अनुसरे ॥२४॥
 लोहाचारज सांच विचार । गुरु तजि कीयो देश बिहार ॥
 सबत श्रेपन सात सैं सात । विक्रमराय तनी विख्यात ॥२५॥
 आए चले नदीवर ग्राम । जाको है अग्ररोहा नाम ॥
 वा पुर अग्रवाल सब बसैं । घनकरि सब लोकनि कौ हंसैं ॥२६॥
 परमत कौ जिनके अधिकार । और धर्म कौ गर्ने न सार ॥
 अब उनिकि उतपत्ति साभलै । मत मिथ्यात सकल दल भलौ ॥२७॥
 अग्र नाम रिष हे तप धनी । बनवासी माता वा भनि ॥
 एक दिवस बैठे घरि ध्यान । नारी शब्द परयो तब कान ॥२८॥
 मधुर वचन और ललित अपार । मानो कोकिला कठ उचार ॥
 छूट गयो रिष ध्यान अनूप । लागे निरिखन नारी रूप ॥२९॥
 व्याप्यो काम धीर नही घरै । त्रिय प्रति तब बोलन अनुसरै ॥
 तब बोली नारी वह जान । नाग तनी मोहि कन्या जान ॥३०॥
 जो तुम काम सताये देव । जाच्यो मम पिता कौ करि सेव ॥
 निर्गलि वरन न घरि है मान । तुरत करेंगो कन्या दान ॥३१॥
 सुनत वचन उठि ठाडे भए । ततक्षिन नाम लोक को गए ॥
 नाम निरिख तपस्वी अबतार । कीनौ आदर भाव अपार ॥३२॥
 तब ऋषिराय प्रार्थना करी । तब कन्या हमि जिय मे बरी ॥
 अब तुम देहु हमें करि दान । ज्यो सतोषु लहे मम प्राण ॥३३॥

नाग दई तब कन्यां बांहि । कर यहि भ्रगर ले गए ताहि ॥
ताके सुत अष्टादश भए । गर्गं आदि सुतमे बरनए ॥३४॥
तितिकी बक्ष बढयो असगल । ते सब कहियें भ्रगरवाल ॥
उनिके सब अष्टादश गोत । भए रिषि सुत नाम के उदोत ॥३५॥
तितिके सुन्यो एक आयो मुनी । पुरु के निकट बह उतरयो मुनी ॥
भिक्षुक जानि सकल जन नए । भोजन हेत विनयवत भए ॥३६॥
तब मुनि कहे सुनौं धरि प्रीति । हम तपसीनि की ऐसी रीति ॥
जो कोऊ श्रावक धर्म कराइ । मिथ्यामत जाकों न सुहाइ ॥३७॥
सो अपने धरि आदर करें । ले करि जाइ दया तब चरें ॥
और ग्रहे नही आहार । यह हम रीति सुनी निर्द्वार ॥३८॥
तब पुर जन जिय विसमय भई । यह कैसे मुनि आयो दई ॥
जो न देख हम जाहि आहार । तो आवैं हमरे पन हार ॥३९॥
कलुक लोय तब जैनी भए । श्री मुनिराज चरन आइ नए ॥
धर्म समझि लेहि गुरु उपदेश । तब गुरु जुत कियो नगर प्रवेश ॥४०॥
दयो भली विधि मुनि आहार । आनद उद्वब करें अपार ॥
यह विधि प्रतिबोधें विख्यात । श्री मुनी भ्रगरवाल सो सात ॥४१॥
तब जिनभवन रक्ष्यो बहु चग । रची काष्ट प्रतिमा मन रग ॥
पूजा पाठ बनाए और । गुरु विरोधि हित कीनि दोर ॥४२॥
चली बात चलि आई तहां । उमा स्वामि भट्टारक जहां ॥
मुनि जिय चिन्ता भई अगाध । करी काठ की नई उपाधि ॥४३॥
भली भई परमत किये जैन । सुनत बात उपज्यो उर चैन ॥
चलि आये तहां श्री मुनिराइ । नदीपुर वर जैनसमाइ ॥४४॥
आवत सुनी श्री निज गुरु भले । आगें हो न आचारज चले ॥
जोनैं सकल नबर जन सग । बाजत अति बाजे मन रग ॥४५॥
निरिखि मुनी तब पकरे पाइ । आनद बढयो न अग समाइ ॥
तब मुनिराज दई आसीस । लयो उठाइ चरन तैं सीस ॥४६॥
तब पुरजन सब बदन करें । उमास्वामि धर्म वृद्धि उक्चरें ॥
अयोनी करि लाए गांम । राजतु हैं जहां जिनवर धाम ॥४७॥

भोजन हित विनती सब करें । तब श्री गुरु मुख तें उचरे ॥
 जो देहै हम गुरु को सीख । गौर आचारज मानै सीख ॥४८॥
 तो हम लेही या पुर चरी । तब आचारज विनती करा ॥
 आम्हा होइ करी सोइ नाथ । भयो हमारो जनम सनाथ ॥४९॥
 तब मुनि कहै सुनो गुन जूल । शिष्यन मे भए तुम भए सपूत ॥
 परमत भजन पोखन जैन । धर्म बढायौ जीत्यौ मैन ॥५०॥
 वही सीख हमरे करि घरघो । काठ तनी प्रतिमा मति करो ॥
 अग्नि जरावे धन जिह दहें । अग भग नहि जिन गुन लहे ॥५१॥
 जल डारे चबल तसु छान । लेख किये सदोष यह जानि ॥
 तब आचारज करी प्रमान । भाखें गुरु सो वचन निदान ॥५२॥
 पाठन फेरो दीन दयाल । कर पीछी सुरही के बाल ॥
 गुरु मानी वाढघो अतिरग । जेउ न उठे शिष्य गुरु सग ॥५३॥
 तब तें काष्ठासघ परवरघो । भूलसघ न्यारो विस्तरघो ॥
 एक चना कीज्यौ दूँ डारि । त्यों ए दीऊ सघ विचार ॥५४॥
 जैन बहिमुख कोऊ नाहि । नाम भेद दीसैं गुरु माहि ॥
 तातैं भव्य भ्रान्ति जिय तजौ । मन वच तन आतम हे भजौ ॥५५॥

दोहरा

कही काष्ठासंघ को, भेद सकल निरधार ।
 गुरु प्रसाद आगे कहो, पच स्तवन विचार ॥५६॥

इति काष्ठा संघ उतपत्ति बखान

जैसबाल जाति उत्पत्ति इतिहास—

चोपई

श्री जिनदेव ऋषभ महाराज । जब बाटघो सब महि को राज ॥
 अवनपुरी दई भरष नरेस । बाहूबलि पोदनपुर देश ॥१॥
 गौर सुनत माग्यो ठाम । श्रीप्रभु तें दीयो अभिराम ॥
 कुंवर शक्तिजित वाट नरेस । चलि आए जहाँ जैसलमेर ॥२॥

वें मण्डल को साथे राज । मुल साता तें सबै समाज ॥
 तिनकी बश बढयो प्रसराल । जैन धर्म पालै महिपाल ॥३॥
 उनिके बश नृपति एक जान । तिनिकीयो परमत सों प्राँन ॥
 जिनमत की छाँठी सब रीति । कल्पित मत सो बाधी प्रीति ॥
 शुभ कर्म घटै चटि गयो प्रताप । भवनीमद फले सब पाप ॥
 और इकदिन चढ़ाई कीन । गयो देश या वें ते शीन ॥
 पर जानरि रालें ठीर । भ्रष्ट भए देश सिरमौर ॥
 राज भृष्ट हूँ कृषि धादरी । कोऊ बनिज कोऊ चाकरि ॥६॥
 इहि विधि रहित गयो बहुकाल । छूटि गयी जिनमत की चाल ॥
 महावीर प्रमु प्रकटघी ज्ञान । रबी सभा भ्रमरनि ध्यान ॥७॥
 सकल सुरासुर पुन्न प्रचण्ड । ताहि ले फिरें धारजा लंड ॥
 खड सकल परस्यो चो फेर । चलि आए जहाँ जैबल्लमेर
 आयो समोसरण बन माहि । सब ऋतु वृष्य सफलाइ ॥
 बन माली राजा पै आय । प्रमु आगमन कछ्छी समुभाय ॥६॥
 सुनि राजा चल्दी वन्दन हेतु मान रहित पुर लोक समेत ॥
 प्रथम नमै श्री जिनवर राय । फिर नर कोठे बैठे जाइ ॥१०॥
 पूछत भए श्री प्रमु को बात । जे ए बात बश विख्यात ॥
 रहो कृपा करि सुर महाराज । चटघो क्यो हमतें भुविराज ॥
 तब बोले गीतम बल राइ । जैन त्यागो रे भाइ ॥
 जो वह फेरि धादरो धर्म । बिहुर जाइ तुमतें दुल कर्म ॥१२॥
 तब करि और जघारथ सार । धर्म लयो जन चारि हजार ॥
 बाधा बंध सबनि मिलि नरघी । जिनथर जैन धर्म धादरघी ॥१३॥
 तिनही सों धपनौ व्यीहार । खाम पाँन धरु सगपन सार ॥
 इनि तजि धीरजु को धादरें । तजें ताहि दोष सिर भरें ॥१४॥
 यह ठहराइ धर्म ले फिरि । सब आए पुर जैसलमेप ॥
 समोसरण आयी पंच पहार । मगध देश राज शुह सार ॥
 वें सब जेसवाल प्रतिपाल । सोयी उरतें मिथ्य साल ॥
 रच्यौ नगर जिन धालय चंग । जिन पूजन तहा करें धर्मंग ॥१६॥

देई चतुर्विध संघहि दान । तिसि दिन रचि सो सुनें पुरान ॥
 बालिद्र गेह हुते जे लोग । तिनिके नाना विघ के भोग ॥१७॥
 सब के अटल लजि घर भई । सकल त्याग बनिज बुधि ठई ॥
 या अन्तर एक भावक धान । कन्वा रूप भई अभिराम ॥१८॥
 तास रूप की सब पुर वास नृप जिय उपजी ब्याहनि बात ॥
 पठयो दूत कह्यो हम देहु । कन्या दान तनो फल एऊ ॥१९॥
 सुनत सबनि के विसमय भई । कौन बुद्धि राजा यह ठई ॥
 पच सकल जुर करि आइयो । प्रब हम जैन धर्म बत लयो ॥२०॥
 अपर जाति सो रह्यो न काज । खान पान अरु सगपन साज ॥
 दूत कह्यो राजा सो जाइ । हठ किए विसमय अधिकाइ ॥
 सुनि राजा कहि पठयो फेरि । तो तुम त्यागो जंसलमेर ॥
 जहाँ लहो न लगी मेरी भ्रान । रजा ऐसी कही निदान ॥२२॥
 तब वे सकल चले तजि ठाम । जैन मती जिन ते अभिराम ॥
 जिहि पुर आइ संघ यह परें निरिखि सबै कोऊ पूछन करें ॥२३॥
 कौन देश तें आयो सघ । कौन जाति कही कारण चग ॥
 उत्तर देई सबै गुणमाल । वश इक्ष्वाक जेसवाल ॥२४॥
 जेसवाल तब ही ते जान । जेसवाल कहित परवान ॥
 चले चले आये सब जहाँ । हुती तिहें गिरी नगरी जहाँ ॥२५॥
 ता पुर हुतो निकट वन चग । उतरयो तहाँ जाइ वह सघ ॥
 पायें यह जहाँ चातुरमास । सकल सघ ऊहा कियो निवास ॥२६॥
 बीतें रहाइ दिन जबें । वन श्रीडा नृप निकस्यो तबै ॥
 कटक दृष्टि नृप के जब परयो । सबनि को पूछन अनुसर्यो ॥२७॥
 का को कटक कौन आइयो । जा वन तूँ पूछाइयो ॥
 कहे मन्त्री ए जेसवाल । सबनि लियो मत जैन रसाज ॥२८॥
 नृप कन्या न २ई याह । दई नही कस्यो नर नाह ॥
 निज पुर तें ए दये निकार । चलि आये या देश मझारि ॥२९॥
 चातुर्मास आबबो आइयो । नाद बहि तन छाइयो ॥
 राजा कहे सुनो परधान । क्यो न मिलि हैं हम को भ्रान ॥३०॥

सचिव कहें इनें गर्व अपार । याही त नृप ए दीए निकार ॥
 सुनि राजा कर मूछनि धर्यो । मन मे रोस सध पर कर्यो ॥३१॥
 मुख तें कछु न करी उचार । घ्राए महीपति नगर मझार ॥
 सध तने कछु बालक चंग । क्रीडित हुते तहाँ मनि रंग ॥३२॥
 तिनि मे हुतो एक बुधिवान । नृप चरित्र सब वह पहिषांन ॥
 चलि घ्रायो सिसु सग मझार । बँठो जहाँ सकल परिवार ॥३३॥
 बालक सबसे भाषी बात । नृप को बेगि मिलो तुम तात ॥
 नही तो मान भग तुम होय । सत्य बचन मानौ सब कोइ ॥३४॥
 तब सब कहकर उठे अकुलाइ । बसो जाइ देखें पुर राइ ॥
 मनि मानिक मुक्ता फल भले । राजा भेट काज ले चले ॥३५॥
 पहुँचे जाइ नृपति के द्वार । भेट घरी अरु करघो जुहार ॥
 राजा पूछै ए को हेत । जिनि मे प्रीत तनो उद्वैत ॥३६॥
 सचिव कहे ए सब सुनो भूपाल । हम चित नही सर्व को साल ॥
 नृप अनीत त्यागे निज देश । चलि घ्राए तुं व शरण नरेश ॥३७॥
 करी हुती जहाँ जिय मे चित । बीतें भादव वरत पुनीत ॥
 देखें जाइ चरण प्रमु तनों । और मनोरथ चित के बनौ ॥३८॥
 मागि लेऊ कछु भूमि विसाल । तहाँ बसें हम जँसवाल ॥
 अब जब सुनि राय रीस घरी । तब हम घ्राइ भेट अब करी ॥३९॥
 तब नृप त्रिय विसमय अघिकाइ । मैं निज रीस काहू न जताइ ॥
 तुम क्यों जान्यो मेरो क्रोश । बिनु भावें किहि विधि भयो बोध ॥४०॥
 तब सब मिलि नृप सो बिनए । जा दिन तुम प्रमु क्रीडा वन गए ॥
 पूछी सकल हमारी बात । सचिव कही जैसी इह तात ॥४१॥
 तहाँ एक बालक हमरो हुतौ । बुधिवान क्रीडा संजुतौ ॥
 तिनि सब बात कही समझाय । बेगि मिलौ तुम नृप को जाइ ॥४२॥
 क्रोश कियें हम ऊपरि चित्त । मैं भाषी सब सो सब सति ॥
 या पर हम जिय में बहु सके । घ्राप मिलिन महा भय थके ॥४३॥
 सुनि करि तब बोल्यो क्षिति पाल । बेगि बुलावो अपनो बाल ॥
 चिनि अम जिय की पाई बात । पूर्णों बोध तनो अबदात ॥४४॥

तब उन बालक दयो बुलाब । रूप निरिख नृप धानन्द थाय ॥
 पूछै महिपति सुनि रे बाल । तैं क्यों जानो मम उरसाल ॥४५॥
 बालक कहै उभय करि जोरि । जब प्रभु निज कर मूँछ मरोरि ॥
 क्रोध बिना मूँछ नही हाषि । यासैं हम जान सके नरनाथ ॥४६॥
 सुनि राजा परिफुल्लित भयो । कर गहि कट लागि शिशु लयो ॥
 धावर सहित दिवाए खाँन । बिदा दई राख्यौ बहु मान ॥४७॥
 रहिबे कौ यवौ पुर मे ठाम । मन्दिर तहाँ सुभग अभिराम ॥
 बसे धानि जब वीत्यो जोग । करें तहा बहु विधि के भोग ॥४८॥
 नृप पठयो एक दूत सुजान । जेसवाल सुनौ बुधिवान ॥
 मम जिय बात तुम ऐसी गनौ । इह बालक जो है तुम तनौ ॥४९॥
 तको देऊ सुना मम तनी सेचा करौ बहु तुम तनी ॥
 सुनत बात बोले सब लोग । यह तो होइ न कोई जोग ॥५०॥
 जो हम ऐसो करते काज । जैसलमेर न तजते भाज ॥
 बात सुनत नृप रिस होइ । पकरि भगयो बालक सोइ ॥५१॥
 निज कन्या दीनी परनाइ । कछु न काहू तौ न बसाइ ॥
 बालक नृप अनीति पहिचानि । छोटि दियो भोजन अरु पानी ॥५२॥
 मात पिता देखौ जब नैन । तब ही मो जिय उपजै चैन ॥
 नही तो प्रान तजौ निसन्देह । कोन काज मेरो नृप गेह ॥५३॥
 तब नृप जिय सोच अपार । बाल करे अपजस सिर नाइ ॥
 तब बालक को सब परिवार । गढ़ लाए वाही परकार ॥५४॥
 धौर हितू जे हे उनि तने । तेऊ जाइ बसे गढ घने ॥
 घर हजार द्वै नीचै रहैं । जिन गुरु वचन प्रेम सो गहैं ॥५५॥
 तिन सब मिलि यह ठहराय । मेइ विसौँ अरु परम अभाव ॥
 कोऊ हमरो उनिकें नही जाइ । उनिको ह्यां कोऊ घरे ने पाइ ॥५६॥
 गुरु वचननि की छाडी टेक । कहा भयो बालक गयो एक ॥
 धनु अरु जीवन सब निर्जाड । धर्म तनौ मलि होइ अभाव ॥५७॥
 तातैं अरु हम सो नहि खेल । गुरु वचननि कीए सीसु खेल ॥
 इह विधि स्यो गयो काल वितीत । राज कास कियो अनिचित ॥५८॥

यह मन्त्रिनि मिलि कीयौ काज । थाप्यौ जन पद सिर राज ॥
 जब वह भयौ पहुमि की राह । निजनिं कु सब लियौ बुलाइ ॥५६॥
 वक्रोश देश बाधि के दयो । भ्राप तिहुन नगर राजा भयो ॥
 बाभन कुल प्रोहित थापियो । ती में पत्र तिनें लखि दयो ॥६०॥
 जाके व्याह पुत्र को होइ । लिखि देई बाभन को सोइ ॥
 रूपे के रूपैया सो पाच । एक अधिक नहीं तामे बांच ॥६१॥
 तब इह मनमे भ्रायी बात । बिछुरि कछु हमतें जात ॥
 एकाकी जिए ताहि मनाइ । जाति मिले भ्रानन्द अधिकाइ ॥६२॥
 तब नृप सहित सकल परिवार । भ्राए गढ़ नीचे सागार ॥
 बैठे जिनमन्दिर नृप भ्राहि । सकल पच तथा लए बुलाइ ॥६३॥
 विनती करी जोरि के हाथ । सोई करो जो हो इक साथ ॥
 बगसौं चूक जु हम में परी । बढो सोइ जो चित्त न घरी ॥६४॥
 भ्रब सब बरतो पूरख रीति । दुविधा मनतें करी बितति ॥
 तब सब पचनि कियो विचार । कीजे नहि नृप मान प्रहार ॥६५॥
 विनती करी राय सों सबै । भ्राग्या देहु भ्रब हम तबै ॥
 व्याहु काज नहीं नरेश । हठ करौ ती तज है देश ॥६६॥
 तब मन मे सौचियो नरेन्द्र । हठ के किये नहीं भ्रानन्द ॥
 मानि बात नूर गढ पें गये । जैसवाल दो विधि तब भये ॥६७॥
 उपरोतिया जु गढ पर रहे । तिरोतिया जे नीचे कहे ॥
 काज समे उपज्यो यह नाम । बोलि पठावै इहि विधि धाम ॥६८॥
 उपरोतिया थये गुरु देव । काष्ठा सध करें तसु सेव ॥
 मूल सध गुरु परम पुनीत । तरोतिया उर तिनि की प्रीति ॥६९॥
 इहि विधि बीत गयो कबु काल । राजा परघो जाइ जम जाल ॥
 राजधनी भयो भोरें भ्राय । तिहिनपाल नाम कहवाइ ॥७०॥
 तिति सब जैसावाल सु वष । तहाते काटि दिए भ्रवतंस ॥
 या भ्रन्तर उपजी एक भली । जम्बू स्वामि भ्रन्त केवली ॥७१॥
 मथुरा नगर निकट उद्यान । तहाँ प्रघटघो प्रभु केवल ज्ञान ॥
 ताबत सबकों लग लोइ । जुरि भ्राये मथुरा बन सोइ ॥७२॥
 छाडि तिहुवन गिरि उठि धाइयो । जेसवाल बाल भ्रानियो ॥
 प्रभु दरसन लइए नवि हंड । दुरमति करि मारि सत खण्ड ॥७३॥

जम्बू स्वामी भयो निरवान । पाई पचमगति भगवान ॥
 जेसबाल रहे तिहि ठाम । मन मान्यो जु करइ काम ॥७४॥
 कारज गाम गोत परनए । इह बिधि जेस गाल बरनए ॥
 उपरोतिमा गोत छतीस । तिरोतिमा गनि छह चालीस ॥७५॥

बोहरा

जेसबाल कुल बरनयो, जिहि बिधि उतपति तास ॥
 धन कवि धनने नाम को, करै विवर परगास ॥७६॥

कवि प्रशस्ति

चौपई

सरोतिमा तिन मे एक जाति । पूरण प्रश्न प्रताप सुव जानि ॥
 राजाखेरा को चउघरी । अर्गलपु' की धानु जु बरी ॥७६॥
 ताके पाच पुत्र अभिराम । धनुज लालचन्द तसु नाम ॥
 ता सुत हीय प्रीति जिनचन्द । सब कोऊ कहै बुलाखीचन्द ॥७७॥
 तामु हिरदे उपजी यह आनि । कीजे क्यो जिन कथा बखान ॥
 बुन्दावन सागरमल मित्र । जिनधर्मी अरु परम पवित्र ॥७८॥
 तिनिकी की आशां ले सिर घरी । बचनकोश की रचना करी ॥
 भाषा ग्रन्थ भयो अति भलो । वचनकोश नाम जु उजलौ ॥७९॥
 बिनसै तामु पढत मिष्यात । सांची लगै न परमत बात ॥
 क्षयोपशम को कारण यही । वचन कोस प्रगटयो यह मही ॥८०॥
 श्रवन करे रुचिसो नर नारि । लक्ष्मी होइ सुभग निरधार ॥
 लक्ष्मी होइ न राग आकुली । याकं पढै होइ अति भलो ॥८१॥
 जिनवानी की कीरति घनी । कहीं लौं बरनि सकै नहीं मुनि ॥
 सुनें तामु न पावै पार । मानि सकति जु बुधि बल सार ॥८२॥

बोहरा

सबत सत्रह सै बरस, ऊपरि सप्त रु तीस ।
 बेशाख अंधेरी अष्टमी, बार बरनऊ नीस ॥८३॥

बड्ढंभानपुर नगरी सुभग, तहां बुद्धि की जोस ।
 रक्ष्यो मुलाखीचन्द ने, भाषा वचन जु कोश ॥८४॥
 मुनी पई जो प्रीति सो, चूकहि लेइ सम्हारि ।
 लघु दीरघ तुक छन्द को, छमियो बतुर विचारि ॥८५॥

इति वचन कोष भाषा मुलाखीचन्द जेसवाल कृत विरचित
 सम्पूर्ण समाप्तं ॥

सम्मत १८५३ वर्ष मास चैत्र बदी ११
 मृगु बासरे ॥



कविवर बुलाकीदास

कविवर बुलाकीदास इस भाग के दूसरे कवि हैं जिनका यहाँ परिचय दिया जा रहा है। वे अपने समय के ऐसे कवि थे जिनकी कृतियाँ समाज में अत्यधिक लोकप्रिय बनीं रहीं। राजस्थान के जैन ग्रन्थालयों में उनके पाण्डवपुराण की पचासी पाठु लिपियाँ संग्रहीत हैं। काव्य सज्जना की प्रेरणा उन्हें अपनी माता से प्राप्त हुई थी। वैसे कवि का पूरा परिवार ही साहित्यिक रुचि वाला था। बुलाकीदास के समय में आगरा नगर कवियों का केन्द्र था। समाज द्वारा उस समय काव्य रचना करने वालों का खूब सम्मान किया जाता था। बुलाकीदास, हेमराज एवं स्वयं बुलाकीदास सभी के लिए आगरा नगर साहित्यिक केन्द्र था।

बुलाकीदास गोयल गोत्रीय अग्रवाल जैन थे। कसावर उनका बँक था। उनका मूल स्थान बयाना था। सवत् १७४७ में रचित अपनी प्रथम कृति प्रश्नोत्तर श्रावकाचार में कवि ने अपनी परिचय निम्न प्रकार दिया है—

बोहरा

अग्रवाल सुभ जात है, श्रावक कुल उत्पत्ति ।
 पैमचन्द नामी भली, देहि दान बहुनिष्ठ ॥१३॥
 धारे व्योक कसावरी, दया धर्म की खानि ॥
 जैन वचन हिरदै धरै, पैमचन्द सुरभान ॥१४॥
 अग्रज ताकी कज छवि, अवनदास परदीन ।
 ताके पुत सपुत्र है, मन्बसाल सुखलीन ॥१५॥
 मन्बसाल सुभ ललित तन, सेवत निज गुरुदेव ॥
 संकल श्रद्धि ताके निकट, भावत है स्वयमेव ॥१६॥

मन्बलाल यह गेहिनी, जैनुलदे सुभनाम ।
 ते दोऊ सुखस्यौ रमै, ज्यौं एकमनि घर स्याम ॥१७॥
 धर्मपुत्र तिनके भयो, ब्रह्मचर्य सुभ नाम ।
 तितिह जैनुलदे यो चहै, ज्यो प्राणी उरप्रान ॥

लेकिन इसी परिचय को प्रश्नोत्तर श्रावकाचार के सात वर्ष पश्चात् निबद्ध पाण्डव पुराण मे निम्न प्रकार दिया है—

नगर बयानो बहु बसै, मध्य देश विख्यात ।
 चाह चरन जह आचरै ज्यारि बखुँ बहु भाति ॥२४॥
 जहां न कोऊ दालदी, सब दीसै बनवान ।
 जप तप पूजा दान विधि, मानहिं जिनवर ध्यान ॥२५॥
 वैश्य वंश पुरुदेव नै, जो थाप्यो अभिराम ।
 तिसही बस तथा भवतरघौ, साहु अमरसी नाम ॥२६॥
 अग्रवाल सुभ जाति है, श्रावक कुल परवान ॥
 गोयल गोत सिरोमनी, व्यौक कसावर जान ॥२७॥
 धर्म रसी सो अमरसी, लछिमी कौ धावास ।
 नृपयन जाकौ धादरै, श्रीजिनन्द को दास ॥२८॥
 वैमचर्य ताकौ तनुज, सकल धर्म को धाम ।
 ताकौ पुत्र सपुत्र है, भवनवास अभिराम ॥२९॥
 उतन बयानी छोटि सो, नगर आगरै धाय ।
 धन्त पान अयोगतै, निवस्यौ सदन रचाय ॥३०॥
 बुधि निवास सो जानिए, अवन चरन कौ दास ।
 सत्य बचन के जोग सौं, बरतै नो निधि तास ॥३१॥
 गनिए सरिता सील की, वनिता ताके गेह ।
 नाम अनन्धी तास कौ, मानौं रति की देह ॥३२॥
 उपज्यौ ताके उदर तै, मन्बलाल गुन वृन्द ।
 दिन दिन तन जातुर्यता, बढै दीज ज्यौं चन्द ॥३३॥
 मात पिता सो पढन कौ, भेज दियो चटसाल ।
 सब विद्या तिन सीखि कै, धारी उर गुनमाल ॥३४॥

हेमराज पंडित वसै, तिसी भ्रामरे ठाइ ।
 गरत गोत गुन भ्रामली, सब पूजै तिस पाइ ॥३५॥
 जिन भ्रामम अनुसार तै, भाषा प्रबचनसार ।
 पंच अस्ति काया अपर, कीनें सुगम विचार ॥३६॥
 ऊपबी तार्क देहजा, जैनी नाम बिरुयात ।
 सील रूप गुन भ्रामली, प्रीति नीति की पाति ॥३७॥
 दीनी विद्या जनक नै, कीनी अति वितपन्न ।
 षडित जापै सीखिनै, घरनी तल में घन्न ॥३८॥

सञ्चया

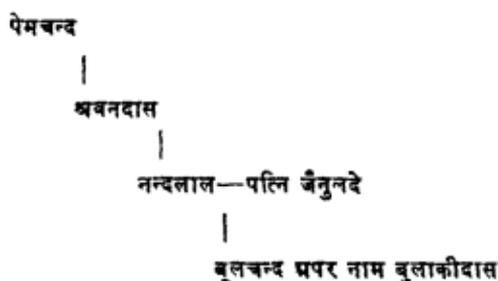
सुगुन की खानि किषी सुकृत की वानि,
 सुभ कीरति की दानि अपकीरति कृपान है ।
 स्वारथ विषनि परमारथ की राजधानी,
 रमाहु की रानी कियो जैनि जिनवानी है ।
 घरम घरनि भव भरम हरिनि किषी,
 असरनि सरनि कि जननि जहान है ।
 हेम सौ उपनि सील सागर रसनि,
 भनि दुरित दरनि सुर सरिता समान है ॥३९॥

दोहरा

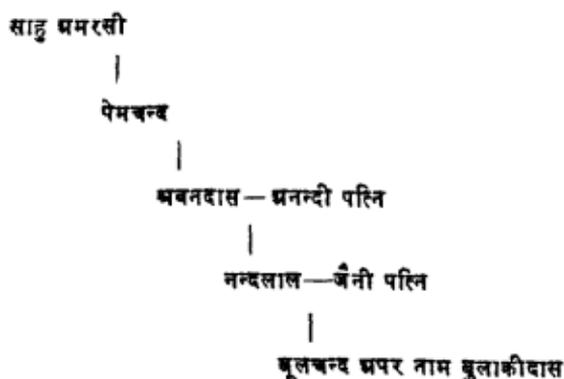
हेमराज ताहा जानि कै, नन्दलास गुन खानि ।
 वय समान वर देखि ही, पानग्रहण विधि ठानि ॥ ४०॥
 तब सासू नै प्रीति सौ मोतिन चौक पुराय ॥
 सीनी गृह सुभ नाम घरि, जैनुलदे इहि भाइ ॥४१॥
 नारि पुरुष सुख सौ रमै, चारै अन्तर प्रेम ।
 पूरव पुण्य फल भोगवै जय सलोचना जेम ॥४२॥
 अल्पबुधि तिनकै भयो, बूलचन्द सुख खानि ।
 तहि जैनुल दे यो चहै, ज्यो प्राणी निज प्राण ॥४३॥
 अन्नोदक सम्बन्ध तै भाइ इन्द्रपथ धानि ।
 मात पुत्र तिष्टे सही, भनै सुनै जिनवानि ॥४४॥

इस प्रकार कवि ने अपना वंश परिचय बहुत ही उत्तम शब्दों में दिया है। पाण्डव पुराण में कवि ने अपना वंश परिचय साहू अमरसी के नाम से प्रारम्भ किया है जबकि प्रश्नोत्तर आचकाचार में साहू अमरसी के पुत्र पेमचन्द से प्रारम्भ किया है। दोनों ग्रन्थों के आघार पर कवि का निम्न प्रकार वंश वृक्ष ठहरता है—

(१) प्रश्नोत्तर आचकाचार



(२) पाण्डवपुराण



इस प्रकार दोनों कृतियों में से पाण्डवपुराण में कवि ने अपने पूर्वजों में साहू अमरसी का नाम एव बुलाकीदास के पितामह श्वनदास की पत्नि का नाम का विशेष उल्लेख किया है। शेष नाम समान हैं।

बुलाकीदास के पूर्वज साहू अमरसी बयाना में रहते थे। उस समय बयाना मध्यदेश का भ्रम था। वहाँ चारों ही वर्ण वाले रहते थे सभी सम्पन्न दिसायी देते

वे । उनसे से दरिद्री कोई नहीं था । जैन परिवार थकड़ी सख्या मे वे जो जप, तप पूजा एवं दान चारो ही क्रियायें करने वाले थे । इन्ही जैनों मे साहु धमरसी थे जो वैश्य वंश मे उत्पन्न हुए थे जिसे प्रथम तीर्थंकर पुरुदेव ने स्थापित किया था । वे अग्रवाल थे गोयल उनका गोत्र था । तथा 'कसावर' उनका व्यौक था । धमरसी धर्मात्मा थे तथा जिनके घर मे लक्ष्मी का बास था । तत्कालीन राजा महाराजा भी साहु धमरसी का सम्मान करते थे । विशाल वैभव सम्पन्न होते हुए भी जिनेन्द्र भगवान के वे दृढ भक्त थे ।

साहु धमरसी के पुत्र का नाम पेमचन्द था । वह सुपुत्र था तथा अनेक गुणो की खान था । उसका जीवन पूरांत धार्मिक था । पेमचन्द के पुत्र श्वबनदास थे । श्वबनदास अपने पूर्वजो का नगर ब्याना छोडकर आगरा आकर रहने लगे । अपनी जन्मभूमि छोड़ने का मुख्य कारण धाजीविका उपाजन था इसलिए बुलाकीदास ने "अन्नपान संयोग तै" लिखा है लेकिन आगरा मे बसने के साथ ही उन्होंने वहा अपना मकान (सदन) भी बना लिया था । श्वबनदास बुद्धिमान थे तथा भगवान जिनेन्द्र देव के भक्त थे । वे पूरांतः सत्यभाषी थे इसलिए सभी ऋद्धिया उनके घर मे व्याप्त थी । उनकी पत्नि जिसका नाम अनन्दी था अत्यधिक सुन्दर तो थी ही साथ मे शील की खान थी । उन दोनो के पुत्र का नाम नन्दलाल था जो गुणो का भानो समूह ही था । कुछ बडा होने पर माता पिता ने उसे पढने चटसाल भेज दिया । वहा उसने सभी विद्याएं पढ ली ।

उसी आगरा नगर मे पंडित हेमराज रहते थे । वे गर्ग गोत्रीय अग्रवाल जैन थे । सारा नगर उनके चरणो का दास था । हेमराज ने उस समय तक 'प्रवचनसार' एवं 'पंचास्तिकाय' जैसे कठिन ग्रन्थो का हिन्दी भाषानुवाद कर दिया था । उसके घर मे एक पुत्री जैनी ने जन्म लिया जो रूप एव शील की खान थी । जैनी को उसके पिता हेमराज ने खूब पढाया और अत्यधिक व्युत्पन्न कर दिया । हेमराज ने नन्दलाल को उचित धर जान कर उसके साथ अपनी पुत्री जैनी का विवाह कर दिया । दोनो समान वय के थे । फिर क्या था चारो ओर प्रसन्नता छा गयी और जब जैनी ने वधू के रूप मे अपने श्वसुर श्वबनदास के घर मे प्रवेश किया तो उसकी पत्नि (सास) ने मोतियों का चौक पूरा । गृहप्रवेश के अवसर पर उसका नाम जैनुलदे रखा गया ।

नन्दलाल एवं जैनुलदे पति पत्नि के रूप में सुख से रहने लगे। दोनों में अत्यधिक प्रेम था तथा वे जयकुमार सुलोचना के रूप में सर्वथा विख्यात थे। प्रश्नोत्तर श्रावकाचार में इन्हें रुक्मणि और श्याम के रूप में लिखा है। उन्हीं के पुत्र के रूप में बूलचन्द ने जन्म लिया जो अपनी माता के लिए प्राणों से भी प्यारा था। कविवर बुलाकीदास का बचपन में बूलचन्द ही नाम था।

बूलचन्द बड़े हुए। शाजीविका के लिए भागरा से इन्द्रप्रस्थ (देहली) आ गये और जहानाबाद रहने लगे। उनकी माता जैनुलदे भी अपने पुत्र के साथ ही देहली आकर रहने लगी। वहाँ माता एवं पुत्र दोनों ही रहने लगे। ऐसा लयता है कवि के पिता का जल्दी ही स्वर्गवास हो गया था। अपने पुत्र के साथ जैनी का भकेला भाने का धर्म भी यही लगता है। वहीं पं० भरुणरत्न रहते थे जो सभी शास्त्रों में प्रवीण थे। संस्कृत प्राकृत के वे अछ्छे विद्वान् थे। वे ग्वालियर (गोपाचल) के रहने वाले थे। बुलाकीदास ने देहली में उन्हीं के पास ग्रन्थों का विशेष ज्ञान प्राप्त किया था।^१

बुलाकीदास संस्कृत के अछ्छे ज्ञाता थे। उन्हींने विवाह किया अथवा नहीं। इसके बारे में दोनों ही कृतियाँ मौन हैं। क्योंकि यदि उनका विवाह होता तो पत्नि का परिचय भी अवश्य दिया जाता। वे सम्भवतः अविवाहित ही रहे होंगे।

प्रथम रचना

बुलाकीदास ने सर्व प्रथम 'प्रश्नोत्तर श्रावकाचार' का हिन्दी में पद्यानुवाद किया। प्रश्नोत्तर श्रावकाचार मूल संस्कृत भाषा में निबद्ध है जो भट्टारक सकलकीर्ति की रचना है पद्यानुवाद करने के लिए कवि की माता जैनुलदे ने इच्छा व्यक्त की थी।

सब सुख देकें यौं कही, सुनो पुत्र सुभ बात।

प्रश्नोत्तर सुभ ग्रन्थ की, भाषा करहु विख्यात ॥२२॥

१. धनु हेत करि अस्स नै दयो जान को भेद।

तब सुबुद्धि घर में जगी करि कुबुद्धि तिम भेद ॥२२॥

जासी श्रावक भव्य सब, लहइ अरथ तत्काल ।
 धरै ते चित भाव धरि श्रावक धर्म बिसाल ॥२३॥
 जननी के ए वचन सुनि, लीने सीस चढाइ ।
 रचिबे कौ उद्दिम कीयो, धरि के मन वच काइ ॥२४॥

ग्रन्थ की रचना होने के पश्चात् जंजुलदे ने उसे पूर्ण रूप से सुना तथा अपने पुत्र को खूब आशीर्वाद दिया । उसे मानव जीवन को सार्थक करने वाला कार्य बतलाया । कवि ने यद्यपि मूलग्रन्थ का पद्यानुवाद किया है लेकिन व्रत विधान वर्णन अपनी बुद्धि के अनुसार किया है ।

प्रश्नोत्तरश्रावकाचार का रचनाकाल सबत् १७४७ वैशाख सुदी द्वितीया बुधवार है । कवि ने ग्रन्थ के तीन भाग जहानाबाद दिल्ली में तथा एक भाग पानीपत जलपथ) में पूर्ण किया था ।

सत्रहसै संताल मैं दूज सुदी वैशाख ।
 बुधवार भेरोहिनी, भयो समापत भाप ॥ १०४॥
 तीनि हिसे या ग्रन्थ के, भए जहानाबाद ।
 चौथाई जलपथ विषे, बीतराग परसाद ॥ १०५॥

द्वितीय रचना-पाण्डवपुराण

पानीपत में कवि कितने समय तक रहे इसका कहीं उल्लेख नहीं मिलता लेकिन कुछ वर्षों पश्चात् वे वापिस अपनी माता के साथ इन्द्रप्रस्थ देहली आगये और वही रहने लगे । वहाँ माता एक पुत्र का जीवन सुख एक शान्तिपूर्वक चलता

१. असी विधि यह ग्रन्थ सुभ, रच्यो बुलाकीदास ।
 सौ सब जंजुलबे सुन्धी, धारयो परम उल्हास ॥८८॥
 बहु असीस सुत कौ बई, बादयी धरम सनेह ।
 धन्य पुत्र तुष जन्म कौ, रच्यो ग्रन्थ सुभ एह ॥८९॥
 व्रत विधान बरने विविध, अपनी मति अनुसार ।
 बरनत भूलि परि जहाँ, कविकुल लेहु सबार ॥९०॥

रहा । प्रतिदिन शास्त्र स्वाध्याय एवं शास्त्र प्रवचन सुनने में समय व्यतीत होने लगा । उस समय माता ने अपने पुत्र के समक्ष पाण्डवपुराण की भाषा करने का निम्न शब्दों में प्रस्ताव रखा—

सब सुख दै तिन यौ कही, सुनौ पुत्र मो बात ।
 सुभ कारज तँ जग विषै, सुजस होय विख्यात ॥४७॥
 महापुरिष गुन गाइए, ताही तँ यह जानि ।
 दोइ लोक सुख दाइ है, सुमति सुकरिति धानि ॥४८॥
 सुनि सुभचन्द्र प्रतीत है, कठिन अर्थ गम्भीर ।
 जो पुराण पाण्डव महा, प्रगटै पण्डित धीर ॥४९॥
 ताको अरथ विचारि कै, भारथ भाषा नाम ।
 कथा पाहु सुत पचमी, कीज्यौ बहु अशिराम ॥५०॥
 सुगम अर्थ श्रावक सर्वै, भनै बनावै जाहि ।
 अँसी रचि कँ प्रथम ही, मोहि सुनावो ताहि ॥५१॥

बुलाकीदास की माता स्वयं विदुषी थी इसलिए उसने अपने पुत्र से भट्टारक शुभचन्द्र प्रणीत पाण्डवपुराण का हिन्दी में सुगम अर्थ लिखकर सर्वप्रथम उसे सुनाने के लिए कहा जिससे भविष्य में उसकी निरन्तर स्वाध्याय हो सके । बुलाकीदास की माता के प्रति अपार भक्ति थी इसलिए उसने तत्काल साहस बटोर करके लेखन कार्य प्रारम्भ कर दिया । जितने अर्थ की वह भाषा लिखता उतना ही अर्थ वह अपनी माता को सुना देता ।

इहि विधि भाषा भारती सुनौ जिनुलदे माइ ।
 धन्य धन्य सुत सौ कही, धर्म सनेह बढाइ ॥५॥

अन्त में ग्रन्थ समाप्ति की शुभ घड़ी प्रागयो और वह भी सर्वत १७५४ अष्टावह सुदी द्वितीय गुरुवार को पुष्य नक्षत्र की अर्द्धी । इस प्रकार प्रथम ग्रन्थ के ७ वर्ष पश्चात् कवि अपनी दूसरी कृति साहित्यक जगत् को भेट करने में सफल रहे । पाण्डव-पुराण को कवि ने महाभारत नाम से सम्बोधित किया है । कवि की यह कृति जैन क्षमाज में अत्यधिक लोकप्रिय बनी रही । इसकी पचासो पाण्डुलिपियां आज भी राजस्थान एवं अन्य प्रदेशों के ग्रन्थालयों में संग्रहीत हैं ।

सद्य कृतियां

बुलाकीदास की दो प्रमुख कृतियों के अतिरिक्त निम्न कृतियों के नाम और मिलते हैं—

१. प्रश्नोत्तररत्नमाला
२. वार्ता
३. चौबीसी

१. प्रश्नोत्तर रत्नमाला—दो पत्रों में निबद्ध यह कृति संस्कृत भाषा की है तथा जिसकी एक मात्र पाण्डुलिपि दि० जैन पार्ष्वनाथ मन्दिर बून्दी के शास्त्र भण्डार में वेष्टन संख्या ११० में संग्रहीत है। यह प्रति सुभाषित के रूप में है।^१

२. वार्ता—प्रश्नोत्तर श्रावकाचार में से संग्रहीत वार्ता के रूप में यह दि० जैन मन्दिर कोट्यो नेणवा के शास्त्र भण्डार के एक गुटके में उपलब्ध होती है। गुटका सम्वत् १८१४ का लिखा हुआ है।^२

इसका उल्लेख काशी नगरी की प्रचारिणी पत्रिका में हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों के पन्द्रहवें त्रैमासिक विवरण में हुआ है। पत्रिका के सम्पादकों को इसकी प्रति 'मांगरोव गुजर' के रहने वाले श्री दुर्गासिंह राजावत के पास प्राप्त हुई थी। मांगरोव का डाकखाना रुनकता तहसील किरावली जिला भागला है। इसमें १६६ अनुष्टुप छन्द है। भगवान् आदिनाथ की वन्दना में एक छन्द इस प्रकार है—

वन्दो प्रथम जिनेश को, दोष अठारह चुरी।

बेद नक्षत्र ग्रह औरष, गुन अनन्त भरी पुरी।

नमो करि फेरि सिद्धि को, अष्ट करम कीए छार।

सहत आठ गुन सो भई, करै भगत उषार।

१. राजस्थान में जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची पञ्चम भाग—पृष्ठ संख्या ६८८

२. वही पृष्ठ संख्या १०२२

३. देखिये भक्त काव्य और कवि, -डा० प्रेमचाना -पृष्ठ संख्या २६२-६३

भाषारज के पद एगो ठूरी अन्तर बति भाव ।

पंच अक्षरजा सिद्धि ते, भारी अवत के राव ।

कविवर बुलाकीदास ने इन रचनाओं के प्रतिरिक्त, अन्य कितनी रचनायें निबद्ध की थीं । इस सम्बन्ध में निश्चित जानकारी देना कठिन है । लेकिन सम्भव है धारवा, मैनपुरी, राजावेड़ा एवं इनके आसपास के नमरो में स्थित शास्त्र भण्डारों की पूरी खानबीन एवं खोज में बुलाकीदास की और भी रचनायें मिल जायें ।

वैसे मिश्रबन्धु विनोद में कवि की एक मात्र कृति पाण्डवपुराण का उल्लेख किया हुआ है ।^१ डा० नेमिचन्द्र शास्त्री ने भी "तीर्थंकर महावीर एवं उनकी आचार्य परम्परा" में बुलाकीदास के परिचय में केवल पाण्डव पुराण का ही उल्लेख किया है ।^२ परमानन्द जी ने "अध्यालो का जैन संस्कृति में योगदान" लेख में बुलाकीदास की दो प्रमुख रचनाओं प्रश्नोत्तरभावकाचार एवं पाण्डवपुराण का उल्लेख किया है ।^३

शेष जीवन

बुलाकीदास की जन्म तिथि के बारे में कोई उल्लेख नहीं मिलता । लेकिन उनका आत्यकाल धारवा में ही व्यतीत हुआ । शिक्षा भी यहीं हुई । ५० अक्षर रत्न जो देहली के पण्डित थे, इनके पास बुलाकीदास ने संस्कृत भाषा का अध्ययन किया तथा साथ ही में अपनी माता जैनुलदे से विशेष शिक्षा प्राप्त की थी । जैनधर्म एवं साहित्य की शिक्षा उनको पैतृक रूप में प्राप्त हुई । संवत् १७४५ से १७५४ का दस वर्ष का जीवन उनका साहित्यिक जीवन रहा जिसमें वे 'प्रश्नोत्तरभावकाचार' एवं 'पाण्डवपुराण' जैसे ग्रन्थों की रचना करने में सफल हुये । इसके पश्चात् वे कितने वर्षों तक जीवित रहे इस सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं मिलती । फिर भी बुलाकीदास का समय संवत् १७०० से १७६० तक माना जा सकता है ।

१. मिश्र बन्धु विनोद—पृष्ठ संख्या ३५०

२. तीर्थंकर महावीर एवं उनकी आचार्य परम्परा—चतुर्थ भाग—पृष्ठ २६३

३. देखिये अनेकान्त वर्ष २० फिरण—४ पृष्ठ १२३-१२४

बृलाकीदास के दो प्रमुख ग्रन्थों का अध्ययन

१. प्रश्नोत्तर श्रावकाचार

जैनधर्म में एकदेशधर्म एवं सर्वदेशधर्म नामसे धर्म पालन की दो प्रक्रियायें बतसायी गयी हैं। इनमें एकदेशधर्म श्रावको के लिये एवं सर्वदेशधर्म का पालन साधुओं के लिए कहा गया है।

प्रथम धर्म श्रावक करे कही जु एको देस ।

द्वितीय धर्म मुनिराज को, भाषित सर्वदेस ॥४१॥

सुगम धर्म श्रावक करे, धरं जु गृह को भार ॥

कठिन धर्म मुनिराज को, सहै परीसह सार ॥४०॥

बारह ग्रंथों के ग्रन्थों में सातवां भग उपासकाध्ययमांग है जो वृषभ गणधर द्वारा कहा गया है। ये भ्रादिनाथ स्वामी के गणधर थे। भ्रजितनाथ ने श्री श्रावकक्रिया का पूर्ण रूप से बखान किया। भ्रन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर एवं उनके पश्चात् होने वाले गौतम, सुधर्मा एवं जम्बुस्वामी ने श्रावक धर्म का विस्तार से बर्णन किया। इसके पश्चात् विष्णुकुमार मुनि ने द्वादशगण वारी का कथन किया। लेकिन धीरे धीरे आयु और बुद्धि दोनों में कमी आती गयी। आचार्य कुन्दकुन्द ने श्रावकधर्म का प्रतिपादन किया। उनके पश्चात् जिस रूप में श्रावक धर्म चलता रहा तथा श्रुत ज्ञान प्राप्त किया उसी रूप में आचार्य सकलकीर्ति ने श्रावक धर्म का बर्णन किया। मट्टारक सकलकीर्ति द्वारा प्रतिपादित श्रावक धर्म का बर्णन संस्कृत में था वह सामान्य बुद्धि वाले के लिए भी कठिन रहता था इसलिये उसे ही बृलचन्द भर्षति बृलाकीदास ने हिन्दी में छन्दोबद्ध किया।^१

१ घटी आयु अरु मेधा अग, घट्यो धर्म कारन तिहि संग ।

कुन्दकुन्द आचारज कही तासौ ज्ञान सराबग लह्यो ॥६४॥

कम सौ बस्यो असोई धर्म, कछुक जान्यो श्रुत को मर्म ।

सकलकीर्ति आचारज कही, श्रावक धर्म बु जासौ लह्यो ॥६५॥

सकलकीर्ति सुभ संस्कृत कही, कठिन धर्म बंधित ही लह्यो ।

लियो बु सोई अरथ बिचार, बृलचन्द मति घोरी सार ॥६६॥

सबं प्रथम कवि अपनी लघुता प्रकट करते हुये बर्ष की महिमा का वर्णन करना है—

मेव बिना नहिं बाबर हीहिं होइ मेव तब उपजे सोइ ।

धर्म बिना त्यों सुख भी नाहिं, सुख निवास इक धर्म जु आहिं ॥७४॥

बोहा

जैसे अजगरं मुख विषै नांही सुधा निवास ।

पाप कर्म के करन त्यों लहै न सुख की वास ॥५॥

प्रथम प्रभाव मे ८४ पद्य हैं । दूसरा प्रभाव अजितनाथ के स्तवन से प्रारम्भ किया गया है । इसके पश्चात् श्रावक निम्न प्रकार प्रश्न करता है—

तहा प्रश्न श्रावक करं, कहै ज स्वामी अनूप ।

कैसे दरसन पाइये, कहीयत कौन सरूप ॥५॥

इस प्रश्न का उत्तर निम्न प्रकार है—

सप्त तत्व की सद्गहन, कष्टौ जु दरसन एहु ।

भय जीव तातै प्रथम, तत्व ठीकता लेहु ॥६॥

इसके पश्चात् जीव अजीव आदि सात तत्वों मे से जीव तत्व का व्यवहार एवं निश्चय की दृष्टि से कथन किया गया है । अजीव द्रव्य के कथन मे पुद्गल धर्म, अधर्म आकाश और काल द्रव्य का सामान्य लक्षण कहने के पश्चात् आत्म द्रव्य का वर्णन किया है । पुण्य पाप का लक्षण जोड़ कर तो पदार्थों का वर्णन हो जाता है । पुण्य का कवि ने निम्न प्रकार कथन किया है—

पुन्य पदारथ सोइ, सुख दाइक सत्कार मैं ।

अर ऊरथ गति होइ, जो निम्मल भाव निबधइ ॥१०४॥

बुलाकीदास ने प्रभाव (अध्याय) समाप्ति पर निम्न प्रकार अपना परिचय दिया है—इति श्रीमन्महाशैलाभरण भूषित जैनी सुनु लाल बुलाकीदास विरचितायां प्रश्नोत्तरपासकाचार भाषाया सप्त-तत्व नव-पदार्थ प्रकरणो नाम द्वितीय-प्रभावः ।

तीसरे प्रभाव मे सम्पददर्शन के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है जिसका एक पद्य निम्न प्रकार है—

वीतराम जो देव है, धर्म अहिंसा रूप,

गुरु निग्रन्ध जु मानिए, यह सम्यक्त्व सरूप ॥३॥

अरहन्त के ४६ गुणों का विस्तृत वर्णन करने के पूर्व केवली के आहार का निषेध किया गया है। कवि ने अपने बूलचन्द के नाम का भी प्रयोग किया है।

छयालीस गुन ए कहे, पढी भव्य सुभ लीन ।

बूलचन्द यौ वीनवै, राखो कठ सदीव ॥५६॥१२॥

इस प्रकार तीसरे प्रभाव में देव, धर्म एवं गुरु के स्वरूप पर अच्छा प्रकाश डाला है जो १०२ पद्यों में समाप्त होता है।

चतुर्थ प्रभाव में अष्टांग सम्यग्दर्शन का ५६ पद्यों में वर्णन किया है। पञ्चम प्रभाव सुमति जिन की स्तुति से प्रारम्भ होता है। इसके पश्चात् सम्यग्दर्शन के आठ अंगों की कहानी को निम्न प्रकार विभाजित किया है—

पञ्चम प्रभाव— निशंकित अंग—अञ्जन तस्कर कथा— १४० पद्य

षष्ठम प्रभाव— नि.काक्षित अंग—अनन्तमतीकथा— पद्य ६४

सप्तमप्रभाव— निविचिकित्सा एवं
अमूढ दृष्टि अंग—उद्घापन राजा रेवती रानी कथा—पद्य ७३

अष्टम ,,— उपगूहन एवं स्थिति
करण अंग— जिनेन्द्र भक्त श्रेष्ठ
एवं वारिषेण मुनि— ७० पद्य

नवम ,,— वात्सल्य अंग— विष्णुकुमार मुनि— ७० पद्य

दशम ,,— प्रभवाना अंग— वष्यकुमार मुनि— ६४ पद्य

एकादश ,,— सम्यक्त्व महारम्य— अष्ट मदो का
वर्णन — ५३ पद्य

द्वादश ,,— अष्ट मूलगुण, सप्तव्यसन
अहिंसा अणुव्रत वर्णन— — १०० पद्य

अष्ट मूलगुणों को एक सर्वव्याप्य छन्द में निम्न प्रकार गिनाए हैं—

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८

मदिरा अमिष्ठ मधु वट फल पीपल जु ऊवर कठूवर औ पिलुवन जानियँ ।

इनको खाइ नर सोइ महापाप घर सुमति कौ नास कर कुमति जु मानियँ ।

तेरी कोरी इन घादि नीचकुल उतपात

अथवा नरक गति तिरजंघ ठानियै ।

इनको जु त्यागी तर सोइ मूल गुन

वाही कौ भुक्ति वर धामम बलानियै ।

इसी प्रभाव मे यमपाल चाडाल एवं धनश्री की कथा भी दी हुई है ।

त्रयोदश प्रभाव	सत्याणुव्रत एवं धनदेव सत्यधोष की कथा — ७४
चतुर्दश प्रभाव	अदत्तादान विरतिव्रत एवं महाराज कुमार श्री वारिषेण तापस कथा — ६१ पद्य
पञ्चदश प्रभाव	स्थूल ब्रह्मचर्याणुव्रत नीत्या रक्षक कथा — ७० पद्य
षोडशम प्रभाव	परिव्रह परिमाणव्रत जयकुमार कथा — ७७ पद्य
सत्रहवा प्रभाव	तीन गुणव्रतो का वर्णन — ६५ पद्य
अठारहवा प्रभाव	चार शिक्षाव्रतो मे से देशावकाशिक एव सामाइक व्रत का वर्णन — १२० पद्य
उगनीसवा प्रभाव	प्रोषधोपवास व्रत वर्णन — ३२ पद्य
बीसवा प्रभाव	चतुर्विधदान वर्णन (वैय्यवृत्त) — १४७ पद्य
इक्कीसवा प्रभाव	चतुर्विधदान कथा, जिन पूजा कथा श्री षेण, वृषभसेन आदि कथा — ३६५ पद्य

इस प्रभाव मे पूजा पाठ भी दिया हुआ है ।

बाईसवा प्रभाव	सल्लेखना, ग्यारह प्रतिमा वर्णन में से सामायिक प्रतिमा तक वर्णन — ६६ पद्य
तेईसवा प्रभाव	ब्रह्मचर्य प्रतिमा तक वर्णन — ८४ पद्य
चौबीसवा प्रभाव	शेष दो प्रतिमाओं का वर्णन एव ग्रन्थकार प्रशस्ति — १०५ पद्य

ग्यारह प्रतिमाओं का वर्णन बुलाकीदास ने आचार्य समन्तभद्र के रत्नकाण्ड
श्रावकाचार के अनुसार लिखा है ऐसा उसने संकेत किया है—

रतनकरंडक ग्रन्थ सी, देखि लिखो यह बात ।

वचन समन्त जु भद्र के, जानौं सत्य विख्यात ॥८१॥

ग्रन्थ के अन्त में कवि ने अपने गुरु धरुणरतन, तत्कालीन बादशाह धीरगजेव तथा अपनी माता जैनुलदे के प्रति आभार व्यक्त किया है जिनके कारण वह ग्रन्थ रचना में सफल हो सका।

नगर जहानाबाद में, साहिव धीरगवाहि ।
 विधिना तिस छत्तर दियौ, रहै प्रजा सुख मांहि ॥६४॥
 ताके राज सुचैन मैं, बन्यौ ग्रन्थ यह सार ।
 ईति भीति व्यापै नहीं, यह उनकी उपहार ॥६५॥
 धन्य जु माता जैनुलदे, जिन बनवायो ग्रन्थ ।
 जाके सुभ सहाइ तै, सुगम भयो सिव पंथ ॥६६॥
 धरुण रतन गुरु धन्य है, जिनके बचन प्रभाव ।
 कठिन अर्थ भाषा शय्यौ, लख्यौ सब्द अरथाव ॥६७॥

× × × × × × ×

गोयल गीत सिरोमनी, नन्दलाल भ्रमलान ।

जस प्रताप प्रगटौ सदा, जब लग ससि अरु भान ॥१०३॥

पाण्डव पुराण

बुलाकीदास की यह सबसे बड़ी विशालकाय कृति है। पाण्डवपुराण की मूल कृति भट्टारक शुभचन्द्र द्वारा संस्कृत में संवत् १६०८ में निबद्ध की गयी थी उसी के आधार पर पाण्डव पुराण की हिन्दी पद्य कृति बुलाकीदास द्वारा निबद्ध की गयी पाण्डवपुराण को अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई है इसलिये राजस्वान के कितने ही शास्त्र भण्डारों में इसकी पाण्डुलिपिया सग्रहीत है।

पाण्डवपुराण का प्रारम्भ सर्वेश नमस्कार से किया है। अतिम श्रुत केवली भद्रबाहु का स्मरण करते हुए आचार्य कुन्दकुन्द का निम्न शब्दों में गुणगान किया गया है—

१ प्रश्नोत्तर श्रावकाचार भाषा - पद्य संख्या ११० - आकार १० + ५
 इन्च। ग्रन्थाग्रन्थश्लोक संख्या २५७२ - लेखन काल - स० १८०७ वर्ष श्रावण
 वदि ६ लिखंत सुधाराय ब्राह्मण । लिखायत खुलालचन्द्र छाबड़ा पठन।र्थ
 हेतवे । शास्त्र भण्डार दि० जैन बड़ा तेरापंथी मन्दिर जयपुर ।

ब्राह्मी जिन पाषाण की, उज्ज्वयन्त गिरसीस ।

या कलि मे वादित करी, कुन्वकुन्द मुनि ईस ॥१६॥

इसके पश्चात् आचार्य समन्तभद्र, पूज्यपाद, अकलंक स्वामी, आचार्य जिनसेन गुणभद्र एवं अपने गुरु अक्षररत्न का गुणानुवाद एवं उनके सुकृत्यों का स्मरण किया गया है । वर्णन अच्छा एवं ऐतिहासिक प्रतीत होता है इसलिए उसे अधिकल रूप से यहा दिया जा रहा है—

शेषायम जिन स्तवन सौ प्रगट सुरायम कीन ।

समंतभद्र भद्रार्थमय, गुन ग्याक गुन लीन ॥१७॥

जिन वारधि व्याकरण की, लखी पार मुनिराय ।

पूज्यपाद निति पूज्य पद, पूजो मन वचकाय ॥१८॥

नि कलंक अकलक जस, सकल शास्त्र विद जेन ।

मायादेवी ताडिता, कुम्भयिता पादेन ॥१९॥

चिरजीव जिनसेन जति, जाकी जस जग माहि ।

जिन पुरान पुरदेव की, वरन्यो बन्दो ताहि ॥२०॥

पुरणाद्रि परकासकौ, सूर्यापित है जोइ ।

प्रभवत गुणभद्र गुरु भूतल नूधन सोइ ॥२१॥

अक्षर रत्न गुरु चरन जुग, सरन गहौं कर जोर ।

वरन ज्ञान के करन कौं, तरुण किरणि जिम भोर ॥२२॥

इसके पश्चात् कवि ने अपने वंश का परिचय दिया है जिसको पूर्व में उद्धृत किया जा चुका है । कवि की माता द्वारा पाण्डवपुराण भाषा लिखने, कवि द्वारा अपनी लघुता प्रदर्शित करके । वक्ता एवं श्रोता एवं कथा के लक्षण का वर्णन किया गया है । कथा का लक्षण निम्न प्रकार कहा गया है—

कथन रूप कहिए कथा, सो है दोइ प्रकार ।

सुकथा जो जिन कही, विकथा और असार ॥२५॥

अरम सरीरी जे महा, तिनके चरिस विचित्र ।

पुण्यहेत जहा वर्णयि, सो है कथा पवित्र ॥२६॥

पुन्यपाप फल बणिये, बरने व्रत तप दान ।
 द्रव्य क्षेत्र फुनि तीर्थ सुभ, धरु सवेग बलान ।
 जो स्वतत्व की थापि कै, दूरि करै परतत्व ।
 ग्यानकथा सो जानिये, जहा बरनै एकत्व ॥८७॥

जम्बूद्वीप में भरतक्षेत्र और उसमें प्रायं खण्ड, बहा के राजा सिद्धार्थ एवं रानी त्रिशला के यहा वर्धमान तीर्थकर का जन्म हुआ। वर्धमान ने साधु दीक्षा लेने पश्चात् केवल प्राप्त किया और गौतम गणधर के साथ जब उनका समवसरण मगध की राजधानी में आया। तब राजा श्रेणिक प्रभु की शरण में गया और उनकी अमृतवर्षा युक्त दिव्य ध्वनि को सुना। गौर प्रभु बहू का समवसरण देश के विभिन्न भागों में गया कवि ने उनके नाम निम्न प्रकार गिनाए हैं—

अग बग कुरुजगल ठए, कोमल और कलिये गए ।
 महाराठ सोरठ कसमीर, पराभीर कौकण गम्भीर ॥१८॥
 मेदपाट भोटक करनाट, कर्ण कोस मालवै बैराठ ।
 इन प्रादिक जे आरज देश, तहा जिननाथ कीयी परवेश ॥३९॥

भगवान महावीर का जब समसरण राजगृही नगरी के वैभारगिर पर आया महाराजा श्रेणिक ने महारानी चेलना सहित उनकी वन्दना की और अपने स्थान पर बैठने के पश्चात् भगवान से निम्न प्रकार निवेदन किया—

एकज विनती तुम सा कहू पाण्डव चरित सुन्दो मैं बहू ।
 पाठव पाच जगत विख्यात, कौन वश उपजे किहू भाति ॥१२॥
 कुरु अन्वय किस जुय मैं भया, के के नर तिस बसहि ठए ॥
 कौन कौन तीर्थकर भए, कौन कौन सुभचक्री ठए ।
 कुरुवसहि बरनौ इहि भाय, ज्यो मेरो ससय सब जाय ॥१४॥

उक्त कथा जानने के अतिरिक्त श्रेणिक ने और भी अनेक प्रश्न पूछे जिनका सम्बन्ध पाण्डव कथा से ही था। कवि ने उन सबका विस्तृत वर्णन किया है।

कवि ने भोग भूमि के पश्चात् अन्तिम कुलकर नाभि से वर्णन प्रारम्भ किया है। षट्पुत्रकाल के पूर्व का जीवन, नाभिराजा के प्रथम पुत्र तीर्थकर ऋषभदेव के गृहत्याग एव जयकुमार द्वारा सम्राट भरत के सेनापति का पद ग्रहण तक वर्णन किया गया है। इस प्रभाव में १४६ पद्य हैं।

तृतीय प्रभाव में सुलोचना उत्पत्ति, स्वयंबर रचना, जयकुमार के मले में माला डालना, सम्राट भरत के पुत्र भर्ककीर्ति द्वारा विरोध एवं जयकुमार के साथ युद्ध का अन्धा वर्णन किया गया है ।

धनुष कानं लगी खँचि सुधारे तीरही,
 तिनके भ्रानन तीक्ष्ण अरि तन चीरही ।
 बार पार सर निकसै उर कौं भेदि कै,
 केइक मारहि दड सुदडहि छेदि कै ॥११॥
 केइक खरगहि खरग भुराभर वीतही,
 परहि मुंड कर धरनि इहर नरीतिही ।
 कषच टूटि जब जांहि कचाकच ह्वँ परै,
 सूरन के कर शस्त्र सु लरि लरियो मरै ॥१२॥

युद्ध में किसी की भी विजय नहीं होने, भर्ककीर्ति के समझाने पर युद्ध की समाप्ति, जयकुमार सुलोचना विवाह एवं भगवान ऋषभदेव के फैलाश से निर्वाण होने का वर्णन मिलता है ।

चतुर्थ प्रभाव में कुरुवश की उत्पत्ति एवं उस वंश में हाने वाले राजाओं का संक्षिप्त वर्णन किया गया है । अनन्तवीर्य राजा के कुरु पुत्र से कुरुवश की उत्पत्ति मानी गयी है—

अब धनन वीरज नृपति, राज करपी बहु काल ।
 तिनही के सुत कुरु भए, सोभित उर गुनमाल ॥३॥
 भए चद कुरु वंस नभ, फुनि उपजे कुरुचद ।
 तिनके तनय सुभकरो, नृप गन मैं अरविद ॥४॥

इस ही वंश में १६ वें तीर्थंकर सातिनाथ हुए । जो चक्रवर्ति भी थे । उन्हीं का ६ पूर्व भवों का वर्णन इस प्रभाव में किया गया है ।

तिन पीछे तहाँ नृप भए, विश्वसेन विख्यात ।
 ताके सुत जिन साति की, वरनी अरित सुभाति ॥१२॥

इसी वर्णन में कन्या का विवाह कैसे वर के साथ करना चाहिये इसका निम्न प्रकार कथन किया है—

१ २ ३ ४ ५ ६
जाति धरोगी वय समान, सील श्रुती वधु जान ।
७ ८ ९
लखि पछय परवारए, नव गुण बरहि बखान ॥२६॥

पञ्चम प्रभाव

एक बार ईसान स्वर्ग की इन्द्र सभा में बज्जायुध राजा की प्रशंसा होने लगी । वहाँ कहा जाने लगा कि उसके समान इस समय कोई सम्यक्त्वी नहीं हैं । इसी बात को चित्रचूल देवता ने सुन लिया । वह बज्जायुध की प्रशंसा को सहन नहीं कर सका और उससे वाद करने लिए वहाँ धा गया ।

चित्रचूल एकात नय, अनेकात नर राइ ।
इनकीं बाद बखानिये, बातें रूप बनाइ ॥२१॥

इसके पश्चात् कवि ने अनेकात एव एकात चर्चा को गद्य में लिखा है । इसका एक उदाहरण निम्न प्रकार है—

प्रथम ही सुरु बोली — हे राजन् जीवादिक सप्त तत्व नव पदार्थ के विचार विषै तुम पडित ही । तातें तुम कहौ । पर्याय पर्याय इ विषै भेद है कि नाही । जो तुम कहौने की पर्यायी तै पर्याय भिन्न है तो वस्तु की अभाव होइगी ।

राजा बज्जायुध ने एकान्तवाद कि विरोध में अपना पक्ष बहुत ही सुन्दर शब्दों में रखा । कवि ने पञ्चास्तिकाय में से कुछ गाथाओं को उद्धृत किया है राजा बज्जायुध की बातों से अन्त में वह देव अत्यधिक प्रभावित हुआ और निम्न प्रकार अपनी बात कहकर स्वर्ग चला गया —

जैसा स्वर्ग लोक विषै इन्द्र महाराज्य न कहा था तै सही है । यामें सवेह नांही । भ्रसैं निसदेह सुरु भया । कहा की बज्जायुध तुम धन्य हौ शुद्ध सम्यगदृष्टी ही । (पृष्ठ ६६)

शेमकर अपने पुत्र बज्जायुध को राज्य सौंपकर स्वयं दीक्षित हो गया । बज्जायुध चक्रवर्ति राजा था । बज्जायुध के पश्चात् सहलायुध राजा बना । इसके पश्चात् एक के पीछे दूसरे राजा बनते गये । अन्त में हस्तिनापुर के राजा विश्वसेन हुए उनकी रानी ऐरावती थी । उसी के गर्भ से १६ वें तीर्थंकर शान्तिनाथ का जन्म हुआ । जब वे युवा हुए तो विश्वसेन ने उनको राज्यभार सौंप कर स्वयं वीराग्य धारण कर लिया । वे चक्रवर्ति सम्राट् थे । दीर्घकाल तक राज्य सम्पदा भोगने के

पश्चात् अपने ही दो रूप दिलने के कारण वैराग्य हो गया और अन्त में सम्मोद-
शिलर से निर्वाण प्राप्त किया ।

षष्ठ प्रभाव में १७ वें तीर्थंकर कुंशुनाथ एव सप्तम प्रभाव में अरनाथ तीर्थंकर का जीवन चरित बखित है । दोनों ही प्रभाव छोटे छोटे हैं ।

अष्टम प्रभाव में तीर्थंकर 'अरनाथ' के चार पुत्रों से कथा प्रारम्भ होती है ।^१

इसी बीच ऊज्जयिनी के राजा श्री वर्मा, उसके चार मन्त्रियों एवं अर्क-
पनाचार्य संघ की कहानी प्रारम्भ होती है । मुनिसंघ के एक मुनि श्रुत सागर द्वारा वादविवाद में जीतकर अने के साथ कथा में मोड़ आता है ।

सातवीं मुनियों पर उपसर्ग, उपसर्ग निवारण हेतु विष्णुकुमार मुनि द्वारा बलि राजा से तीन कदम भूमि मांगना, और अर्कपनाचार्य आदि ७०० मुनियों पर से उपसर्ग दूर होने की कथा चलती है । जैनधर्म में रक्षाबंधन पर्व का इसीलिए महत्त्व है कि इस दिन ७०० मुनियों की विष्णुकुमार मुनि द्वारा जीवन रक्षा हुई थी ।

इसी प्रभाव में गंगासुत गंगेय द्वारा अपने पिता की इच्छा पूर्ति के लिए श्रीवर कन्या गुणवति को लाया जाता है । राजपुर के राजा व्यास के तीन पुत्र छतराष्ट्र, पांडु, एवं विदुर होते हैं । इसके पश्चात् हरिवंश की कथा प्रारम्भ होती है । छतराष्ट्र के भाई पांडु द्वारा कुन्ती से समागम के प्रस्ताव का कवि ने अछछा वर्णन किया है । कुन्ती कुंवारी थी पांडु द्वारा प्रेमपाश में फसने के कारण वह गर्भवती हो गयी । जब माता पिता को मालूम पड़ा तो वे बहुत क्रुपित हुए । कुन्ती के पुत्र हुआ । इसका नाम करण रखा गया लेकिन लोक लज्जा से अभयभीत होकर वे उस बालक को मन्जूसा में रखकर नदी में बहा दिया । वह बहता हुआ चम्पापुर के तट पर पहुँच गया जहाँ के राजा द्वारा पुत्र के रूप में पाला गया ।

१. अर सुत श्री अरविद नृप, तार्क पुत्र सुचार ।

अपने दूर सुचारते, तार्क भूप सुत्तार ॥२॥

नवम प्रभाव

प्रारम्भ मे कवि ने कर्ण की उत्पत्ति पर एक अंग कहा है—

सुनि श्रेणिक ससार मैं, महामूढ है लोग ।

असे कर्णकुमार की, कर्णज कहत अजोग ॥२॥

कर्ण कर्ण बातें चली, जनम धर्म पुर ग्राम ।

तातै अन्धक वृष्टि नृप, कर्ण धरधौ तिस नाम ॥३॥

खाज उठी राधा श्रवन, बालक लेती वार ।

तातै राजा भानु नै, भाष्यो कर्णकुमार ॥४॥

कर्ण भवो जो कर्ण तै, तौ यह सारि सिष्टि ।

कयो नहि उपजै कर्ण तै, तातै भूठ अनिष्ट ॥५॥

कर्ण नासिका नर भए, देखे सुने न कोइ ।

तातै उत्तपति कर्ण की, कर्ण विषै किम होइ ॥६॥

इसके पश्चात् पाण्डु एवं कुन्ती के साथ विवाह का कवि ने बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है । बरात का चढना, बरतियो द्वारा नाचगान, नगर की सुन्दरियो द्वारा पाण्डु को देखने की इच्छा, आदि का अछ्छा वर्णन किया है । पाण्डु का कुन्ती के साथ विवाह सपन हो गया । पाण्डु की दूसरी पत्नि का नाम मद्गी था । कुन्ती से युधिष्ठिर, भीम एव अर्जुन तथा मद्गी से नकुल एव सहदेव पुत्र हुए । पृतराष्ट्र की पत्नि का नाम गधारी था । जब वह सर्वप्रथम गर्भवती हुई तो उसे सौ पुत्रो की माता होने का आशीर्वाद प्राप्त हुआ ।

पूरन मास बितैते जबै, सुख सौ तनुज अन्यो तिन तबै ।

तब बढवारनि नाइन घाइ, ताहि असीस दई इहि भाइ ॥२०॥

सत सुत जनियो सुख खानि, चिरजीयो गघारि रांनि ।

जिहि मग जुद्ध सु दुखतै होइ, तातै भनि दूर जेघन सोइ ॥२१॥

पांचो पाढवो एव १०० कौरवो को द्रोणाचार्य ने अनुविधा सिखलायी ।

दशम प्रभाव

एक समय पाण्डु एव मद्गी वन भ्रमण को गये । वन की सुन्दरता, एकाकी-पन एव प्राकृतिक छटा को देखकर वह कामातुर हो गया और मद्गी को लेकर कुरमुट की ओर चला । वहा उसने एक मृग एव मृगी को काम वासना युक्त देख

कर अकारण उसे अपने ही बाण से मार बिराया । अकारण ही मारने से आकाश से आकाश बाणही हुई जिसमें उसे भला बुरा कहा और इस कार्य को निन्दनीय ठहराया । वही पर विहार करते हुए एक निर्ग्रन्थ मुनि आये उन्होंने भी पाण्डु एव मद्गी को संसार की असारता एवं भोगो की निस्सारता पर प्रवचन दिया ।

इहि विधि मुनि कै वचन सुनि, पांडु भयो भयबंत ।

जीवन संयम तद्धित सम, जानि छिनक छय संत ॥७॥

तब बित मैं थिरता घरी, बन्दे मुनिवर पाइ ।

अधिक भगति करि श्रुति करत, चलयी नगर को राइ ॥८॥

पांडु राजा नगर मे गये । अपने पूरे परिवार को एकत्रित किया और सबको काम विषयो की एव जयत की असारता तथा मृत्यु की अनिश्चयता पर प्रकाश डाला । अपने भाई घृतराष्ट्र को बुलाकर अपने पाचो पुत्रो को सौंप दिया और अपने पुत्रो के समान उनसे व्यवहार करने की । प्राथना की कुन्ती से पुत्रो को सम्हालने के लिए कहा । राज्य पाट त्याग कर गगा नदी के किनारे जाकर जिन दीक्षा धारण करली और यावत् जीवन आहार न लेने की प्रतिज्ञा ले ली, मद्गी रानी ने भी वैसे ही किया और दोनों ने मरकर प्रथम स्वर्ग में प्राप्त किया ।

एक दिन महाराज घृतराष्ट्र राज्य करते हुए वन भ्रमण को चले । वहाँ की एक शिला पर विपुलमती मुनि ध्यानस्थ थे । राजा को मुनि ने उपदेशाभूत पान कराया । इसके पश्चात् घृतराष्ट्र ने मुनि से निम्न प्रकार प्रश्न किये—

ऐसी सुनि कै पूछी राइ, हे स्वामी कहीए समझाइ ।

मेरे सुत अति पांडव साज, इनमें कौन लहैगौ राज ॥९७॥

× × × × ×

पांडव पंच महाबल धनी, हूँ है कैसी धिति उन तनी ॥९१॥

ए मेरे सुत पृथिवी माहि, छत्रपति हूँ है अकि नांहि ।

भगव देस फुनि सोमित महा, राजछही पुरि तामैं ।

जरासंघ नृप तामैं महा, प्रति केशव सों अन्तिम कहा ।

उक्त प्रश्नो के अतिरिक्त घृतराष्ट्र ने और भी प्रश्न पूछे । मुनिराज ने घृतराष्ट्र के प्रश्नों का निम्न प्रकार उत्तर दिया—

भीसी मुनि मुनि बोले सही, हे राजा भव सुनीये यही ।
पाडव ग्रह दुरजोधन भादि, इनमें हूँ है अति हि विबाद ।

बोहा

एक राज कं कारन हूँ है इनहि विरुद्ध ।
तेरे सुत कुरुखेत मे, मरि हूँ करि कं जुद्ध ॥६८॥
दुह उरके सुभट जहां, मरहि परस्पर धाइ ।
असे रण में पाडवा, जीति लहेगे राइ ॥६९॥
हति कं तेरे सुतन कौ, गहि गजपुर राज ।
पूरव पुन्य प्रताप तै, लहि हे सब सुख साज ॥७०॥
जरासंध की बात तुम, जो पूछी यह और ।
सो नारइन हाथ तै, मरि हूँ ताही ठोर ॥७१॥

ग्यारहवां प्रभाव

मुनि की बात सुनकर राजा घृतराष्ट्र भी जगत से उदासीन हो गये । और युधिष्ठिर को राजा बना कर स्वयं ने जिनदीक्षा धारण कर ली । द्रोणाचार्य से पाच पाण्डवों एवं कौरवों ने धनुर्विद्या सिखी । लेकिन इस विद्या में पाण्डव प्रवीण थे । पांडवों एवं कौरवों में धीरे धीरे विरोध बढ़ने लगा । इस विरोध को शान्त करने के लिए युधिष्ठिर ने आधा आधा राज्य बांट दिया । लेकिन इसमें भी शान्ति नहीं मिली । जब भी कोई प्रसंग आता कौरव उपद्रव किये बिना नहीं मानते । फिर भी वे भीम एवं अर्जुन की बराबरी नहीं कर सकते थे । एक बार भीम को का जहर खिला दिया लेकिन भीम अपने पुण्योदय से बच गया । एक बार धनुर्विद्या की परिक्षा में अर्जुन ने पक्षी के आँखों पर तीर चलाकर अपनी विद्या की प्रशंसा प्राप्त की । शब्दवेधी बाण चलाने में भी अर्जुन सबसे आगे रहे ।

बारहवां प्रभाव

इसके पश्चात् राजा श्रेणिक द्वारा यादवों की कथा कहने की प्रार्थना करने के कारण कवि ने इस प्रभाव में यादव कथा कही है । यादव वंश में वसुदेव शिरोमणी थे । वसुदेव के बलभद्र पंदा हुए । एक बार जरासंध ने घोषणा की जो सिंहरथ को बाधकर ले आवेगा उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह करेगा । वसुदेव सेना लेकर

घागे गया और सिधरथ को बांधकर ले आया। इससे जरासथ बहुत प्रसन्न हुआ। तीर्थंकर नेमिनाथ के आगमन को जानकर कुबेर ने इन्द्र की आज्ञा से द्वाारावती नगरी को बसाया। वहा का राजा समुद्रविजय था। उसकी रानी का नाम सिवादेवी था। वह अत्यधिक सुन्दर एवं रूपवती थी। उसने सोलह स्वप्न देखे जिनके फल पूछने वह शीघ्र ही तीर्थंकर की माता बनने वाली हूँ ऐसा बतलाया। माता की श्री ह्रीं प्रति प्रादि सोलह देवियां सेवा करने लगी तथा विभिन्न प्रकार से माता को प्रसन्न रखने लगी। सावन सुदी षष्ठी के दिन नेमिनाथ का जन्म हुआ। स्वर्ग से इन्द्र ने आकर तीर्थंकर का जन्माभिवेक मनाया। सारे लोक में आनन्द छा गया।

तेरहवां प्रभाव

इस प्रभाव में श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मणि हरण एवं विवाह, शिशुपाल वध, प्रद्युम्न जन्म एवं हरण प्रादि की सशिक्षित कथा के पश्चात् फिर कौरव पांडवों की कथा आगे चलती है। युधिष्ठिर द्वारा आधा आधा राज्य बांटने के पश्चात् कौरव सन्तुष्ट नहीं हुये और उन्होंने पूरे राज्य के १०५ टुकड़े करने पर जोर दिया। इस प्रस्ताव का पाण्डवों ने घोर विरोध किया। कौरवों ने पाण्डवों को मारने के लिए लाक्षागृह बनवाया लेकिन उनका कुंभ भी सफलता नहीं मिली। सभी पांडवपुत्र पूर्व निर्मित गुप्त मार्ग से निकल गये। पांचों पाण्डव नाव में बैठकर गंगा पार करने लगे। लेकिन बीच में नाव रुक गयी। भीष्म ने कहा कि गंगा में रहने वाली तुंडी देवी नर बलि चाहती है। सब फिर विपत्ति में फस गये। युधिष्ठिर ने अपना बलिदान देना चाहा लेकिन भीम गंगा में क्रुद पडा और तुंडी को मार कर उसे अपने वश में कर लिया। और अन्त में सभी सकुशल गंगा पार उतर गये। कवि द्वारा पूरा प्रभाव ही रोमाञ्चक ढंग से निबद्ध किया गया है।

चौदहवां प्रभाव

सभी पाण्डव प्रछिन्न वेश में कोशिकपुर पहुँचे। वहा से त्रिशू गपत्तन पहुँचे। वहा के राजा के १० कन्यायें थी। तथा एक कन्या नगर सेठ के भी, एक निमित्त ज्ञानी के अनुसार सभी का विवाह पाण्डवपुत्रों के साथ होना था। इसलिए जब पांडव वहां पहुँचे तो चारों और प्रसन्नता छा गयी एवं सभी ग्यारह कन्याओं का विवाह युधिष्ठिर के साथ ही गया।

पन्द्रहवाँ प्रभाव

सभी पाँचों पांडव अपनी माता कुन्ती के साथ भागे बढ़ते गये। मार्ग में जब भीम जल लेने गया तो उसे वहा खगपति मिला। इसके साथ एक कन्या थी जो हिडम्बी की पुत्री थी। एक भयानक वन में भीम ने एक राक्षस पर विजय प्राप्त की। वही पर एक बणिक था। सध्या होने पर वह रोने लगा। पूछने पर मालूम हुआ कि बक राजा के भक्षण के लिए भ्राज उसके बालक का नम्बरहूँ। यह सुन कर भीम को दया भायी और उसने बालक के स्थान पर अपने भ्राप का बलिदान देने की तैयारी की भीम ने बक राजा को लडाई में हराकर उसे भविष्य में किसी जीव की हिंसा न करने की प्रतिज्ञा करवायी। पाँचों पाण्डव भागे गये मार्ग में भ्राणे वाले सभी जिन चैत्यालयों की वन्दना करते गये। फिर वे चलकर चम्पापुरी पहुँचे। कर्ण वहा का राजा था। पांडव गए वहाँ काफ़ी समय तक रहे। वही पर भीम ने एक मतवाले हाथी को वश में किया। फिर वे ब्राह्मण के वेश में भागे बढ़ते गये। एक दिन जब भीम ब्राह्मण वेश में भिक्षा मागने राजा के वहाँ गया तो राजा ने भिक्षा में उसे अपनी कन्या दे दी।

सोलहवाँ प्रभाव

पाचों पांडवों ने दक्षिण में भी खूब भ्रमण किया। इसके पश्चात् वे पुनः गजपुर को आगये। वे सभी विप्र वेश में धूमते थे। वहाँ के राजा द्रुपद थे तथा उसकी पुत्री का नाम द्रौपदी था। जिसकी सुन्दरता का वर्णन करना सहज नहीं था। उसके विवाह के लिए स्वयंवर रचा गया जिसमें राजा महाराजा सभी एकत्रित हुए। गांडीव धनुष को चढाने में सफल होने वाले राजकुमार को द्रौपदी को देने की घोषणा की गयी। चारों और के अनेक राजा एकत्रित हुए।

तौ लौं नृप सब आए तही, दुर्योधन कर्ण आदिक सही।

जालधर अस जादव ईस, सलपति फुनि मबधी धीस ॥५०॥

कालिदान बहु सोभित रूप, बैठे मंडप मांहि अनूप।

पांडव पाँचों दुजि कै भेष, भ्राप पहुँचे सोभा देखि ॥५२॥

सभी राजाओं ने धनुष को जाकर देखा। राजाओं का परिषय करवाया गया। किसी राजा ने भी धनुष चढाने में अपने बल नहीं दिखा सके। अन्त में धर्मुंन ने विप्र के वेश में ही धनुष चढा दिया। द्रौपदी ने उसके गले में माल डाल

दी। दुर्योधन आदि राजाओं ने अपना दूत भेजकर इसका विरोध किया। लेकिन राजा द्रुपद ने स्वयंवर के निर्णय को न्याय संगत मतसाया। दुर्योधन आदि राजाओं ने युद्ध की घोषणा कर दी। चारों ओर युद्ध की तैयारी होने लगी। द्रौपदी यह देखकर डर गयी। परस्पर में खूब युद्ध हुआ। अर्जुन एवं भीम ने अपने पराक्रम से सबको चकित कर दिया। जब द्रोण ने अर्जुन की मलकारा तो अर्जुन अपने गुरु के विरुद्ध बाण चलाने के बजाय बाण द्वारा अपना परिचय दिया। पांडवों को जीवित जानकर सभी प्रसन्न हो गये लेकिन कौरव मन ही मन जलने लगे। इसके पश्चात् पाण्डव हस्तिनापुर चले गये।

सत्रहवाँ प्रभाव

पाण्डवों एवं कौरवों ने अपना राज्य भाँटा बाँट लिया। तथा सुख पूर्वक रहने लगे। युधिष्ठिर ने इन्द्रप्रस्थपुर, भीम ने तिलपथ, अर्जुन ने स्वर्णप्रस्थ, नकुल ने ब्रह्मपथ एवं सहदेव ने वसिष्ठपथ नामक नगर बसाकर राज्य करने लगे। कुछ समय पश्चात् अर्जुन ने सुभद्रा का हरण कर लिया। दोनों का धूम धाम से विवाह हो गया। अर्जुन को कितने ही दैविक विद्याएं प्राप्त हुईं। एक दिन दुर्योधन ने पाण्डवों को पास बुलाया तथा प्रेम से घूत खेलने को राजी कर लिया। घूत में पांडव सभी कुछ हार बैठे।

छल करि जीते कौरव कस, धरम तनुज हारे सरबंस ।

हारे हार रतन केयर, कटक सुसीस प्रकट घुति पूर ॥७०॥

दरवि देश हारे बहुमंत, हारे हय गय रथ संजूत ।

धम्म कनक भाजन मंडार, हारी जो छेत आतासार ॥७१॥

घूत क्रीडा में हार के कारण पांडव सम्पूर्ण राज्य हार गये तथा बारह वर्ष तक वनवास में रहने का निर्णय लिया। वे नगर को छोड़ कर कालिंजर वन में रहने लगे।

अठारहवाँ प्रभाव

वन में जाने पर पांडवों को मुनि के दर्शन हुए। मुनि श्री ने अशुभ कर्मों का फल बतला कर सब को शुभ भविष्य के लिए आशान्वित किया। उसी वन में एक खेचर मिला। उसने पारथ नृप को रघुनूपुर में रहने का आग्रह किया। अपने भाइयों के साथ वे पाँच वर्ष तक वहाँ रहे। कौरव राजा दुर्योधन ने पांडवों को मारने के

अनेक उपाय किये । पहले चिन्तामय को भेजा लेकिन वह भी बुरी तरह हार गया । फिर कुरुनक्षत्र राजा ने पांडवों को सात दिन में मारने की प्रतिज्ञा की । भिल्ल के भेष में बहू बत में आया और उनसे भगड्य करने लगा । उसने द्रोपदी का हरण कर लिया । अश्वत्थामा ने खूब विग्रह हुआ । लेकिन भीम राजा द्वारा उसे मार दिया गया । इसके पश्चात् वे गुप्त भेष में विराट राजा के यहाँ पहुँचे और विभिन्न नामों से काम करने लगे । क्रीचक जैसे राक्षस को यहाँ भीम ने मारा । इसके पश्चात् और भी उपाय किये लेकिन पांडवों की जिनभक्ति, साहस एवं शौर्य के कारण कुछ भी नहीं हो सका ।

उनीसवां प्रभाव

दुर्योधन पांडवों को मारने के अनेक उपाय बूढ़ने लगा । उसने विराट राजा की गायों को चुरा लिया । गायों को छुड़ाने लिए अश्वत्थामा युद्ध हुआ । उसमें कौरवों के कितने ही वीर मारे गये । पांडव गायों को छुड़ाने में सफल हुए । पांडवों ने कौरवों के साथ युद्ध भी अज्ञान भेष में ही किया । जब विराट राजा को वास्तविकता का मालूम हुआ तब वह कहने लगे—

मैं नहीं जाने इ बलौ देव, घरमपुत्र तुम छमिषो एव ।

अब तँ तुम ही स्वामी इष्ट, हम किकर तुम पालक शिष्ट ॥५॥

याही पुर मैं बधव सय, कीजे राज सदा निरभय ।

बहुत विनय सो असे भाषि, गोष्टी मैं सब मोघन राखि ॥६॥

विराट राजा ने अपनी पुत्री का विवाह अभिमन्यु से कर दिया । विवाह में श्रीकृष्ण, बलराम, दुर्योधन आदि सभी राजा महाराजा एकत्रित हुए । विराट राजा ने सब की खूब भावभगत की ।

राजा श्रेणिक ने जब एक अक्षीहिणी सेना का सख्या बल जानना चाहा । इसका समाधान निम्न प्रकार किया गया—

सहसइकीस सतक वसु लहे,

सत्तर फुनि गज सख्या लहे ॥

ते तेहीं रथ गनीये तही,

हय सख्या अब सुनीयेसही ॥ १७ ॥

पैसठि सहस सतक बट बानि,

दस ऊपरि ह्य सख्या ठानि । (६५६१०)

एक लख्य नी सहसै मित,

तिनि सतक पचासहि पति ॥१०६३५०१॥

हतनी सेना इकठी होइ,

एक अछोहिनी गनीये सोइ ॥

कुन्ती ने द्वारका मे जाकर श्रीकृष्ण जी से दुर्योधन के सभी कुकुर्यों की बतलाया और पाण्डवों पर किये जाने वाले व्यवहार के बारे में बतलाया। इस पर श्रीकृष्ण जी ने दुर्योधन के पास अपना एक दूत भेजा और पाण्डवों को आधा राज्य देने की सलाह दी। लेकिन दुर्योधन कब मानने वाला था वह तो उल्टा क्रोधित हो गया।

बीसवां प्रभाव

पाण्डव कौरव युद्ध के बादल मडारने लगे। दुर्योधन को बहुत समझाया गया कि वह आधा राज्य पाण्डवों को दे दे। ऐसा नहीं करने पर जिनेन्द्र भगवान ने जो बात कही थी वही होगी। जब श्रीकृष्ण जी के दूत ने आकर उनसे सारी बात बतलाई। श्रीकृष्ण जी युद्ध के लिए अपनी तैयारी करली। पाचजन्य शंख को पूर दिया। शंख की आवाज सुनते ही कुरुक्षेत्र मैदान में सेनाएँ एकत्रित होने लगी। कवि ने इस में चतुरगिनी सेना का विस्तृत वर्णन किया है। इसके पश्चात् कुरुक्षेत्र में खड़ी सेना कहां कहां खड़ी है कितना सख्या बल है आदि सभी का वर्णन किया है। कौरव पाण्डवों में घनघोर लड़ाई होने लगी। एक दूसरे को ललकार कर युद्ध के लिए आह्वान किया जाने लगा तथा एक दूसरे के पौरुष की हसी उढायी जाने लगी। भीष्मपितामह युद्ध में जजरित हो गये और जब उनके कठगत प्राण आ गये तब उन्होंने युद्ध भूमि में सन्यास ले लिया तथा सत्सेना व्रत धारण कर लिया। उनका अन्तिम सन्देश निम्न प्रकार था—

करी परस्पर मित्रता, तजो सचुता चित्त ।

अब लीं क्या प्रैसि अये, तुम निहृथे नहि कित्ति ॥६५॥

जे केई रन मे मरे, गए निद गति सोइ ।

तार्ते कीजे धर्म अंब, दस लक्षण अंबलोई ॥६६॥

मुम भाव से मरने के कारण भीष्म पितामह पांचवे स्वर्ग में जाकर देव हुए ।

एक बीसवाँ प्रभाव

दूसरे दिन फिर युद्ध प्रारम्भ हुआ । अभिमन्यु ने भीषण युद्ध किया । इसी समय दुर्योधन का पुत्र प्रचंड गति से बाण छोड़ने लगा । लेकिन वह अभिमन्यु के द्वारा मारा गया । इससे दुर्योधन ने योद्धाओं को अभिमन्यु को मारने के प्रोत्साहित किया । द्रोण, कर्ण कलिंगराजा सभी अभिमन्यु को मारने दोड़े । लेकिन कोई उपाय नहीं चला । आखिर सबने मिलकर उसे घेर लिया । दुर्भाग्य से जयद्रथ भी गया और उसके हाथ से अभिमन्यु को प्राणघातक बाण लगा । अभिमन्यु ने उसी समय सभी कषायों से विरक्ति ले कर शान्त चित्त से भगवान को स्मरण करते हुये मृत्यु को वरण किया । अभिमन्यु के मरने से कौरवों में प्रसन्नता छा गयी जब कि पांडवों में शोक संतप्त छा गया । जयद्रथ की रक्षा के लिये द्रोण ने पूरे उपाय किये । लेकिन अर्जुन ने जयद्रथ का उसी दिन वध करने की प्रतिज्ञा की । भयानक युद्ध के मध्य अर्जुन ने जयद्रथ को मार भी डाला और उसके सिर को पिता की गोद में डाल दिया । इसके पश्चात् अश्वत्थामा मारा गया । जब कौरवों की हार पर हार होने लगी तो उन्होंने युद्ध के सारे नियमों का उल्लंघन कर रात्रि को सोते हुये पांडवों पर आबा बोल दिया । हजारों निहत्थे पांडव सेना मारी गयी फिर द्रोणाचार्य भी मारे गये । कर्ण व अर्जुन में परस्पर में घोर युद्ध हुआ और कर्ण भी अर्जुन के तीर से मारा गया । उधर भीम ने दुर्योधन के सभी भाइयों को एक एक करके मार डाला । इस पर भी दुर्योधन के हृदय की भाग ठडी नहीं हुई ।

धर्म कहि कौरव पति, बले जुद्ध को धार्ड ।

पांडव सेना सनमुखें, क्रोध प्रचंड बढाइ ॥८४॥

दुर्योधन और पांडवों के बीच भीषण युद्ध हुआ । लेकिन दुर्योधन वध नहीं सका और वह भी मारा गया । इसके पश्चात् शेष कौरव सेनापति भी मारे गये । अन्त में जरासन्ध भी कौरवों की ओर से लड़ने के लिए आया । जरासन्ध के साथ भीषण युद्ध हुआ । अन्त में जब जरासन्ध ने चक्र चलाया तो वह भी श्रीकृष्ण जी के हाथ में आ गया । और कृष्णजी ने चक्र चलाया तो उसने तत्काल जरासन्ध का शिर काट दिया । इस प्रकार १८ दिन तक भीषण लड़ाई होने के पश्चात् कौरव पांडव युद्ध की समाप्ति हुई और पर्याप्त समय तक पांडवों ने देश पर शासन किया ।

बाबीसवां प्रभाव—

बहुत समय व्यतीत होने पर एक बार युधिष्ठिर की राजसभा में नारद ऋषि का ध्यान हुआ। महर्षि में द्रोपदी द्वारा नारद का उचित सम्मान नहीं मिलने के कारण वह क्रुपित होकर वह उसके हरण का उपाय सोचने लगे। अन्त में घातकीलड के सुरपुरि के पद्मनाभ राजा के पास गये और उन्हें द्रोपदी का पट चिनाम दिखलाया। पद्मनाभ चित्र देखकर उक्त सुन्दरी को पाने की अभिलाषा करने लगा और नारद से उसका पूरा वृत्तान्त पूछ लिया। नारद द्वारा पूरा परिचय प्राप्त करने के पश्चात् वह बड़ा धाया और सोती हुई द्रोपदी का हरण करके अपने यहाँ ले आया। प्रात होने पर जब द्रोपदी की नींद खुली तब उसने चारों ओर देखा। पद्मनाभ राजा ने अपना सारा वृत्तान्त कहा और उसके सामने रानी बनने का प्रस्ताव रखा। द्रोपदी ने राजा पद्मनाभ को पांडवों का परिचय दिया। द्रोपदी के हरण से हस्तिनापुर में भी हाहाकार मच गया। सेना सुसज्जित कर दी गयी। चारों ओर तलाश होने लगी, इतने में वहाँ नारदमुनि आये और कहने लगे कि घातकीलड की मुनकापुरी के राजा पद्मनाभ के यहाँ उसे अश्रुवदना द्रोपदी देखी है। इस पर पाण्डव वहाँ अपनी सेना साँहत पहुँचे। पद्मनाभ सेना देखकर घबरा गया और द्रोपदी से क्षमा माँगने लगा। आखिर उन्हें द्रोपदी मिल गई। सबने इस उपलक्ष में जिन पूजा कीनी।

तेबीसवां प्रभाव—

सभी पाण्डव श्रीकृष्ण के साथ वापिस आ गये। पाण्डव अपने राज्य का समस्त भार भ्रमिमन्यु के पुत्र परीक्षित को देकर मथुरा आ गये। इधर २२वें तीर्थ-कर नेमिनाथ ने यह त्यागकर दीक्षा ग्रहण की और घोर तपस्या के पश्चात् कैवल्य हो गया। भगवान का समासतरण रखा गया। कुछ समय पश्चात् नेमिनाथ का समास-तरण ऊर्जयत गिरि पर आया। सभी पाण्डव उनके दर्शनार्थ गये। उन्होंने हरि राज्य एवं द्वारावती कब तक रहेगी यह प्रश्न किया। इस पर नेमिनाथ ने कहा कि द्वीपायन ऋषि के ज्ञाप से द्वारिका जलेगी तथा जरलकुमार के बाण से श्रीकृष्ण जी की मृत्यु होगी। जब जरलकुमार ने श्रीकृष्ण की मृत्यु के समाचार पाण्डवों को आ कर कहे तो सभी पाण्डवगण रोने लगे। कुन्ती बहुत रोयी। जरलकुमार को साथ लेकर वहीं गये जहाँ बलदेव हरि के मृतक शरीर को लिए हुए थे। पाण्डवों ने जब दाह क्रिया करने के लिए कहा तो बलराम बहुत क्रोधित हुए। कुछ समय पश्चात् सर्वाभिसिद्धि से वेध ने आकर बलराम को सम्बोधित किया। अन्त में तुंभी गिरि पर पाण्डवों ने मिलकर उनका दाह संस्कार किया। पिहिताराध मुनि के पास स्वध बलराम ने भी जिन दीक्षा ले ली।

चीबीसवां प्रभाव—

पाण्डव वहाँ से द्वारिका भाये । लेकिन द्वारिका जल चुकी थी स्वर्गपुरी के समान वह नगरी अब राक्ष का ढेर थी । कवि ने द्वारिका की दशा का अच्छा वर्णन किया है—

होते नित जिन तै भ्रानन्द, वे सब बिनसै कूबर वृन्द ।
 एकमिनि आदिक रानी यह, तिनके सबन भए दह वह ।
 जे नित करती हास विभास, बिनसि गई ज्यों नीरद रासि ।
 भहो सुजन की संगति रमयां, छिनक छई है सरिता समां ॥८॥

जगत की असारता जान कर पाचो पाण्डव नेमिनाथ के पास पहुँचे और उनकी स्तुति करने लगे । भगवान नेमिनाथ ने पाण्डवो को उपवेशामृत का पान कराया । इस रूप में कवि ने जिन धर्म के मूल तत्वों पर अछी तरह प्रकाश डाला है । पाण्डवो ने तीर्थंकर नेमिनाथ से अपने २ पूर्वभवों को सुना ।

पचचीसवां प्रभाव—

इस प्रभाव में भी पाण्डवो एव द्रोपदी के पूर्वभवो का वर्णन किया हुआ है ।

छबीसवां प्रभाव—

अपने पूर्व भवो को सुनने के पश्चात् पाण्डवो को भी जगत् से वैराग्य हो गया और सभी पाँचो भाइयों ने जिन दीक्षा ले ली । कुन्ती द्रोपदी, सुभद्रा आदि रानियो ने भी आर्यिका राजमती के पास जाकर सयम धारण कर लिया । तथा सच्ची दीक्षा अर्पण कर ली । वे घोर तपस्या करने लगे । एक बार उनको तपस्या करते देख दुर्योधन के भानजा को अत्यधिक क्रोध आया और उसके हृदय में प्रतिशोध की अग्नि जलने लगी । उसने सोलह भूषण अग्नि में लाल करके उनको पहिना दिये । लेकिन वे सभी बाहर भावना भागे लगे । अन्त में अपने आप पर पूर्ण विजय प्राप्त कर युधिष्ठिर, भीम एव अर्जुन ने निर्वाण प्राप्त किया तथा नकुल एवं सहदेव ने सर्वार्थसिद्धि प्राप्त की । वे दोनों पुनः नर भव धारण करके मोक्ष प्राप्त करेंगे । महा आर्यिका राजमती, द्रोपदी, कुन्ती एव सुभद्रा ने सोलहवां स्वर्ग प्राप्त किया । भगवान नेमिनाथ को भी गिरिनार पर्वत से निर्वाण प्राप्त हुआ । अन्त में कवि ने बहुत ही विनय के साथ प्रथ समाप्त किया है ।

कवि बुलासीदास ने सत्काशीन बादशाह का निम्न सर्वथा छन्द में उल्लेख किया है—

बस मुगलाने मांहि दिल्लीपति पातसाहि
 तिमिरलिंग सुत बाबर सु खो है ।
 ताको है हिमाल सुत ताहि है अकबर है
 जहाँगीर तारु कीर साहिजहाँ ठपो है ।
 स्रजमहल सगल अरब जज्ञ महावली
 अबरम साहि साहिम मे खो है ।
 काकी छत्र छाह पाइ सुमति के उरें धाह
 भारत रचाह भाषा जैनी बस लयो है ॥६॥

पाण्डवपुराण मे कौन-२ से छन्दो का किस प्रकार प्रयोग हुआ है उसका कवि ने निम्न प्रकार वर्णन किया है—

छप्पे एक करवे अठारें इकतीस से बीस कासीस
 सएक सारठेई परमानिये ।
 छयालीस तेईसो पादबी पन्चीसीगनिलेही
 मुजग नद छद जैनी जग जानिये ।
 तीनसै तिरासी डिल्ल नौ सौ तीस दोहा भनि
 डाईसी सतानवै सुचौपई बखानिए ।
 सारे इक ठोर करि ठानीये बुलाकीदास
 एकादश प्रचरै हजार चार भानिये ।

कवि ने श्लोक संख्या निम्न प्रकार बतलायी है—

सख्या श्लोक अतुष्टपी, गनीये अन्न जसाह ।
 सप्त सहस्र अष्ट सतक मुनि पन्नपन शक्तिक मिखाह ॥१०॥

इस प्रकार पूरा पाण्डवपुराण ७६५५ श्लोक प्रमाण है ।

पाण्डवपुराण की विशेषताएँ

पाण्डवपुराण अद्यपि महारथ बुजबुज के संस्कृत पाण्डवपुराण का पद्या-सुवाद है लेकिन कविबर बुलाकीदास की काव्य प्रतिभा के कारण यह एक स्वतन्त्र काव्य ग्रन्थ के समान मनःगया है । पुराण २६ प्रभाषीं मे विभक्त है जो सर्ग अथवा अध्याय के रूप में हैं । पुराण कथा प्रधान है । पाण्डवी के जीवन वृत्तको कहने

का काव्य का प्रमुख उद्देश्य है लेकिन कवि ने पुराण के प्रारम्भ एवं अन्त में जो प्रभाव जोड़े हैं उसमें काव्य का रूप और भी निखर गया है। पुराण के प्रथम प्रभाव में मंगल पाठ एवं श्रेणिक द्वारा जिन बंदना का वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव से ही पुराण प्रारम्भ होता है और सक्षिप्त रूप से काव्य रूप में कथा प्रस्तुत की जाती है। इसके पश्चात् शातिनाथ कु सुनाथ एवं अरनाथ तीर्थंकरों का जीवन बूत दिया गया है ये तीनों ही तीर्थंकर थे साथ में चक्रवर्ती भी थे। ये सब वर्णन पाण्डवों के पूर्व भवों का सम्बन्ध जोड़ने के लिए ही किया गया है। इसी तरह कौरव पाण्डव महायुद्ध समाप्त होने के पश्चात् भी भगवान नेमिनाथ के जीवन एवं उनके उपदेशों का सक्षिप्त वर्णन, भगवान श्रीकृष्ण जी की मृत्यु, द्वारिका दहन, पाण्डवों द्वारा गृह त्याग एवं उनका अन्तिम मरण का वर्णन करके पाठकों को पाण्डवों के जीवन का पूरा वृत्तान्त बतलाया गया है।

पाण्डवपुराण का नाम दूसरा नाम भारत भाषा भी दिया गया है। शुभ-चन्द्र के पाण्डवपुराण के अर्थ को समझकर उसके वर्णन को भारत भाषा कहा है।

मुनि शुभचन्द्र प्रणीत है कठिन अर्थं गम्भीर।

जो पुरान पांडव महा, प्रगटं पंडित धीर ॥४६॥

ताको अर्थं विचारि कै, भारण भाषा नाम।

कथा पांडु सुत पचमी, कीज्यो बहु अभिराम ॥५०॥

इसलिए पाण्डवपुराण को जैन महाभारत भी कहा जाता है। वास्तव में यह पूरा महाभारत है जिसमें न केवल महाभारत का ही वर्णन है किन्तु युग के प्रारम्भ से लेकर जीवन के अन्तिम क्षण तक वर्णन किया गया है।

पाण्डव पुराण वीर रस प्रधान है जिसमें युद्धों का एक से अधिक बार वर्णन हुआ है। यद्यपि पुराण शान्त रस पर्यवसायी है, तीर्थंकरों के उपदेशों का वर्णन हुआ है लेकिन उसमें प्रमुख पात्रों की वीरता सहज ही देखने योग्य है। वे अकारण किसी से घबराते नहीं हैं, लेकिन अन्याय के सामने धिरे भी नहीं झुकते। पाण्डवों का जीवन प्रारम्भ से ही अश्रद्धा रहता है। उनका कौरवों के प्रति अश्रद्धा व्यवहार रहता है। कौरवों की सुख शान्ति के लिए वे अपने राज्य को आधा आधा बांट कर भी सुख से रहना चाहते हैं। झूत क्रीडा में हारने के पश्चात् १२ वर्ष तक अज्ञातवास रहते हैं तथा अनेक कष्टों को भोगते हैं लेकिन अपने वचनों पर हठ रहते हैं। युद्ध तब होता है जब दुर्योधन १२ वर्ष पश्चात् भी उन्हें कुछ भी देने को तैयार नहीं होता। यही नहीं युद्ध में भी वे प्रायः युद्ध के नियमों का पालन करते हैं

जबकि दुर्योधन रात्रि को सोते हुए पाण्डवों पर एवं उनकी सेना पर बोले से आक्रमण कर देता है। पाण्डवों का पूरा जीवन जैन धर्म के सिद्धान्तों के अनुसार रहता है।

भाषा

पाण्डव पुराण के कवि घागरा निवासी थे इसलिये पुराण की भाषा पर ब्रज भाषा का सामान्य प्रभाव दिखलायी देता है। पुराण की भाषा सरल किन्तु ललित एवं मधुर है। कवि ने पुराण अपनी माता जैनुलदे के पठनार्थ लिखा था तथा उसे सामने बैठकर इसकी रचना की थी इसलिये क्लिष्ट भाषा के प्रयोग का तो कोई प्रश्न ही पैदा नहीं होता फिर भी कवि ने अपनी पूरी कृति के कथा भाग को अत्यधिक सरस एवं मधुर बनाने का प्रयत्न किया है। प्रस्तुत पाण्डव पुराण हिन्दी की प्रथम कृति है इसके पूर्व सभी रचनायें अपभ्रंश एवं संस्कृत भाषा में निबद्ध थीं। इसलिये कविवर बुलाकीदास ने अपनी माता के आग्रह पर पाण्डव पुराण की हिन्दी में रचना करके साहित्य में एक नया अध्याय जोड़ा था।

बुलाकीदास मुगल बादशाह धीरगजेब के शासन काल में हुए थे। उस समय फारसी एवं अरबी का पूरा प्रभाव था लेकिन कवि इन भाषाओं के प्रभाव से पूर्ण रूप से मुक्त है। कवि ने सुर नृप सवाद में गद्य का भी प्रयोग किया है। यद्यपि सवाद पूरा सैद्धान्तिक है लेकिन कवि ने इसे अत्यधिक सरस बनाने का प्रयास किया है। गद्य का एक उदाहरण देखिये—

भो मित्र तुम सुनो यह बात ऐसी नाही जैसे तुम कहो ही। तार्त तुम सुनो याकी उत्तर। जिनमत के अनुस्वार तैं कहीं हों। सो तुम सावधान होइ कैं सुनो। जो तुम क्षणिक अथवा सून्यमान हुये। एकांत नय करि कैं ती द्रव्य सधने का नाही ॥
(पृष्ठ संख्या ६३)

गद्य की भाषा पर ब्रज का स्पष्ट प्रभाव दिखलायी देता है।

छन्द

कवि का दोहा एवं चौपई छन्द अत्यधिक प्रिय छन्द हैं। उस समय येही छन्द सर्वाधिक लोकप्रिय छन्द थे। पाण्डव पुराण इन्हीं दो छन्दों में निबद्ध है। लेकिन सबैया तेईसा, इकतीसा, छप्पय, सोरठा, अठिल्ल, पाढ़डी, छन्दों में भी पुराण निबद्ध किया गया है। प्रत्येक प्रभाव का प्रथम पद्य सबैया छन्द में लिखा गया है जो क्रमशः एक-एक तीर्थकर के स्तवन के रूप में है।

इसके अतिरिक्त पाण्डव पुराण में तत्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन के लिये भी अण्डी सामग्री उपलब्ध होगी है। पाण्डव पुराण हिन्दी भस्म में निबद्ध किया जाने वाला प्रथम पाण्डव पुराण है। इसकी लोकप्रियता इसीसे ज्ञानी जा सकती है कि राजस्थान के विभिन्न ग्रन्थागारों में अब तक इसकी ३० से अधिक पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हो चुकी हैं। सबसे प्राचीन पाण्डुलिपि संवत् १७८३ आसोज वदी ६ को लिपिबद्ध वि० जैन पचायती मन्दिर भरतपुर में संग्रहित है।

॥

पाण्डव पुराण

(बुलाकीदास)

रचना संवत् १७५४ (1697 A. D.)

अथ पाण्डव पुराण भाषा लिख्यते

प्रथम सर्वाङ्ग नमस्कार

छन्दःपद्य छन्द

सेवत सत सुर राय स्वय सिद्ध सिव सिद्धि भव ।
सिद्धारथ सरबंत नय प्रमाण संसिद्धि जय ॥
करम कदन करतार करन धरन कारण धरन ।
असरन सरन अक्षर मदन बहून साधन सदन ॥
इ ह बिधि धनेक धुन मन सहित अन्न भूषण दूषण रहित ।
तिहि नदमाल नवन नमत सिद्धि हेत सरबन्त नित ॥ १ ॥

बोहा

वृष नाइक वृष दाइ है वृष धक वृष जेष्ठ ।
सृष्टि विधाता वृष्टमय बंदो प्रादि जिनैस ॥ २ ॥
चद्रासकृत चद्र क्षुति, अन्नत्रयू भगवान् ।
आरु चरन चरणी सदा, चित्त चकोर क्षम ठान ॥ ३ ॥
प्राति रूप सिव भव सही, सकल सत्व सुखदाय ।
प्राति धरन सुमिरी सदा, सरन क्षिति चहूँच ॥ ४ ॥
नगन अथ अन्नगहा, निहृक्कल सय नन ईस ।
नेमि अर्मरथ हेति जिन, नमो न्याय निजसीस ॥ ५ ॥
वद्धमान विष्णु वीर्य बल, वर विधात बलवत ।
बिबिध विधाता बोध भय, विरधी बुधि बिकसत ॥ ६ ॥

गणनायक गणधर गनी, गणपति गौतम नाम ।
 भगति गहन को भगनि गनि, गाऊ तसु गुन ग्राम ॥ ७ ॥
 जोग जुगति जस जननकी, जननी जगत विख्यात ।
 जैनी बानी जिन तनी, जयौ यथावत जात ॥ ८ ॥
 जांगी जती-बंथारबी, जनमे बरा जुधि जीति ।
 धिर धानक धिर है धप्यी, सुधिर जुधि स्थिरभीत ॥ ९ ॥
 भीम भयानक भब विषै, भ्रमत भयो भ्रमवत ।
 भरम भाव भारत रण्यो, भीम नाम इहि मत ॥ १० ॥
 भलख भगोचर भ्रातमा, भनभौ इखु जु भचूकि ।
 भरजुन भाये भाप मै, धाराधी भव मूकि ॥ ११ ॥
 निकुल करे कुल करम के, कलावान कविलधू ।
 तातै कबि कुल कहैत है, नकुल नाम निरविधू ॥ १२ ॥
 सुगुन सहित सरवभ्य सम, देव करै जिस सेव ।
 सूर सुमट सुभ साहसी, सस्य एव सहदेव ॥ १३ ॥
 पाई जिन वा कालमै, श्रुत सागर की धाह ।
 या पुराण मै कीजिये, भद्रबाहु निरबाह ॥ १४ ॥
 जाकी साख सुविश्व मै, बिभ्रुत सूरि विसाख ।
 ताकी सुमिरत उर विषै, पुरवै मन धमिलाप ॥ १५ ॥
 ब्राह्मी जिन पाषान की, उजंयत गिरि सीस ।
 वा कल मै वादिन करी, कूदकूद मुनि ईस ॥ १६ ॥
 देवायम जिन स्तवन सौ, प्रगट सुरागम कीन ।
 समतभद्र भद्रार्थ मय गुन, ध्यायक गुन लीन ॥ १७ ॥
 जिन वारिधि व्याकरण की, लखी पार मुनिराय ।
 पूज्यपाद नित पूज्य पद, पूज्ये मनवच काय ॥ १८ ॥
 निःकलक अकलक जस, सकल शास्त्रविद जेन ।
 माया देवी ताडिवा, कुंभधिता पदेन ॥ १९ ॥
 चिरंजीव जिन सेन जति, जाकी जस जग माहि ।
 जिन पुरान पुरुदेव कौ, वरन्यो चाहै ताहि ॥ २० ॥

पुराणादि परकाश कौं, सूर्यावित ,है जोइ ।
 प्रभवत गुणभद्र गुरु, भूतल भूषण सोइ ॥ २१ ॥
 धरुन रतन गुरु चरन जुग, सरन गद्दी कर जोर ।
 बरन ज्ञान के करन कौं, तरणि किरण जिम भोर ॥ २२ ॥

सोरठा

धरनौ बस बखान, नमस्कार करि धब कही ।
 सकल सुनो दे कान, बतन गोत कुल बख्यं ॥ २३ ॥

अथ कवि बस अरण

बोहा

नगर वयानी बहु बसै, मध्यदेस विख्यात ।
 चारु चरन जह धावरै, चारि बरुं बहु भाति ॥ २४ ॥
 जहाँ न कोउ दालिदी सब दीसै धनवान ।
 ऋष तप पूजा दान विधि, मानहि जिनबर धान ॥ २५ ॥
 बैद्य बस पुरुदेव नै, जो थाप्यो अभिराम ।
 तिसी ही बस तहा भवतरुयो, साहु अमरसी नाम ॥ २६ ॥
 अमरबाल सुभ जाति है, श्रावक कुल परवान ।
 गोयल गोत सिरोमनी, व्यौक कसावर जान ॥ २७ ॥
 धर्मरसी सो अमरसी, लछिमी को धावास ।
 नृपगन जाकी धादरै, श्री जिनद की दास ॥ २८ ॥
 वैमचन्द्र ताकी तनुज, सकल धर्म की धाम ।
 ताकी पुत्र सपुत्र है, श्रवनदास अभिराम ॥ २९ ॥
 बतन बयानी छोडि सो, नगर धावरै आय ।
 अन्न पान सजोगतै, निवस्यौ सदन रचाय ॥ ३० ॥
 बुधि निवास सो जानिये, श्रवन चरन की दास ।
 सत्य बचन के जोग सी बरतै नौ निधि तास ॥ ३१ ॥
 गनिये सरिता सील नी, बनिता ताके गेह ।
 नाम अरुदी तास की, मानौ रति की देह ॥ ३२ ॥

उपज्यो ताके उदर तै, नंबलाच गुन वृद्ध ।
 दिन दिन तन चातुर्यता, बडे दोज ज्यो खं ॥ ३३ ॥
 मात पिता सौ पढन कौ, भेज दियो बटसाल ।
 सब विद्या तिन सीखि कै, घारी उर गुन माल ॥ ३४ ॥
 हेमराज पढित वसै, तिसी धागरै ठाइ ।
 परग गोट गुन भागलो, सब पूजै जिस पाय ॥ ३५ ॥
 जिन धामम अनुसार तै, भाषा प्रबधनसार ।
 पंख-अस्ति काया अपर, कीने सुगम विचार ॥ ३६ ॥
 उपजी ताके देवजा, खैबी नाम विख्यात ।
 सील रूप गुन भागली, प्रीति नीति की पाति ॥ ३७ ॥
 दीनी विद्या जनक नै कीनी धति वितपन्न ।
 पढित जापै सीखलै, घरनी तल में धन्न ॥ ३८ ॥

सवैध्या

सुगुन की खानि किषी सुकृत की दानि ।
 सुत्र कीरति की दानि अप कीरति कृपान है ॥
 स्वारथ विधानि परमारथ की राजधानि ।
 रमाहू की रानी किषी जैनी जिनवान है ॥
 धर्म धरनि भव नरम हरनि ।
 किषी असरन सरनि कि जन निज हान है ।
 हेम सौ उपनि सील सागर रसनि ।
 भनि दुरित दरनि सुर सरिता समान है ॥ ३९ ॥

बोहा

हेमराज तहां जानि कै, नंबलाच गुन खानि ।
 वय समान वर देखि दी, पानिग्रहन बिधि ठानि ॥ ४० ॥
 तव सासू नै प्रीति सौ मोती चौक पुराय ।
 लीनी गृह सूत्र नाम धरि, जैनुलदे इहि भाय ॥ ४१ ॥
 नारि पुरुष सौ सौ रनै, धारै अन्तर वेम ।
 पूरव पुन्य फल भोग वं, जैय सुलोचना जेम ॥ ४२ ॥

धर्म्य बुद्धि तिनके भयो, बूलचंद सुख जानि ।
 ताहि धैरुपक्षे वीं बहे, ज्यों प्राणी निज प्रान ॥ ४३ ॥
 धर्मोपक संबंध तै, धाइ इन्द्रपथ धान ।
 मात पुत्र तिष्ठे सही, भनै सुनै जिन बानि ॥ ४४ ॥
 कश्यप रतन पंडित तहां, मास्त्र कला परधीन ।
 बूलचंद तिस हेत सौं, ज्ञान धंस कछु लीन ॥ ४५ ॥
 कल्पवता माता सही, सुख करता सरवंस ।
 दुख हरता सौं यौ महा ज्यौ तम सविता असु ॥ ४६ ॥
 सब सुख दै तिन यौ कही, सुनो पुत्र भो वात ।
 सुभ भारज तै जग विषै, सुजस होइ विख्यात ॥ ४७ ॥
 महापुरिष गुन भाइये, ताही तै यह जानि ।
 बोइ लोक मुखदाय है, सुयति सुकीरति धान ॥ ४८ ॥
 मुनि सुभचन्द्र प्रसीत है, कठिन धर्म गभीर ।
 जो पुराण पांडव महा, प्रगटै पंडित धीर ॥ ४९ ॥
 ता की प्ररथ विचारि कै, भारत भाषा नाम ।
 कथा पाण्डु सुत पंच की, कीज्यौ बहु अभिराम ॥ ५० ॥
 सुनम धर्म आवक सबै, भनै भनार्व जाहि ।
 ऐसो रचिकै प्रथम ही, मोहि सुनावौ ताहि ॥ ५१ ॥
 जननी के ए बचन मुनि, लीने सीस चडाइ ।
 रचिबे कौं उद्दिम कीयौ, धरि कै मन बच काइ ॥ ५२ ॥
 यह पुराण सागर कहा, मै बालक मति भाय ।
 तरिवे कौं साहस धरौ, सो सब हासमहाय ॥ ५३ ॥

चौपई

जे कबीस यह जिनसेनादि, बंदे पद तिनके हम धादि ।
 लह्यो पुन्य तथा तासो कथा, रचि हौं जिनवर भाषित यथा ॥ ५४ ॥
 ज्यों नर यूंको बोल्यो बहै, सब जन ताकी हासी बहै ।
 त्यों यह प्रथ करत परवान, भाजन मोहि हसन कौं जान ॥ ५५ ॥
 चह्यो मेरु पै पंगुल बहै सब जग में कह हासी लहै ।
 यह पुराण धारंभत धरै, तैसें मोहि हसैने सबै ॥ ५६ ॥

सकति हीन मैं ऐसी महा, ती भी शास्त्र करव की महा ।
 छीन वेनु ज्यों बछा हेत, दुषध दान बहू हित सी बेट ॥ ५७ ॥
 रवि समान जे पुरख सूरि, तिन ही द्रव्य प्रकासे भूरि ।
 तिन को दीपक सकति समान, कयी न प्रकासे ज्योति प्रमान ॥ ५८ ॥
 वक्र वाक को जे कवि भनै, तह पलास बत जय मैं बनै ।
 भ्रात्र वृक्ष थोरे वन माँहि, त्यौ कवि उत्तम जग बहुनाँहि ॥ ५९ ॥
 दाध कवित्त को नासै जेह, बिरले साधु जगत मैं तेह ।
 उज्जल कनक अगनि तै यथा, निरमल कवित करे ते तथा ॥ ६० ॥
 जे असत हैं सहज सुभाइ, ते पर अर्थहि दूखी घाइ ।
 ज्यो दिन अंध लगावत दोष, देखन रवि की धारत रोष ॥ ६१ ॥
 ज्यो मदमत धरै बहुश्लेध, हेयाहेय न जानै भेद ।
 त्यो जग मैं नर खल जो होइ, सब ही को खल मारो सोइ ॥ ६२ ॥
 जलधर महिमा जग मैं कही, अनुमान दै पोषत मही ।
 त्यो सब जनकी सज्जन लोग, देहि सदा सुभ सिख्या जोग ॥ ६३ ॥
 सतासत सुखासुख करै, सोम अर्धं सम उपमा धरै ।
 कोविद जन सब जानत एम, ता वीचार सो हम को केम ॥ ६४ ॥
 षट् प्रकार कहिये व्याख्यान, तिन मैं मगल आदिहि जान ।
 और निमित्त जु करै कारन ठान, कर्ता फुनि अभिधान जु मान ॥ ६५ ॥
 प्रथम ही मगल या मैं कहा, जो जिनेन्द्र गुन गाए महा ।
 जाकै हेत जु करी ए अर्थ, सो निमित्त अर्थ हरन सुभ पथ ॥ ६६ ॥
 भव्य वृन्द कारन जग सीन, ज्यों या मैं श्रेणिक परवीन ।
 कर्ता मूल जिनेसुर मुनी, उत्तर कर्ता गौतम गुनी ॥ ६७ ॥
 तातै उत्तर और जु भये, विष्णुनिदि अपराजित ठये ।
 भद्रनाहु गोवर्द्धन और, इन आदिक कर्ता सिर मोर ॥ ६८ ॥
 अरथ विचार धरै जो नाम, सोई नाम कह्यौ अभिराम ।
 ज्यो पुरान यह पांडव सही, पुरु पुरुषन की महिमा कही ॥ ६९ ॥
 नान भेद अर्थ सुनीये सही, अर्थं गनत की सख्या नहीं ।
 पद अक्षर की सख्या कही, मान भेद तुम जानौ यही ॥ ७० ॥
 षट प्रकार यह भेद विचार, सुभ बखान करिए बुधि धार ।
 पंच भेद बरनें फुनि और, द्रव्य श्लेष आदिक तिहि ठीर ॥ ७१ ॥

बोहा

इहि विधि सर्वे विचारि कै, बरने गुनी पुरान ।
 वक्ता श्रोता अठ कथा, सुभ लक्षण पहिचानि ॥ ७२ ॥
 प्रथम बक्ता बरखन

बोहा

अथ छमी सुंदर गुनी, सुधि रचित अवीन ।
 न्यायवान नैवायिकी सीलवान सुकुलीन ॥ ७३ ॥
 व्रतधारक बत्सल महा, अठ पठित बहु होइ ।
 लक्ष्मीवत सुसत चित, उत्तम कत्ता सोइ ॥ ७४ ॥
 उक्त अथावगाधार भाषायां

सर्वेभ्या ३१

विद्वत सुप्रसन्नवान सुन्धर सुवेनवान
 भारत प्रसन्नता जु हंसितम्य जानीये ।
 प्रश्न में न छोड करे लोक को विज्ञान धरे
 क्यात पूजा महि निर इच्छक बलानिये ।
 भावे मित अविधान दया ही की होइ क्षानि
 अल्पश्रुत उद्धतानसु पुषता ठानीये ।
 बरुंत अरुन सिष्य चाहिये सुवर्ण सुद्ध
 एते गुन भागम तै बक्तरि प्रमानीये ॥ ७५ ॥

अथ श्रोता बरुण

बोहा

सीलवत सुभ दर्शनी सुभ लक्षण श्रीमान ।
 सदाचार चर चक महा, चतुर क्तुर कुनखान ॥ ७६ ॥
 व्रती सुदाता भोवता दक्ष सुपूरन अक्ष ।
 हेयाहेय विचार कर धिर धारै जिन अक्ष ॥ ७७ ॥
 प्रतिपालक गुरु बचन की, सावधान प्रधान ।
 क्रियावत बरमातमा, मानिनीक विद्वान ॥ ७८ ॥
 सुनि अकचारै ग्रह रहै विमल चित्त विनग्रह ।
 स्वागी हास कषाय की सी श्रोता सुभ तम्य ॥ ७९ ॥
 कहे सुभासुभ भेद करि, श्रोता बहुत प्रकार ।
 हठ वेनु ए अक्ठ है, मध्यम माटी सार ॥ ८० ॥

उक्तं च श्रावकाचार भाषायां

सबैम्या ३१

मृत्तिका महिष हंस स चालिनी मसक कंक
 मारजार सूबा अज सर्प सिला पसु है ।
 जलूका सछिद्र कुंभ इन के सुभाव ही तें
 सुभा सुभ श्रोता जानि कहे चारिदसु है ।
 सम्यक विचारि इहै सुरस्वाभाव धारै उदर
 धावर विशेष करि छिमा सौं सरसु है ।
 भक्त गुह भीरु भव जैन बैन धारन की
 पारायन श्रोता गुन मृत्ति पसू हसु है ॥ ८१ ॥

दोहा

दीजं जो उपवेश सुभ, ले हन श्रोता मुग्ध ।
 ज्यो कच्च फूटं घटं, रहे न राक्षी दुग्ध ॥ ८२ ॥
 सब श्रोता हिरदं धरै, गुह उपदेश जोह ।
 वीयो बीज सुभूमि ज्यो, भूरि गुनीं फल होइ ॥ ८३ ॥

अथ कथा लक्षणं

दोहा

कथन रूप कहीए कथा, सो है दोह प्रकार ।
 सुकथा जो जिन कही, विकथा धीर असार ॥ ८४ ॥
 वरम सरीरी जे महा, तिनके चरित बिचित ।
 पुन्य हेत जहाँ बर्याये, सो है कथा पवित्र ॥ ८५ ॥
 पुन्य पाप फल बर्याये, बरने व्रत तप दान ।
 द्रव्य श्रेष्ठ फुनि तीर्थ सुभ, अरु सबेण बखान ॥ ८६ ॥
 जो स्व तत्व कौं भापि कै, दूरि करै पर तत्व ।
 ज्ञान कथा सो जानिये, जहां बरनै एकत्व ॥ ८७ ॥
 गुन पूरन सम्यक्त, सुभ बोध वृत्त संयुक्त ।
 नाना विधि सो बर्याये, यह जिन भाषित उक्त ॥ ८८ ॥

उक्तं च श्रावकाचार भाषायां

सवैया ३१

जीवा जीव धादि तत्व सम्यक निरूपै धर्म
 देह भव भोगन मांहि बसैं निरवेद कौ ।
 दान पूजा सील तप देसैं विसतार करि
 बंध मोक्ष हेतु फल भिन्न मन भेद कौ ।
 स्वात धस्ति धादि नय सात जे बिस्यात
 भरु भासैं प्रान दया हित हिंसा के उखैद को ।
 भंगी सरबंग संग त्यागै होइ सिद्ध भंग
 सत्य कथा कथा एई नासैं भव खेद कौ ॥८६॥

बोहा

रिषि वशिष्ठ सुक व्यास भरु, द्वीपायन इन धादि ।
 तिन करि भाषित कथन जो, सो बिकथा बरुबादि ॥८७॥
 द्रव्य क्षेत्र भरु तीर्थ सुभ, काल भाव फल धोर ।
 प्रकृत सप्त ए भंग हैं, मुख्य कथा की ठौर ॥८८॥
 ऐसी विधि यह वरन कै, कहियत है धन सोइ ।
 जो पुरान पावन पुरुष, भारत नामा जोइ ॥८९॥

महाशौर जगन्नाथ का जीवन

चौपाई

जबूद्वीप धनूपम लसै, पंडित जन बहु जामैं बसैं ।
 भरत खेत धति सोभित मही, धारख खंड सुमंडित यही ॥९३॥
 देस विदेह विराजै जहाँ, सुर सम नर बहु उपजै तहाँ ।
 सिद्धारथ नामा तहाँ भूप, नाथ वंस धरतार धनूप ॥९४॥
 सरब धर्म की जाकै सिद्धि, वरतैं नौं निधि धाठौ रिषि ।
 तिसला रानी ठाके वेह, रूपसील बहु सुन्दर वेह ॥९५॥
 चेटक भूषर गिरि सम जान, तहाँ उपजी सुर सरित समान ।
 सो सिद्धारथ सानर मिली, प्रीति कारिनी मुन सौं रली ॥९६॥
 प्रथमहि जाके तट छह मास, सेव करी सुर कन्या सास ।
 रत्न वृष्टि जाकै घर भई, धनव देव नै धापुन ठई ॥९७॥

रैन पाछिली सोवत सही, सोख्ह सुपनं देखी तही ।
 गज गो हरि श्री भाला दोइ, चद सूर भय जुग भव लोइ ॥६८॥
 कु भ जुगम सरवर सुभ जानि, सागर भर सिंघासन मानि ।
 व्योम जान ग्रह पृथिवी तना, मणि रासागनि धूमे बिनां ॥६९॥
 ए सुपने सुम देखत भई, जागि उठी तब प्रमु पै गई ।
 हाथ जोरि फल पूछ्यो जबै, उत्तर सब नृप भाख्यो तबै ॥१००॥
 पुण्योत्तर तै चइ कै देव, ताकै गर्मजू तिष्ठयो एव ।
 सुदि भसाठ छठि गज नछत्र, कीनौ गर्म कल्याणक तत्र ॥१०१॥
 चेत त्रयोदसिसुदि के दिना, जनम कल्याणक सुरपति ठना ।
 बढमान यह प्रगटयो नाम, व्याप्त जाकै जग मै घाम ॥१०२॥
 तीस बरष के भये कुमार, सुभ तरुनापी चार्यो सार ।
 किंचित कारन तब ही पाय, चित वैराग बर्यो अधिकाय ॥१०३॥
 सब कुटब सौं ऐसे कही, ए सब भोग बिनश्वर सही ।
 लोकांतिक सुर ती लों नये, बुति करि कै सुलोकहि गये ॥१०४॥
 तब सुरपति सुरगल सह घाइ, जिन पद बदे मस्तक नाइ ।
 पुनि न्हधाय भूवन पहिराय, सुरगल भगति करी अधिकाय ॥१०५॥
 चदप्रभा सिबिका सु भनूप. चित्र विचित्रित नाना रूप ।
 तापै चडि पुर बाहिर गये, परिग्रह त्यागि दिगबर भये ॥१०६॥
 हस्तरिक्ष मृगसिर यदि दसै, साभ समै जिन बीक्षा लसै ।
 षष्टम थाप्यो मन की सोष, मनपर्यय तब उपज्यो बोध ॥१०७॥
 पारन पाइ फिरे भू मांहि, मौन रहे जिन बोले नाहि ।
 बारह बरष बितीते सर्व, जू भक ग्राम पहुँचे तबै ॥१०८॥
 तहाँ रजूकूला सरिता तीर, साल वृछ तल बैठे बीर ।
 श्रेणी अपक चढ़े जिनराय, धाति करम धाते अधिकाय ॥१०९॥
 तब ही केवल उपज्यो तास, सकल लोक प्रति भासत जास ।
 सोभित समोवसरन जिनराय, गिरि वैभार पहुँचे धाय ॥११०॥
 तरु भसोक पुनि दिव्य बखान, छत्र सिंघासन चामर जान ।
 पुहप वृष्टि भामडल सजै, घन सम घोर सुदु दुभि बजै ॥१११॥
 सुरपति प्रापुन ल्याये जिसै, गौतमादि ते गनधर लसै ।
 मगध देस तहाँ सोभावत, निबसै नुरसम नर जहा सत ॥११२॥

राज सखन पुर उत्तिम तही, सबै नगर में राजा बही ।
भूतल भूषन नानी यहै, बहु मंदिर करि सोभा लही ॥११३॥

राजा श्रेणिक बरखेन

श्रेणिक भूपति है ती ठौर, नृप मन में मनिये सिरमौर ।
सम्बक दृष्टि बिल गम्भीर, परम प्रतापी बीर सुबीर ॥११४॥
प्रिय बेसिबी बाकै नेह, भाये जिन तिन जान्यो एह ।
भादिनाथ अजोध्यापुरि छये, भरत भावि ज्यो बंदन गये ॥११५॥
त्यौही श्रेणिक भूपति बख्यो, दल बतुरंग सुसाये रल्यो ।
हिन हिनाट ह्य करते चले, गय मयमस्त सुगरजत भले ॥११६॥
नाना भांति धरथ सौ भरे, ऐसे रथ सारथि अनुसरे ।
भटगन निरतत प्रति ही चलै, बाजे बजहि मधुर बुनि रलै ॥११७॥
गावें अस बहु चारन भाट, ता श्रेणिक कौ चलतै बाट ।
चलत राय सो पहुँचे तहा, समबसरन सुर राजै जहा ॥११८॥
गज ऊपर तें उतरे तबै, चमर छत्र तजि दीने सबै ।
सिंघपीठ परि जिनि धिति करै, छत्र तीन सिर, सोभा धरै ॥११९॥
चारु बतुर मुख च्यारौं दिसा, रवि सम ते जिनवर ते तिसा ।
सुर नर लग पति जाकौं नमै, तीनों मुबन पसंसा पमै ॥१२०॥
भाठों भंग्य बही सौं साह, नमन कीयो धरि मन बच काह ।
पूजा करि धुति करै अनूप, सब विधि पूरन श्रेणिक भूप ॥१२१॥

श्रेणिक द्वारा महाबीर की स्तुति

बोहा

स्तुति जानिस्तोतारस्तुति, स्तुति फल फुनि धबलोह ।
धुति आरंभी वीर की, मन बच काय संजोह ॥१२२॥

चौथाई

तुम भगवंत मुबन पति सही, तुम धुति कौ शक कोठ नहीं ।
सुरपति सम भी अखय भवे, तुम मुन अंत न काहू लये ॥१२३॥

भित रहित चिनमय चिद्रूप, इन्द्रिय बन्धित निर्मल रूप ।
 गद्य विबन्धित ग्यायक गद्य, वेत्ता रूप अनूप अक्षय ॥१२४॥
 हूँ नीरस अद्भुत रस ठन्वी, तुम तरुनापे रति पनि हन्वी ।
 बालक क्रीडा कीनी जहा, देव नाग हूँ आये तहा ॥१२५॥
 तिनकी जीति अति अन्निराम, बीरनाथ यह पायी नाम ।
 बाल खेल तुम करने तही, मुनि जुग नभत आये सही ॥१२६॥
 तुम देवत तिन ससै टर्यो, सनमति नाम तुम्हारी बरयो ।
 ग्यानादिक गुण बढ़ते रहे, बद्धमान तुम तातै कहे ॥१२७॥

महावीर को दिव्य द्धनि

ऐसे धुति करि बँठी राय, सभा माँहि नर कोठै ठाय ।
 तोली धानी जिनवर तनी, हीन लगी बहुगुन सो मनी ॥१२८॥
 तालु अक्षर गल हालै नाहि, और अनद्धर गुन जिस माँहि ।
 धर्म विषै मति धारो भूप, द्विविधि सो करता रस रूप ॥१२९॥
 तजि गोचर अरु श्रावक तना, आदि धर्म निरगथे ठना ।
 ग्यान गुन जप तप को धान, ऐसो पद निरग्रथै जानि ॥१३०॥
 गृह गोचर सुनि दूजो धर्म, धान सील तप साधै कर्म ।
 नाक तनै सुख साई लहे, सील सहित श्रावक अत गहे ॥१३१॥
 आहारादि चतुर्विध दान, त्रिविधि सुपत्ताहि देहि सुजान ।
 भागभूमि फल यासो वहै, फुनि जिन भावत भावन रहै ॥१३२॥
 निज स्वरूप चिद्रूप विचार, हृदय शुद्ध करि भावै धार ।
 यही भावना जानी सही, जति श्रावक दोनो को कही ॥१३३॥

बोहा

ऐसी विधि सौँ धर्म सब सुनिकै श्रेनिक राय ।
 गमन कीयो निज सदन को, वदे जिनवर पाय ॥१३४॥

चौपई

नृप गन करि सो लेखित महा, पदुक्थी पुर नृप मंदिर जहा ।
 रमहि सुरानी चेलिन सग, ज्यो रति साथ रमत अनंग ॥१३५॥

बाह धित करि बितल रहै, जिन धध भांवन हिरदै लहै ।
 निरखन जन की लाम सुवेत, सिद्धि अरध सुभ माता हृत ॥१३६॥
 वीर नाथ बुनि विध्य बखान, देत धले भविजन की दान ।
 करयी सुस्वामी देस विहाए, जाकी सुरपति सेवा धार ॥१३७॥

बिभिन्न प्रदेशों में महावीर का विहार

अग वग कुर जगल ठए, कौमल धीर कलिये गये ।
 महाराठ सोरठ कममीर, पग भीर केकरा गभीर ॥१३८॥
 मेदपाट भोटक करनाट, कर्ग कोस मालवै यैराट ।
 इन धादिक से धारज देस, तथा जिन नाथ कीयी पग्गवेस ॥१३९॥
 भव्य रासि सबोधत वीर, देस मगध फुनि ध्राये धीर ।
 गिरि वैभार विभूषित भयी, मनौ रवि उदयाफल ठयो ॥१४०॥

मगध नरेश द्वारा महावीर बन्दना

जिन विभूत लखि अकथ धपार, विसमयवत भयी वन पार ।
 नृप मंदिर मोवत ही जाइ, जहाँ सिंघासन बैठे राठ ॥१४१॥
 स्वेत छत्र छवि रवि धाताप, दूरि करै सब टारै पाप ।
 मुकट मयूख नभस्तल गई, टण्ड घनुष रचि सोभा ठई ॥१४२॥
 सूर चद सम कु डल वरगं, रतन जडित प्रति सोभित वरगं ।
 हार मनोहर मस मैं लसै, किरनौ करि उडवन की हमै ॥१४३॥
 दीग्ध किड भुज बाजूबध, धरु करकट कहुरै तम खध ।
 भेट धनेक जु ध्रावै लेइ, तिन पै हित सी लोचन देइ ॥१४४॥
 दत मरीचि अधिक ही धरै, तिन कर मूतल उजल करै ।
 भागध गुन गावै सगीत, तिन कौ सुनि करि धारै प्रीति ॥१४५॥
 नृप कुलीन बहु धुति कौ करै, वर कृपान कर सोभा धरै ।
 जान दीयो धरवानौ जवै, ऐमो मूपति देख्यौ तवै ॥१४६॥
 नमस्कार करि तथा वन पाल, कीनी विनती सुनि मूबाल ।
 नाथ वस मैं उपजे जोइ, वीर नाथ जिन ध्राये सोइ ॥१४७॥
 गिरि वैभार विभूषित कीयी, फुनि भूमडल अधिरज लीयी ।
 महावाधनी करुना ठानि, बी सुत छीवै निज सुत जानि ॥१४८॥

मारजार घर मूषक रमें, नागन कुल इक जाई पमें ।
 गज भरि भावक घर मृगराह, खेले घापस में अघिकाह ॥१४६॥
 सूके सर बहु जल सौं भरे, कोक मराल सबद तहाँ करे ।
 सुक्क जाल फल फूलों भूमि, बंदीं जिन पद मानो घूमि ॥१४७॥
 तिस प्रभाव वन अचिरज बर्यो, सब रितु के फल फूलों भरयो ।
 यह अचिरज में देख्यो राय, तिनकी भेट करी मैं घाय ॥१४८॥

बोहा

बचन सुनें बनपाल के, हरष्यी चित अति मूप ।
 तृषावत ज्यो नर लहे, ललि कै अमृत रूप ॥१४९॥

अडिल

सार बित्त बन पालहि राजा घाइ कै ।
 सात पैठि उठि प्रणाम्यो जिन दिस जाइ कै ।
 जा प्रसाद चित परमानन्द अनंदिए ।
 ऐसे धरन कमल जुग जिन के बदिए ॥१५३॥
 बढमान गुन खान गुनी गुनपाल है ।
 धर्मवत व्रत वत सुसत दयाल है ।
 सुजस सदा जग राइ जई जिन बदए ।
 नमस्कार कर जोरि जिनुलदे बदए ॥१५४॥

इति श्रीमन्महाशीलाभरणभूषित जैनी नामाकितयां लाला बुलाकीदास
 विरचितायां भारत भाषायां श्रेणिक जिन बंदनोत्साह वर्णानो नाम प्रथमः प्रभवः ।

अथ अनंत जिन स्तुति

बोहा

भव अनंत यह जलनिधी, ताकी है बर सेतु ।
जिन अनंत गुण अंत नहि, बंदी शिव सुख हेतु ॥१॥
एक समय बिरकत बिदूर, भये विषय सुख मांहि ।
छिन भंगुर संसार में, जान्यो बिर कछु नांहि ॥२॥
विदुर चतुर चितवत, (चित) धिग संपय धिग राज ।
धिग प्रभुता धिग भोगए, सब अनर्थ के काज ॥३॥
जाके कारण जनक कौं, हत पुत्र धरि क्रोध ।
कहुँक सुत कौं मारई, पिता पाइ दुरबोध ॥४॥
हनत मित्र कौं मित्र ही, बंधु बंधु की मारि ।
भव सुख कारण जीवए, करत काज अविचार ॥५॥
ए कौरव अति दुरमती, महा करम चंडाल ।
धन कौं मरतै रण बिषै, लखी न चाहुं हल ॥६॥
यो विचारि कौरवन सौं, कहि करि बन में जाइ ।
विश्वकीर्ति कौं समन करि, सुनत धर्म धरि भाइ ॥७॥
भए दिगम्बर संजमी, अंबर तन तै त्याधि ।
बाह्याम्बंतर तप चरन, परम तत्व चित लागि ॥८॥
एक समै कोइक महा, सार्थसाह परवीन ।
राजप्रही पुरि ईसकी, भेटि रतन बहु कीन ॥९॥

पूछी ताहि नरिद नै, कहा तैं प्रायी भाइ ।
 कहाँ कि द्वारा नगर, तैं तुम देखन को राइ ॥१०॥
 पुनि पूछ्यौ ता नगर मै, कौन नाम है भूप ।
 तिन भाख्यौ बँकुठ बल, नेमि नृपति जिन भूप ॥११॥
 जादव निषसे मुनत ही, जरासघ हँ ऋद्ध ।
 जलधि हल्यौ मनु प्रलय को, चलयौ करन को जुद्ध ॥१२॥
 जुद्ध बहुत जिन हेतु ही, ऐसे नारद भाइ ।
 जरासघ को छोभ सब, हरि सौँ कह्यो बनाइ ॥१३॥
 नेमि निकट फिरि जाइ कै, आगे ठाढी होइ ।
 पूछी धरि सौँ जीति हौँ, सत्य कहो तुम सोइ ॥१४॥
 नेमनाथ मुसकाइ कै, निरख्यौ हरि की ओर ।
 तन अपनी जय जानि कै, विष्णु चढ्यो दल जोर ॥१५॥
 बल हरि कै सग नृप चढे, समुदबिजै बसुदेव ।
 धनावृष्टि भरु धर्मसुत, भीम सु अर्जुन एव ॥१६॥
 घृष्टद्युम्न प्रद्युम्न जय, सत्यकिसारण सधु ।
 भूरिश्रवा सहदेव भरु, भोज स्वर्ण गर्भवु ॥१७॥
 द्रुपद बज्र धक्षोभ विदु, सिधीपती पीडरीक ।
 नागद नकुल मुकपिल कृह, छेम घूर्त बाल्हीक ॥१८॥
 महानेमि दुर्मुख निषध, बिजय पधरथ भानु ।
 चारु कृष्णा उन्मुख जबन, पुनि कृतवर्मा जान ॥१९॥
 नृप शिखरि बैराट नृपति, सोमदत्त इन भादि ।
 जादव पछी नृप महा, चढे जुद्ध नै सादि ॥२०॥
 जरासघ की दूत तब, दुरजोधन तट जाइ ।
 नमसकार करि बीनयी, मुनी कफि बचराइ ॥२१॥
 दुर्बर मार्यौ कस जिन, अक्रिमुता पति सूर ।
 मुष्टि घात तैं चूरियौ, मल्ल बलीबानूर ॥२२॥
 करिहि धर्यौ गोबद्ध गिरि, धरि मर्दक गोपाल ।
 प्रगट भयी सौ भूविषै, धारत मद सविज्ञान ॥२३॥

जे जादव रण तीं टर्दे, जरे अग्नि में जाइ ।
 ते जब सुनीये जीब तें, कसे बलधि महि जाइ ॥२४॥
 रतन भेट करि बैश्य नै, कछ्यो बकि प्रति एम ।
 राज महा जादव करत, द्वारिकपुर मये हेम ॥२५॥
 जादव पांडव द्वारिका, बसत सुनें चक्रीस ।
 महाक्रुद्ध ह्यै नृपनर्प, पठए दूत अवीस ॥२६॥
 नृप प्रघान जे पुरुष वर, सकल बुलाये पास ।
 एक बरस मै भूप सब, मिले तहां गुन रास ॥२७॥
 तातं हे कौरवपती, तो तट पठयी मोहि ।
 चक्रवर्ति अति प्रति तै, अबहि बुलावत तोहि ॥२८॥
 विविधि बाहिनी आपनी, सारी साजि सुकछ ।
 तुम प्रति चक्री यौ कछ्यो, भावहु मो तट बछ ॥२९॥

सोरठा

सुनत भयो रोमांच, मागव कौं आवेस यह ।
 पूज्यो दूत सु सब, वसना भूषण दर्बतें ॥३०॥
 जो मो मन था इष्ट, सोई चक्री अब ठनी ।
 ह्यै सबहि विसिष्टि, निज चित यी चिरचितयो ॥३१॥

सवैया २३

सुग्न मै वर सूर दुर्जोधन, ताहि समै रण भेरि दिवाई ।
 जाकी महा धूनि व्याप्त भू, नभ छोभ भयो चहुँ सागर टाई ।
 धीरल के तन रोम जमाइ, सुजु भन कौं चित चौप लगाई ।
 काइर कपत काइ महा, भय लाइ सुभौन के कौन धसाई ॥३२॥
 सज्जि चली चतुरग चमू चय, अत मठ" महा निकसेई ।
 सागर सँ नहि मडि धसे रथ, सारथि सौं महमी नक सेई ॥
 चबल बाल बलै बल चामर, चारु तुरी सुन जीत कसेई ।
 सन्न के असेके कौ सुदौरहि, सुरपयदल की नक सेई ॥३३॥

बोहरा

कोरव दल दलमलि चरनि, छाई रेनू अकात ।
 दुल्ल कहिये कौ मूमि मनु, चली इन्द्र के पास ॥३४॥
 क्रम तैं कोरव बाहिनी, मिली चकि दल संग ।
 सब तैं अधिक समुद्र कौ, भाइ रली मनु गंग ॥३५॥
 दुरजोधन कौ मान बहु, राक्षसी मायघ राइ ।
 कर्ण मिल्यो यौ कोरवहि, ज्यौ रवि किरण रलाइ ॥३६॥
 तब पठयो चक्रीस नै, दूत जादवनि पासि ।
 तुरित जाइ सौ बीनयो, सब सौ बचन प्रकासि ॥३७॥
 भो जादव तुम पै करत, धाजा यह चक्रेष ।
 जाइ बसे किम जलधि तुम, तजि कै अपनौ देश ॥३८॥
 समुदबिजै बसुदेव ए, हम प्रीतम हैं भादि ।
 बांघि आपकी किहि लयें, गए सुछिपि कै बादि ॥३९॥
 चरन जुगल चक्रीस के, सोवोह अब तजि गर्ब ।
 जा प्रसाद तैं तुम लहौ, राज पाट सुल्ल सर्व ॥४०॥
 ऐसी सुनि कैबल बली, बोन्धी क्रोधित होइ ।
 हरि कौ तजि या भू विषै, चक्री और न कोइ ॥४१॥
 ऐसी सुनि फरकत अघर, दूत भनै इंहि भाइ ।
 जातै तुम सागर विषै, जाय छिपे भय लाइ ॥४२॥
 तिस पद पकज सेव तैं, कहीयत कौन सुदोष ।
 भावत हैं तुम पै च्दयी, मगघ राइ घरि रोष ॥४३॥
 ग्यारह छोहिनि दल सहित, मुकट-बद्ध नृप संग ।
 भावतं ही तुम सर्व की, करै छिनक में गंग ॥४४॥
 बच कठोर सुनि दूत के, बोले पांडव ताहि ।
 मन इच्छत मुल्ल बकत है, मारि निकासौ याहि ॥४५॥
 यो सुनि निकस्यो दूत तब, भायो चक्री तीर ।
 उन्नतता जादवनि की, बरनी अधिकहि धीर ॥४६॥

सौरठा

झही देखते जादकर, महा मर्ब कह मस्त ।
 तुम कौं रंजन मानई, ध्यौं मधिरा मद मस्त ॥४७॥
 असे बचन सुनि चक्रधर, रस्य दुंदभि बनाइ ।
 बलिये कौं उदित भये, संग लए सब राइ ॥४८॥
 दीपसिबंत विमान बहु, बैठि असे क्षय भूप ।
 रवि पंकलि मनु गगन में, घाई उमडि धनूप ॥४९॥
 बहू गरिब भूषर महा, भूमि असे मनु खंद ।
 उदगन सम हुति बँत अति, संग सजौ भट वृंद ॥५०॥
 द्रोण भीष्म जामदग्न्य शकम, अश्वत्थाम फुनि करण ।
 सत्य विश्व वृषसेन नृप, कृष्णबर्म सुन वर्य ॥५१॥
 इन्द्रसेन अरु यदिर भी, दक्षोषन दुसास ।
 दुर्मय दुर्धर्ष इन प्रभृत, असी नृपन की रासि ॥५२॥
 पगटीं नृकंपन करत, घाए सब कुरु खेत ।
 तजिकै ममता जीब की, कर्पी मरनसौं हेत ॥५३॥
 केईक नृप सुनि बात यह, जजत भये खिनदेव ।
 केईक गुरु तट जाइ कै, लए अनुवत एव ॥५४॥
 केइक नरपति यौ कहत, तजीए गृह सुत वार ।
 कर मैं लीजे तीछन असि, कीजै अरि संवार ॥५५॥
 केइक निज निज भृत्य प्रति, कहत भये नर राइ ।
 चापहुँ पनिच अढ़ाईये, गज गन सजौह बनाइ ॥५६॥
 जीन सजौ बाजीनि पै, भुंजौ भोजन मिष्ट ।
 अश्व रथन सौं जूजीये, दीजे वित्त विशिष्ट ॥५७॥
 इह बिधि भाषत सैन मैं, गजि गजि के राइ ।
 निज निज आयुद्ध कर लीये, चमकावत अचिकाइ ॥५८॥
 केई फिरावत कुंत कर, गदा उछारत उंभि ।
 कोई तीर अलाव ही, रंभि निशावा संभि ॥५९॥

केईक सुरसभा विधे, सरन मरन की बात ।
 धपने ही मुख मान सौ, भाषण हैं बहु भाँति ॥६०॥
 तो लौ हरि कौ दूत तहाँ, गयीं करन के तीर ।
 नति करि भगतिहि बीनयो, मो बच सुनिये धीर ॥६१॥
 जुगति होई सौं कीजिए, सुनौं सति धबनीस ।
 जिन भाषति नहिं अन्यथा, कौं है हरि चम्पैस ॥६२॥
 कुरु जागल सुभ देश कौ, सकल राजा तुम सेह ।
 पाहुं पुत्र कुन्ता जनित, मानहु मी बच एह ॥६३॥
 भ्रात पञ्च पाठव जहाँ, तहाँ धायी तुम वीर ।
 बचत दूत के सुनत हम, बोल्यो कएँ सुधीर ॥६४॥
 भब हम भावन जुगत नहिं, न्याय उलंघहि केम ।
 राजा रन के सनमुखें, नीति न त्यागत एव ॥६५॥
 सेवित नृप कौ रन विधे, मरयन मुखे कोइ ।
 जो मुखे तो भव लहै, अपजस जग मैं होइ ॥६६॥
 निहचै सेतै गर पछै, पाठव राज छिनाइ ।
 दै ही नृप पद कौरवहि, यही कही तुम जाइ ॥६७॥
 यो मुनि निकस्यो दून तब, गयी तहाँ सुबिचार ।
 जहाँ चक्री कौरव सहित, बैठे सभा मझार ॥६८॥
 नति करिके यो बीनयो, सुनौं चक्रि तुम बात ।
 सन्धि करौ जाद्वन सौं, धीर भाँति नहिं साँति ॥६९॥
 साचि सहित सुनि जिन उकति, केह्यव तैं तुम मति ।
 गगा सुत कौ नास है, नृप सिखंडितै सति ॥७०॥
 घृष्टाजुन के हाथ तैं, मरण द्रोण कौं जान ।
 धरम पुत्र तैं मृत्यु है, सत्य तनी परवान ॥७१॥
 दुरजोधन की पञ्चता, भीमसेन तैं गन्य ।
 जयद्रथ पारथ हाथ तैं, कारन सुत अभिमन्यु ॥७२॥
 कुरु पुत्रन कौ मृत कहीं, जानहुं भागव राइ ।
 निहचै तैं यह जिन कथित, हम जानत है भाइ ॥७३॥

भी कहि निकस्यौ ब्रूत सी, द्वायपुर में धारः ।
 नमस्कार करि हरि भर्ते, कहाँ कि सुनिये राइ ॥७४॥
 धाई तिनकी बाहनी, क्रुद्ध खेतहि हे देव ।
 जुद्ध बिषै सकट भये, कहाँ न धावत एव ॥७५॥
 तुम कुं प्रभु संतव्य है, तुरितहि भव क्रुद्ध खेत ।
 सनून सी जोषव्य है, जुद्ध बिषै जय हेत ॥७६॥

सोरठा

ऐसी सुनि हरि धूर रण की उदित चित्त भये ।
 पाष जन्म की पूरि भू अम्बर धुनितै सुन्यौ ॥७७॥
 सुनत सङ्घ की बाजि सीमा केसव की बली ।
 क्रुद्धखेतहि रन काज, राजन इन्द्र चमु मनी ॥७८॥

सबैया २३

माधव की चतुरप चमु चल तै चल चाल लई अचलाई ।
 मानहुं भेटि दई पगलै वरि रैनु भई सु अकासहि धाई ।
 कै अकुलाई कै मार परै भय भीरु भयै सुर लोकहि धाई ।
 कै उमही अरि जारन की परताप दवानल धूम महाई ॥७९॥

अथ चतुरंग चमु' वर्णनं

— प्रथम गज वर्णनं —

मत्त मयंद भरै मव नीरहि स्याम मनीं वन काल घटाई ।
 सेतु सुकेतु लसै तिनपै बग पंकति की परसी उपमाई ॥
 कंचन की चमकै चहुँ क्षीर बनी चउरासि किधौ अपलाई ।
 घेरि चले हरि रूप धरै मनु भेटन कौ अरि शीघ्रमताई ॥८०॥

— अथ रथ वर्णनं —

सागर क्षार अथार चमु' अरि तारन कौरव पोत सहार्ई ।
 अथचई अर अन्न धरै अथ अन्न चले मनु पौन बहार्ई ॥

उन्नत केतु रथी षटु खेवटई सजि ता वन की गति पाई ।
 धायुष पंच पदारथ पूरन सूरन कौ रम में सुखदाई ॥८१॥

— अथ अश्व वर्णन —

चञ्चल चाल चलै चल वामर, चाय तुरंगम अंग सुहाए ।
 किकिनि हार गरै भय पाखर तापर कचन जीन कसाए ॥
 मारू बजै तजि नीद नचै परचै नही जमके मटवाए ।
 पीन के पूत किषी बडवा सुत सत्रु समुद्रहि सोखन घाए ॥८२॥

— अथ पदाति वर्णन —

स्पांग सु कौच कडी दिडलाइ, किषी तन पें वन की छवि छाया ।
 सूर पमादल डाल विसाल महा करवाल लयें कर घाए ॥
 काचै कंमान कटारि छुरी सर कोस सु खींचि कटिकाए ।
 दुरजन के दल वारन कौ मनु दीरि चले जम पुत्र महाए ॥८३॥

दोहा

ऐसी विधि चतुरंग दल, लीनें जादव राई ।
 भाइ ठये कुरुखेत तट, महा उदय कौ पाइ ॥८४॥
 दुनिमित्त तब बहु भये, जरासंधि की सैन ।
 दुख के सूचक प्रगट ही महा अजस के दैन ॥८५॥
 मयी राहुतै रवि गहन, गगन माहि भयदाई ।
 बरस्यी बारिद बिन समै, दीनी सैन बहाई ॥८६॥
 प्रात ही काग धुजान पै, रवि सनमुख एडन्ति ।
 घुड ऋड छत्रादि पै, बैठे नखनि खनन्ति ॥ ८७ ॥
 भू कम्पन अनहद रुदन, मार मार धुनि बाह ।
 बार-बार उलका पतन, शबिर विष्टि दिगदाह ॥८८॥
 कुसुगन लखि कौरव पति, मन्त्रि प्रतौ यी भाखि ।
 दुनिमित्त हे मन्त्रिपति, लखीयत हे बहुं भाखि ॥८९॥
 मंत्रि कहै भो प्रभु कहाँ, नाहि सुनी दुख बात ।
 मिलि है सबहि तिमिनि ज्यौं, मह कुरुखेत विख्यात ॥९०॥

सरिता श्चिर प्रवाह की, बहि है या भू माहि ।
 तामे स्नान करे बिना, रहि है कोऊ नाहि ॥११॥
 राक्षस भूत पिशास बन, बाहूत बलि नर मांस ।
 तिनके तिरपत कारनै, मरि है बहु भट रासि ॥१२॥
 मु छि फिकारत राक्षसी, निरत करत आकास ।
 राजनि की बलिता धनी, हूँ हैं विषवा आस ॥१३॥
 गिद्ध स्याल मङ्गलात अति, अत पात्र कै भाल ।
 होइ धरनि लोचनि मई, अरुन बदन विकराल ॥१४॥
 जरि है आयुष अगनि तै, कीरव बस बिसाल ।
 यौ भापत बिग दाह यह, राज चाल भुचाल ॥१५॥
 कुत्सित रन की खेत है, यह कुद खेत कुखेत ।
 रुदन करत अनहव असद, कीरव नासत हेत ॥१६॥
 फुनि दुरजोधन यौ कह्यो, कहो मत्रि मो इष्ट ।
 कितनी है अरि बाहिनी, कितने भट हम सिष्ट ॥१७॥
 सो बोल्यो सुनिये नृपति, जे भूपति बल जोर ।
 दखिनबासी ते सबै, भये विष्णु की ओर ॥१८॥

सवैया २३

है बहुती करि सिद्धि कहा, प्रभु काहर स्यारन सूरनि मारै ।
 एक अनजयतै सब भूपति, ए रण मै न बराबर सारै ॥
 कोई समर्थ निवारन की नहि, जा हरि सौं असुरादिक हारै ।
 और हली हल मूसल चारत, जास नसै अरि हूँ अय भारै ॥१९॥
 विश्व सुप्रग्य यती प्रभुखा, जिस सिद्धि भई अरिनासक धारी ।
 भार कुमारि सुताहि निवारण, की रण मै नहि सैन हमारी ॥
 पाबनि पावन सत्रु बिनासक, भूपति भूप भुजाबल धारी ।
 मोहि न दीसत कोई बली, तुम ता समहा बल को अपहारी ॥२०॥

बोहरा

सात अछोहिनि बस सहित, नूपति बली प्रलस्त ।
 तिनकी पाइ सहाइ हरि, सब धरि करे निरस्त ॥१०१॥
 एकादसहि अछोहिनी, दल दुरबल हम साथ ।
 कहा होत बहुते भये, जो न बली ह्वै नाथ ॥१०२॥
 ऐसी सुनि दुरजोष नूप, कछो चकि प्रति सर्व ।
 सत्रुन की तिन सम गिनत, धारत चित्त धति गर्ब ॥१०३॥

सर्वेभ्या २३

मागध यी मद अंध भनी, अहि जोर कहा बनिता सुत धागै ।
 कौली रहै सम भार धरा परि, भोर भये रवि की कर लागै ॥
 ज्यौं बिचरै मृग होइ सुछदन, केसरि सोभित केसरि जागै ।
 त्यों मुक्त कौं रण मांहि धरी, सब देखत ही दश हू दिसि भागै ॥१०४॥
 यों कहिके त्रय लख पती, गजराज चढे रण कौं चढि आयी ।
 ताही समे दिसि नाथन कौं, पसहुं दिसि साथहि कंप दिबायो ॥
 संग लये गजराजनि के नर, छत्र निसै नभ धांगन छायो ।
 रेणु उढाय चमुं चपनै धन, रूप भये तिन सूरहि पायो ॥१०५॥

बोहरा

जरासंधि निज सैन मै, चका व्युह सु रचाय ।
 गरुड़ व्यूह श्रीकृष्ण नै, ठान्यौ बहु भय दाय ॥१०६॥

सर्वेभ्या २३

बोऊं महा बल दारुन तैं इम, धोर भयी तम भू रज छाये ।
 जाय छिपे जुग कोकनि के निज, धालनि मे रवि अस्तइराये ॥
 काग पुकारि छठे भय पाय सुखोसहि मे निसि के भरमाये ।
 पुख पन्यौ धति कोप जग्यौ, जम कैं परखै प्रगटी रन ठाये ॥१०७॥

बोहरा

माधव मागध यौ धरे, एक राज कै हेति ।
 जीवन ममता तजि सुभट, लरन मंडे कुरुखेत ॥१०८॥

सोरठा

उमगि चले रन बेत, दुहुं घोर के सूर यी ।
 स्वामि काज के हेत, निज निज भायुष हाथ लीं ॥१०६॥
 करत घोर संग्राम, तजि सनेह निज देह की ।
 बिसरि भाम सुख वाम, सुमरि सूरपन सूरही ॥११०॥

अडिल्ल

असि निकासि ललकारि, चले निज कोस ती ।
 देत सत्रु सिर मांहि, भटाभट रोख ती ॥
 घन कुदाल ती जँसै, बली भेदिये ।
 कुंत अप्रतै त्यों, अरि काया छेविये ॥१११॥
 घन समान भट केइक, अति ही गजि कै ।
 गुज्जं घात ती मारत, अरि कौं तजि कै ॥
 रकत धार निकसी, गज कुंभ विदारि ती ।
 भई लाल दस दिसि, मनु कुकुंभ विदारि ती ॥११२॥
 हनत अश्व असवार, सुहय असवार हीं ।
 धाइ धाइ रथ सारथ रथहि हुकार हीं ॥
 मत्त मत्त गजराज कै, सनमुख भावही ।
 कुंभ कुंभ ती, बंतहि दत भिरावहीं ॥११३॥
 बान बान ती छेदि, अनूढंर सूरहीं ।
 खींचि खींचि आकर्णहि, अंबर पूरही ॥
 परस परस ती, दण्ड हि दण्ड सुखंड ही ।
 करत जुद्ध परचण्ड, महाबाल बंड ही ॥११४॥
 चकि सैन ती हरिबल, भाज्यी ता समै ।
 अल प्रवाह ज्यरै, दावानल ब्वाला दमै ॥
 कुंवर संबू तब निज जन भीरज धार ती ।
 बुढयीं जुद्ध की, उडत अरिबन मारतौ ॥११५॥

छेम विद्धि वग तब ही सन्मुख धाईकै ।
 लह्यो सबसौं धति ही बल प्रगटाय कै ॥
 करयो संबु नै रबबिन भूमि गिराइयो ।
 जुद्ध छोडि सं लेखर, तब ही पालाईयो ॥११६॥
 उठयो धीर खग तोली, रण कों मद धरै ।
 विद्या माहि सुविसारद, प्रायुष धनुसरै ॥
 करयो संबुर्तै सो भी, निरबल जुद्ध तै ।
 कहयो भाजि मत खग रे, धव तूं जुद्ध तै ॥११७॥
 बार बार ललकारयो, धैसै भाधि कै ।
 गयो भाजि खग तो भी, जीबहि राखि कै ॥
 कालसबर सुत वही, धायो खगपती ।
 हनत सगु कौ पहिरै, कंकट विड धती ॥११८॥
 कुबर सब के सनमुख, धायो जुद्ध कौ ।
 धनु चढाइ सरलाइ, बढाइ बिरद्ध कौ ॥
 तबहि संबु कौ, बज्जिसु धायो मार ही ।
 मेघ धोष ज्यौं बरबत, शर की धार ही ॥११९॥
 भनै मार खग प्रति, तूं जनक समान है ।
 जुद्ध जुक्त नहि तो, संग न्याइ प्रमान है ॥
 फिरि सु जाउ तुम तातै, हम सौं मत लरै ।
 तब हि मार सो, खगपति धैसे उखरै ॥१२०॥
 स्वामि काज के कारी हम सेवय सही,
 जुद्ध मांहि वच ऐसे कहि ने है कही ।
 कर निसक तुं तातै धनु सधान ही,
 जुद्ध मांहि नहि दोष धरे धरि हान ही ॥१२१॥
 तबहि मार धर काल सु संबर गाजि कै,
 करत जुद्ध जुग जोषा प्रायुष साजि कै ॥
 सगी बार बहु रति पति कौ लरतै जबै ।
 तज्यो दान प्रशपटी चिदामय तवै ॥१२२॥
 सकल शस्त्र करि व्यर्थ भयो तब खग पती ।
 पुन्यबंत स्यौं चलै न बल धरि कौ रती ।

काजसंबरहि बाधिकर्यो निज रथ विवै,
 सस्यषेट तब आभी रण कै सनमुखै ॥१२३॥
 तबहि मारनै छोडै सर बहु तीछना,
 छेवि सस्य की संदन कीनी जीरना ।
 सस्य और रथ चडि कै रण भति ही कर्यो,
 सिस्सुपाल को भनूज सुनलौ भनूसरयो ॥१२४॥
 हत्थी मार कौ सरतै नूछित कर दीयो,
 बहुरि बान मन तजि कै रथ बूझित कीयो ।
 सिर्यो स्वामि भरु देख्यो रथ टूट्यो जबै,
 भयो सारथी भति हीं भय पीड़ित तबै ॥१२५॥
 हूँ सषेत उठि बँट्यो तोलौ काम ही,
 सुधिर चित्त हूँ बोख्यो गुरु गण धाम ही ।
 ग्रहो सारथी हिरदै भय नहि धारिय,
 भये भीत रण माहि अरिसौं हारिये ॥१२६॥

दोहरा

रण सनमुख काहर भये, सुर नर सभा मझार ।
 खेटन मैं पाठव नमैं, लजीए पावत हार ॥१२७॥
 फुनि दशाहँ बल कृष्ण मैं, धावै हम कौं साज ।
 तातै या तन असुचि तै, हूँ है कोन सुकाज ॥१२८॥
 कीबै पुष्ट शरीर कौं, करकै सरस ग्रहार ।
 को गुण तासौं जुद्ध मैं, जो भाजी भय धार ॥१२९॥
 यौं कहि मनमथ भन्थ रथ, चडि सारथि धिर कीन ।
 सिस्सुपाल के भनूज सौं, बहुरि भयो रण लीन ॥१३०॥

अड्डिलस

लगे जुद्ध कौं दोऊ रण कौबिद महा ।
 दुहुं मडि तिन के आभी हरि तहां ॥

तबहि सस्य खग धायी भट प्रति विष्णु कौ ।
 कहत एम सिर खेदौ भव भैं कृष्ण कौ ॥१३१॥
 नभ खगेश नै छापी बानन सौ तबै ।
 परत दृष्टि नहि केसव रथ सारथ सबै ॥
 मनौ मद्धि सर पजर घेरे भ्रानि कै ।
 लखै सूर सब जीवित सस्य जानि कै ॥१३२॥
 कपमान रुधिरारुण नर इक भोर हीं ।
 भाइ कृष्ण प्रति बोल्यो तिस रण ठोर ही ॥
 भो मुरारि किम करत वृथा तुम जुद्ध ही ।
 हते पाडवा पाचौ रण मै ऋद्ध ही ॥१३३॥
 फुनि दसाहं से बलधर जोषा भोर जे ।
 जरासाध नै मारे रण मै ठोर तें ॥
 नगर द्वारिका सिधु बिजय नृप जोर है :
 जुद्ध माहि सो धरि नै भेज्यौ जम ग्रहे ॥१३४॥
 लई सनु नै निहचै द्वारावति पुरी ।
 भवहि नाथ क्यों भरत वृथा तुम हे हरी ॥
 भाजि जाहु तुम रण तैं जो वांछी सुखै ।
 मायामय वच सुनि इम हरि बोल्यो रुखै ॥१३५॥
 धरे दुष्ट मो जीवत जादव नृपन कौ ।
 को समर्थ नर जग मै इन के हतन कौ ॥
 वचन कृष्ण के मुनि सो मांज्यौ दुष्ट ही ।
 चल्यो विष्णु धरि ऊपरि धनु यहि कष्ट ही ॥१३६॥
 कै पिशाच खग तौलौ कोइक भाइ कै ।
 कहाी कृष्ण प्रति ऐसे भूठ बनाइ कै ॥
 भो गुपाल तुम देखहु नभ की भोर ही ।
 हत्यो भूप वसुदेवहि धरि नै ठोर हीं ॥१३७॥
 चल्यो त्यागि रन खगयनता बिन भय रत्नौ ।
 यही बात कहि वृद्ध विशेष हरि पै हत्यौ ॥

सिद्धी बान तै हरि नै छेयी छिन विर्ये ।
 तबहि कृष्ण परिवार्यो परवत्त ह्वै रुषै ॥१३८॥
 भसनि बान तै गिरि भी हरि तै नासीयो ।
 गयो भाजि तब शेषर हरि तै नासीयो ॥
 तबहि विष्णु कौ नर सुर पर ससौ घनो ।
 बहुरि घाइ तिन सब नै नुत कर्ष्यो मन्थी ॥१३९॥
 भो मरेन्द्र जब सौ लग वृजौ घाइ कै ।
 केतु छत्र रथ तेरे लुइन न घाइ कै ॥
 जाहु जुद्ध तै तोलौ भो बच धारिए ।
 धीर भाति रण भाहि धरी सौ हारीए ॥१४०॥
 भहो कृष्ण बिन कारन रन क्यों करतु है ।
 सिद्धि नाहि कछु या मै भय अनुसरतु है ॥
 लुनहु चक्र तै मस्तक भागध को महा ।
 जनबराक बिरथा ही मारै ह्वै कडा ॥१४१॥
 सुनत बात यह क्रोधित भाषब यो भनै ।
 हन्यो ताथ किम जाइ बरा को बिन हनै ॥
 यही बात कहि हरि नै असि नदन करै ।
 कर्ष्यो छेड द्वै टूक पर्यो सो भू परै ॥१४२॥
 जीवित हरि कौ सखि सुरमन यमन तै ।
 पुष्प कृष्टि बहु कीनी बिघन सुरत तै ॥
 कर्ष्यो कृष्ण तब अस प्रति कौ बिधि ठासीये ।
 चका शूह प्रति दुद्धर जासौ हानीये ॥१४३॥

दोहा

जाइ विष्णु रण मै तबै, तीति सुर लै सग ।
 चका शूह गिरि असत क्यौ कर्ष्यो छिनक मे भग ॥१४४॥
 जरासंध तब जुद्ध ह्वै, अरिशन मारन काज ।
 दुरजोधादिक तीनि भट पठए आयुध साजि ॥१४५॥

दुरजोधन के सनमुखें, जयो पार्थ परबीन ।
 रूप्य सामही नेमिरथ, धर्मज सेना तीन ॥१४६॥

अद्वित

तब परस्पर सूर लगे हुंकारि कै ।
 करत चूर्ण गज हय रथ धायुष मारि कै ॥
 सूरवीर सन्नद्ध भये रन सामही ।
 चले भाजि मुख मोरि सुकायर धाम ही ॥१४७॥
 सूरन के तन धायुष ज्यों ज्यो बवं ही ।
 नारदादि सुरगन कर नाचत हर्ष ही ॥
 भनत पार्थ प्रति यों दुरजोध हकारि कै ।
 कर्पो भस्म मै तोहि हुतासन जारि कै ॥१४८॥
 रे निलज्ज नर गर्व वृथा ही क्या करै ।
 तोहि लाज नहि भावत सनमुख खरै ॥
 यही बात सुनि धर्जुन धनु टंकोरीयौ ।
 प्रलय काल कौ मनौ घनाधन घोरीयौ ॥१४९॥
 छोडि बांन सघात सुकौरव छाड्यौ ।
 दुहुं मधि जालधर तोलों धाड्यौ ॥
 धनुष पार्थ कौ छेडी रण मे धावतै ।
 कर्पो जुद्ध फुनि दुर्द्धर सरगन छावतै ॥१५०॥
 तबहि पार्थ सौ बोल्यो रूप्यकुमार यों ।
 वृथा पक्ष धन्याय करत धविचार क्यो ॥
 वासुदेव पर कन्याहार कहै सही ।
 भव परस्व अभिलाषी तस्कर भीवही ॥१५१॥
 यह बात सुनि धर्जुन बोल्यौ रे वृथा ।
 गजि गजि किम भावत तूँ दादुर जया ॥

न्याह धीर अन्याह धर्मे विससाह हौं ।
 सीस छेदि तुम्ह जम के वेह पठाइ हौं ॥१५२॥
 वही बात कहि सरगन छोडे अर्जुना ।
 कर्वी कप्य की छिन मैं हति के चूरना ॥
 हनत विघ्न कौं जैसे श्रेयस छिनक मैं ।
 रूप खेत यौं मार्यौ नर नै तनक मैं ॥१५३॥
 जुद्ध मांहि धिर राइ जुधिस्विर रण प्रती ।
 स्वेत ध्रुव करि जो जित रथ राखित धरै ॥
 रथारूढ रथनेमि विराजत जय करै ।
 चक्र व्यूह कौं छेदि सु तीनों जस धरै ॥१५४॥
 सकल सूर नृप सज्जन जादव बल तनें ।
 भये चित धानदित पुलकित तनठनें ॥
 रुधिर नाम नृप कौ सुत सुभट सुप्रगट ही ।
 हिरन्यनाभ सेनानी मायष को वही ॥१५५॥
 लयी मारि सो रण मैं धर्मजनें जदा ।
 भयो खिन्न तिस बध लखि रवि धांप्यौ तदा ॥
 मनौ पछिमहि छागर स्नान सुकरन कौ ।
 गयौ सांतता कारन मगधम हरन कौ ॥१५६॥

बोहा

मनु सुभटन कौ मरन लखि, भाई कबना सूर ।
 भेज्यौ तुम यह जाइ कै, जुद्ध कर्वी तिन दूर ॥१५७॥
 सकल भूप निखि कै भये, धाये निज निज धान ।
 सेनापति बिन चक्रपति, बोल्थौं मंत्रिहि बानि ॥१५८॥
 सेनापति के पद विषै, धपीये धीर अनूप ।
 यौं सुनि कै तब मंत्री यौं, धाप्यौ मेचक भूप ॥१५९॥
 तोलों कौरव राइ नै, पठ्यौ दूत प्रवीन ।
 पांडव तट सौं जाइ कै, नत कर बिनती कीन ॥१६०॥

तुम सौ कौरव यौ कहत, सुनीये नाथ विचार ।
 ब्रह्म हैं जितने दुख तुमहि, दयं महा भयकार ॥१६१॥
 तिन कौ रत मैं सुमरि कै, क्यों नहिं धावत धोरि ।
 जीवत मुझौं तुमहि नहिं, छिन मैं भारीं बोरि ॥१६२॥
 यह सुन बोले पांडु सुत, उत्तर हैं न समर्थ ।
 तेरो प्रभु उचित भयो, जमपुर जानै ग्रथं ॥१६३॥
 बरासंध के साथ ही, पठवैगे जम गेह ।
 सुनि कै दूत सुकौरवहि, जाइ कही सब एह ॥१६४॥
 तोलीं रवि मन उदयगिरि, भायो देखन हेत ।
 भोर भये तहा सुभट नट, नटन लगे कुछ खेत ॥१६५॥
 मार मार करि ते उठे, धनु सर कर भ्रसि लेत ।
 सोबत जागि परे मनौं, सृष्टि हतन की प्रेत ॥१६६॥

सोरठा

सूरनि मैं सिरमौर, रथ बैठे पारथ नृपति ।
 महासरन की ठौर, प्रभन करत सारथि प्रते ॥१६७॥
 कही सुत तुम दछ, केतु ग्रन्थ लखिन सहित ।
 जे नृप नाम विपछ, तिन की वरान कीजिये ॥१६८॥

बोहरा

ऐसी सुनि कै सारथी, निरखत भरि की संन ।
 भिक्ष भिक्ष लखन सहित, भावत उत्तर बैन ॥१६९॥
 रथ सोभित जिस स्याम ह्य, धुजा बिराजत भास ।
 सुर सरिता सुत भरिन कौं, ह्य प्रायो मनु काल ॥१७०॥
 सौण सप्त साजित सुरथ, कलस केतु यह दोण ।
 रण मैं सुभटन की धुजा, धनुर्वेद कौ भौन ॥१७१॥

सो शन्वी सुरजोष यह, नीलं शर्यैव अहि केतु ।
 भरि के शोणित पांन कौं, अति उदित मनु प्रेत ॥१७२॥
 पीत भ्रम सुरग रथ, यह पुंसासने राव ।
 लखिन जाकी केतु मीं, राषत है अन्वाय ॥१७३॥
 अश्वथाम यह प्रोण सुत, हरि बुजि यक्की याह ।
 मनु दुर्जन बन दहन कौं, अहा दवानल दाह ॥१७४॥
 सत्य सनु कौसल्य यह, सीता केतु बिराज ।
 अम्ब वरुं बधूक के, यह आयी रण काज ॥१७५॥
 जाकौ रथ दुरवार अति, महाजय हठ बीर ।
 लागे लोहित वरुं हय, कोल केतु यह धीर ॥१७६॥
 अल्प नृपन कौं जानिघौं, अर्जुन नृप कपि केतु ।
 भरि केसन मुख धनुष गाईं, उद्यौ जुद्ध कै हेत ॥१७७॥

अडिल

तबहि जुद्ध की लागी गज सौ गज घटा ।
 सूरन के कर चमकत असि चपला छटा ॥ -
 धोर गजनां होत धनुष टकोर की ।
 बान वृष्टि जलधारा बरसत जोर की ॥१७८॥
 खेट खेट सौं जुद्ध करत आकास ही ।
 भूमि भूमिचर आपसमें तन त्रास हीं ॥
 खड्गपाणि के सनमुख खड्ग सुपावि हीं ।
 धनुर्धरि कौं धनुषर मारत बान ही ॥१७९॥
 कुत कुत तैं छेदहि गुर्ण सुगुर्ण ही ।
 चक्र चक्रौं मारि यदायद तर्षा ही ॥
 गजारूढ की गज आरूढ सुमार ही ।
 रथारूढ कै सनमुख रथ असवार ही ॥१८०॥
 हयारूढ की हय आरूढ बुलावही ।
 पति पति के सनमुख सरत्र चलावही ॥

निशित बान के छल तँ घसि भट गातहीं ।
 मनी दंत जम के नर मांसहि खातही ॥१८१॥
 छेदि सीस भू डारत हति करवाल की ।
 निलत सृष्टि कौ मानौ रसना काल की ॥
 परत गुर्ज की मार मनी जम श्रुष्टि ही ।
 हतहि कुंत करि तांत तनी मनु जष्टि ही ॥१८२॥
 मनु कि नाक की लात गदा के रूप ही ।
 मारि मारि बमसान करे बहु भूप ही ।
 सडग खडग तँ लागि झरा झरी ह्वँ परै ।
 धरुन धग्नि के जोर फुलिये धनुसरै ॥१८३॥
 कुत धप्रतै गज के कुंभ विदारहीं ।
 इ रन बर्यं तहां निकसत सोरिगत धार ही ॥
 अंतरंग मनु को पानल ज्वाला जगी ।
 सनु दारु अति दारुन जारन कौ लगी ॥१८४॥
 ताल पत्र सम गज के कर्ण सुहा लहीं ।
 अस्त्र अग्नि कौ मांनौ धौकि प्रजालही ॥
 इ स्ति हस्ति के सनमुख धावत अति भिरै ।
 डलय धौनतँ पर्वत मनु लुडतँ फिरै ॥१८५॥
 जुड माहि बहु धीर तुरग धनूप ही ।
 मनी चित्त असवारन के हृय रूप हीं ॥
 धनिल लाग तँ हासत रथ पंकति धुजा ।
 किधौ शत्रु के रयहि बुलावन बी भुजा ॥१८६॥
 लडं केस को पावण चछु रूपतिहीं ।
 मनी काल के किंकर गरजत मत्तही ॥
 धोर धीर संग्राम करत यौ पूरही ।
 स्वामि कार्य पारयन धरितन चूरही ॥१८७॥

बौहरा

गंगासुत तारण विषै, पनिच चाप सौ तान ।
सनमुखहीं अभिमन्यु कै, धायी धरि अभिमान ॥१८८॥

अडिल

तब कुमार नै प्रथमहि बान चलाइ कै ।
धुजा भीष्म की छेदी क्रोध बढ़ाइ कै ॥
मनु महत्वता उग्रत कौरव नृपन की ।
करी नास रण माहि सु सोभा धरण की ॥१८९॥
धुजा और आरोपि मुनिज रथ कै विषै ।
गगपुत्र नै दस सर मारे हूँ रथै ॥
धुजा कुमार की छेदी जब गागेय ही ।
तब कुमार नै मारे सर बहु भये ही ॥१९०॥
रथीबोह धुज छेदे गंगा तनूज के ।
नसत बज्रतै जेम कगुरे बुरज के ॥
सकल सूर मुरवानी तब भ्रंसे भनी ।
बली धन्य अभिमन्यु धनुर्धर है गुनी ॥१९१॥
मनो पार्थ यह दुजौ है साक्षात ही ।
भयो भूमि मैं सुस्थिर बर विख्यात ही ॥
बानन तै इन नासे मनु धनेक ही ।
हनत नाग निर अकुसि जिम हय भेक ही ॥१९२॥
पार्थ सारथी उत्तर नामा रण विषै ।
तिन बुलाइ कै लीन्यौ भीषम सनमुखे ॥
परयो धाइ धरि तौली सत्य सुनाम ही ।
महाधोर रण मार्यौ उत्तर सांम ही ॥१९३॥
कुंत खड्ग धनु धारै सत्य सुकृद्ध तै ।
हत्थी सारथी उत्तर जुद्ध विरुद्ध तै ॥

मनु प्रचड मुजदड सुपारथ की गिर्यो ।
 सुत बिराट की उत्तर पृथु पृथ्वी पर्यो ॥१६४॥
 स्वेत नाम तसु भ्राता धायो ता समै ।
 लयो सत्य ललकारि अनूज के नासमै ॥
 तिष्ठ तिष्ठ रे सत्य यहै रण ठाइ है ।
 अनुज बाल मो मारि कहा अब जाइ है ॥१६५॥
 केतु छत्र सब शस्त्र सुता के तोडि कै ।
 कर्यो मत्प की बिहवल कवचहि फोरि कै ॥
 घोर मार बहु दीनी स्वेतकुमार ही ।
 मर्यो सत्य नहि तो भी करत सिपार ही ॥१६६॥
 भयो क्रुद्ध गगामुन याही अतरै ।
 परयो धाड दुहु मधि मरासन को घरै ॥
 करत जुद्ध तिन रोकयो रण मै स्वेत ही ।
 लयो भीष्म भी छाड सरन तै खेत ही ॥१६७॥
 ह्वै अदृश्य रवि नभ मै आये मेह ज्यो ।
 बान स्वेत के छाये भीष्म देह त्यो ॥
 देखि भीष्म को विह्वल कौरव घाइयो ।
 मारि मारीये याहि कहन यो आइयो ॥१६८॥
 स्वेत सामनै आवत लखि दुरजोध की ।
 पार्थ ताहि ललकारि लयो घरि क्रोध को ॥
 कहत पार्थ रे कौरव तु कहा जातु है ।
 मो भुजान तै तो मद अबहि बिलातु है ॥१६९॥
 वच प्रचड यो भाखि दुर्जोधन रोकीयो ।
 धनुष खीचि गाडीव सु नर टकोरीयो ॥
 हत्यो आदि दस सरतै कौरव ईसही ।
 बहुरि बीस फुनि मारै इषु चालीसही ॥२००॥
 मारि मारि करि तीरो जैसे छाइयो ।
 तबही क्रोध बहु कौरवपति तै लाइयो ॥

लगे पार्थ दुरजोधन दोउ जुद्ध कौ ।
 धरत क्रुद्ध मद उद्ध बडाइ विरुद्ध कौ ॥२०१॥
 खडग खडग तै भारत कुंत सुकुंत ही ।
 बान मान तै छेदत धनुष घुतत ही ॥
 दड दड सौ खडत प्रति बल बंड ही ।
 धीर धीर सग्राम मंड्यौ परचड ही ॥२०२॥
 नूप विराट कै नदन तीलों रण विषै ।
 करत जुद्ध धरि क्रुद्ध पितामह सनमुखै ॥
 चाप छत्र धुज छेदी भीषम के तहा ।
 हत्यौ घात फुनि तास उरस्थल मै महा ॥२०३॥
 सिथल होइ कै गिरन लग्यौ तन भार ही ।
 कौरव सैन भयो तब हा हा कार ही ॥
 भयो दिव्य धुनि तबहि सुरन की गगन तै ।
 अहो भीषम मत होउ सु काइर लरन तै ॥२०४॥
 अहो धीर रन माहि सजि कै धीरता ।
 तोहि मारनै वीरी तजि कै भीरता ॥
 यही बात सुनि फुनि धिर आयुष होइ कै ।
 सावधान ह्वै रथ पै धनु सजोइ कै ॥२०५॥
 साधि लक्षि सर छाडि सुमार्यौ स्वेत ही ।
 त्वाइ घाव हड सो जु पर्यौ रन खेत ही ॥
 सुमरि पब पद इष्ट गयो सुरलोक सौ ।
 लहत सर्व सुख सुमिरत जिन तजि सोक सौ ॥२०६॥

दोहरा

तोली भई निसीधिनी, मरत लखे जोषार ।
 मानौ रण कौ वर्जती, भाई करुणा सार ॥२०७॥
 सूर छिपी हरि आदि सब, आये निज निज धान ।
 सुत कौ बध वीराट सुनि, रुवन भयो दुख खानि ॥२०८॥

हा सुत सगर के विषै, किन हू न राख्यौ तोहि ।
 हा धरमातम धर्मसुत, क्यों न रख्यौ तुम सोहि ॥२०६॥
 भीम मूर्ति हा भीम भट, हा हा अर्जुन राइ ।
 तुम देखत क्यों सत्रु नै, मार्यौ मो सुत ठाइ ॥२१०॥
 तब जुधिस्थिर राइ न, करी प्रतिभ्या घोर ।
 सत्रहमे दिन भाज तै, हति हौ सत्यहि ठौर ॥२११॥
 जो नहि मारै तो तबै, भंपा पातहि मंडि ।
 सब के निरखत मान तजि, जरी अगनि के कुंड ॥२१२॥
 खडक सत्रु सिखंडियो, बोली बचन प्रचंड ।
 नवमे बासर भाज तै, करी भीष्म के खड ॥२१३॥
 यही प्रतिज्ञा हम करी, पूरन हूँ जो नाहि ।
 अपने तन को होम तौ, करी हुतासन माहि ॥२१४॥
 धृष्टद्युम्न फुनि यौ कही, मो निहचै यह ठीक ।
 सेनानी को मारि हौ, यामै नाहि अलीक ॥२१५॥

सोरठा

उदय भयो दिन साज, तोली दिनकर हरत तम ।
 मनु देखन के काज, कारज भारत भटन कौ ॥२१६॥
 लखे ग्रहन हथियार, मार मार करतें सुनें ।
 भयो सूर भय भार, तातै कपत ऊदयी ॥२१७॥

अडिल

भये भौर तब जोधा दोऊ घोर के ।
 महा जुद्ध धारंभत धाये घोरि कै ॥
 तीछन शस्त्र सौ देह परस्पर खंड ही ।
 हस्ति हस्ति श्री रथ रथ हय हय प्रचंड ही ॥२१८॥
 पत्ति पत्ति कै सनमुख धावत जुद्ध कौ ।
 मारि मारि मुख भाखि बढावत क्रुद्ध कौ ॥

लखिन तै पहिबानि भटन के सनभुखै ।
 चले षाड रण माहि घनंजय ह्वै सखै ॥२१६॥
 मनी केसरी मत्त गयदन कौ हतै ।
 भूपन कौ त्यों अर्जुन हति कै जय रतै ॥
 घोर बीर रण माहि पितामह षाड्यौ ।
 असंख्यात सर तै नर कौ तिन छाड्यौ ॥१२०॥
 इन्द्र पुत्र सरि घारा भीषम कूलही ।
 और राइ ठहराइन ज्यौ तृन पुल ही ॥
 बानन तै सुर सरिता सुत नै नभ छयौ ।
 मनौ मेघ जल बरषन कौ उदित भयौ ॥२२१॥
 अंधकार भू माहि कर्यौ सर छाड कै ।
 करत राति मनु दिन तै सूर छिपाइ कै ॥
 करे पार्थनै ते सब निरफल छिन विवै ।
 करत जुद्ध बहु धीरज धरि कै मतमुखै ॥२२२॥
 छुटत पार्थ के बान महा परचड ही ।
 करत खड बल चड गजन की सुंड ही ॥
 चरन हीन हय कीने उभ्रत छेदि कै ।
 करत चूर रथ चक्र सनं तै भेदि कै ॥२२३॥
 कवच चूर करि सूरन के सर फोरि कै ।
 मर्मथान घति नमं सुघसहितु जोरि कै ॥
 सकल पार्थ नै छेदे धनू गांडीव तै ।
 मरे भूरि भट रण मै छुटि कै जीव तै ॥२२४॥

सवेया २३

बसि कै निषंग बास बैसि कै सरासन पै ।
 सर ही के रूप ह्वै अकास मै उडतु है ॥
 तीछन है भाल चुंब सर को कठीर कंठ ।
 पीछै पर लाइ कै पनिच सो छुटतु है ॥

परत है छुत होइ सुरन के तननिपै ।
 भ्रमिष के खान हार हिंसा ही करतु है ॥
 ऐसे बान अर्जुन के जम के सिचान किषी ।
 जिन्हे जाइ दावै ते सामन भरतु है ॥२२५॥

दोहा

जहि विधि सर अर्जुन तनै, छुत लखे दुरजाध ।
 भीषम को निदत तबै बोली धारत काध ॥२२६॥
 नात तान तुम रग विषे यह धारभ्यी केम ।
 हार हात निज मैन की जीतत दुजन जेम ॥२२७॥
 रहै । शकै रग मै जथा, यह पारथ दुखदाड ।
 रत पितामह सा करी, जिहि विधि शत्रु नसाइ ॥२२८॥
 अगि ध्राये रग सनमुखे, का भट ह्वै निहचत ।
 नातै बान प्रचड तजि, हतै शत्रु की सत ॥२२९॥

अडिल

यही बान सुनि गगासुन पारथ प्रनै ।
 भया जद्र की उचिन ह्वै जेभित अनै ॥
 जहि इन्द्र मुन बोली सुनि भीष्मपिता ।
 हाट देस यह मून्य सबै तूमो यी गिता ॥२३०॥
 जमावार का ताहि तथापि पठाड हा ।
 अरुहि मारि जम बी पहनर कगड ह्यौ ॥
 बच कठोर कहि असे लागै जुद्ध की ।
 हत निदई भरत बढाइ विरुद्ध कौ ॥२३१॥
 तब हि द्राण रग माहि धनुष चढाइ कै ।
 वृष्णसुमन क सनमुख ध्रायी धाइ कै ॥
 छुरक बान तै गुरु नै रथ धुज छेदए ।
 बहरि धृष्टि नै छत्र धुजा तिस भेदग ॥२३२॥

शक्ति बान तब छोड़्यौ गुरु नै तुरित ही ।
 घृष्टिद्युम्न नै छिन मैं छेद्यौ परत ही ॥
 तीछन बुधि घृष्टाजुन गुरु पै घाइ कै ।
 लोह दड की मारी जोर बगाइ कै ॥२३३॥
 तीछन बान तै गुरु नै तब ही छेदि कै ।
 खंड खंड करि डार्यौ छिन मे भेदि कै ॥
 तबहि द्रोण गुरु ढाल लई कर बाह नै ।
 पकरि खडग को धायो हाथ सु दाह नै ॥२३४॥
 घृष्टद्युम्न को मारन सनमुख ही चलयौ ।
 मनो क्रुद्ध ह्वै काल बिदारन को चलयौ ॥
 इसी अंतरै भीम गदा ते हस्त ही ।
 सुत कलिंग की मार्यौ करि कै पस्त ही ॥२३५॥
 नीतवत बहु उन्नत पुत्र कलिंग की ।
 पर्यौ शीघ्र मनु कौरव दल चतुरग की ॥
 करे भीम सत्रासित कौरव नृपत ही ।
 धरत रोस रण माहि सु अरिगन दलत ही ॥२३६॥
 गदा घात तै सात सतक रथ चूरए ।
 सत्रु सैनि सघारि मही मे पूरए ।
 इक हजार हति हाथी कीने छय सही ।
 धोर बीर रण उद्धत पावनि जय सही ॥२३७॥
 इसी अंतरै गुरु नै तरुहि कुठार ज्यौ ।
 खडग घृष्टि की खेद्यौ तीछन धार ल्यौ ॥
 जुद्ध माऊ अभिमनु सु तोली घाइ कै ।
 टूकि टूकि रथ कीन्यौ गुरु की घाइ कै ॥२३८॥
 तबहि घाइ कै पोहुच्यौ सुत दुरजोष की ।
 नाम सुलखमण सु मानौ पुंजक रोध की ॥
 धावत ही तिन धनूष सुभद्रा सनु की ।
 खड़ खड करि डार्यौ मानौ ऊन की ॥२३९॥

धीर चाप अभिमन्यु सूली तब धाड़यो ।
 छिनक मांहि धरि कौ दल सकल भगाइयो ॥
 तबहि सत्रु तब इकठे ह्वै भति ही रुषै ।
 पार्थ पुत्र कौ वेडि लयो रण के विषै ॥२४०॥
 पार्थपुत्र पचानन समयो हेरियो ।
 मनो सिध की मत्त गजो मिलि घेरियो ॥
 तबहि धाइ के धजुन धनु गाढीध तै ।
 सकल पुत्र के सत्रु विनामे जीव तै ॥२४१॥
 नसन मेष के सच्य जैसे पवन तै ।
 उडत सत्रु गन तैसे नर के सरन तै ॥
 जुद्ध माहि जिहि ठौर धसत पारथ बली ।
 तिमि ठौर परि जाहि धरिन को हल चली ॥२४२॥

दोहर।

इहि विधि जोधा जुद्ध मै, नित प्रति करतै जुद्ध ।
 जब धायो दिन नवम तब, भयो सिखडी क्रुद्ध ॥२४३॥
 लीनो गुरु गागेय कौ, निज सनमुख ललकार ।
 तब सिखडि प्रति पार्थ यी, बोले वचन विचारि ॥२४४॥
 हे सिखडि धरि हतन कौ, सर प्रचड यह लेहु ।
 जा मरसू हम पूरवै, जारयो खड बने हु ॥२४५॥
 तब सिखडी बल चड नै, लीन्यो तब वह बान ।
 धरि मृग खडन को महा, धायो सिध समान ॥२४६॥

अडिल

करत खड धरि सैन सिखंडी भूप ही ।
 उठ्यो जुद्ध को क्रुधित जम के रूप ही ॥
 द्रुपद पुत्र गगासुल लरहि परस्परै ।
 डहु मधि नहि एकहि जय कौ प्रनुषरै ॥२४७॥

कुवम सिध मनु जुद्ध करत बन कै विषै ।
 बभ्र बभ्र बुनि गगन सुरा सुरगन अरुँ ॥
 घृष्टघुम्न नै भाइ सिलंडी भोरीयी ।
 भो सिलखडि हम देख्यौ जोर न तुम कीयौ ॥२४८॥
 जुद्ध माहि गंगा सुत अबलौं ह्वै रुषै ।
 धन समान प्रति गरजति है तो सनमुखै ॥
 फुनि सुतास कौ रथ भी दिड खहरात है ।
 भर उतग प्रति ताल घुब्बा फहरात है ॥२४९॥
 और पाषं भी पूरत है तो पृष्टि को ।
 फुनि सहाइ बैराट करत तुम इष्ट को ॥
 यही बात सुनि राइ सिलखडी घोरीयी ।
 पनिच खैचि भाकरनहिं धनु टंकोरीयी ॥२५०॥
 द्रुपद पुत्र नै गंगासुत के तन विषै ।
 सहस एक सर सांघि हते भाते ह्वै रुषै ॥
 मेघ ऊर्ष ज्यौं छावत मंडल गगन ही ।
 लयो छाइ गंगासुत तैसे गरन ही ॥२५१॥
 कौरव को बल तीलो करि सधान ही ।
 द्रुपद पुत्र पै छोडन लाग्यो बान ही ॥
 सत्रुन के सर ताके तन नहिं लगत ही ।
 मनु सिलखंडि तै नासै ह्वै भयवत ही ॥२५२॥
 घृष्टघुम्न के कर तै छूटत बान जें ।
 लगत सत्रु के उर मै बष्य समान ते ॥
 गंगपुत्र के सर जे छूटत तीछना ।
 ते प्रसून ह्वै जाहि सिलखडी के तना ॥२५३॥
 होहि दुख्य मुख रूप सु पूरव पुन्य तै ।
 मुख्य दुख्य ह्वै परनै सकल अपुष्य तै ॥
 गंगपुत्र धनु जो जो धारत कर विषै ।
 घृष्टघुम्न तिस छेवत सरतै ह्वै रुषै ॥२५४॥

छीन पुन्य नर हारत सब की साखि हीं ।
 पुत्र मित्र अरु भ्राता कोइन राख ही ॥
 गगपुत्र को कबच सिखडी नै तहा ।
 तोछन बान करि हठतै भेची दिठ महा ॥२५५॥
 मेघ धारतै जैसैं तरु बरवा समैं ।
 परै दूटि ह्वै छीन सुधिरता नहि परमैं ॥
 बान वृष्टि तैं नैसे कबच सु फटि कै ।
 परयो भीष्म को रन मे तन सौ छूटि कै ॥२५६॥
 फुनि सिखडी नै तीञ्जन सरगन छोडए ।
 हतै अश्व जुग सारथि रथ धुज तोडए ॥
 अति अकप रथ रहित सु गगामुन रल्यो ।
 कर कृपान करि अरि के हतिवे कौ चल्यो ॥२५७॥
 द्रुपद पुत्र नै तबहि तीछन सरन तै ।
 खडग छीन करि डार्यो अरि कै करन तै ॥
 तुरक बान ती हृदय बिदार्यो लीन है ।
 पर्यो भूमि परि तबहि पितामह छीन है ॥२५८॥

दोहरा

कठ प्रात तब जानि कै, लीन्यो मुभ मन्यास ।
 धर्म ध्यान हिन्दै गह्यो, धर्यो धीर्य गुनरास ॥२५९॥
 अनुप्रेक्षा चित राखि कै, सुमरि पच पद इष्ट ।
 तन भोजन ममता तजी, गहि सल्लेखन सिष्ट ॥२६०॥
 तबही रन तजि सकल नप, आई ठए तिहितीर ।
 पाडव तिस पद नमन करि, रुदन करत डम कीर ॥२६१॥
 ब्रह्मचरज आजन्म तुम, अति उन्नत ब्रतपाल ।
 अहो पितामह पूज्यमह, सकल गुनन की माल ॥२६२॥
 धर्म तनुज तब यी कहत, भो उत्तम ब्रतधार ।
 हम कौ कयो नहि मृत्य अब, आई बुल दातार ॥२६३॥

सर जर्जर भीषम कहत, कौरव पांडव सौजु ।
 अभयदान तुम देहु तुम, सबही जीवन कौजु ॥२६४॥
 करी परस्पर मित्रता, तजो सन्तुता चित्त ।
 अब लो नया ऐसे भये, तुम निहचै नहि कित्त ॥२६५॥
 जे केई रन में मरै, गये निद गति सोइ ।
 ताते कीजो धर्म अब, दस लक्षण अब लोइ ॥२६६॥
 या अंतर चारन जुगल, आए नभ तै सत ।
 शुद्ध चित्त उत्तम तपा, महा मुनीन्द्र गुनवंत ॥२६७॥
 निकट जाइ कै भीष्म के, बोले वचन गभीर ।
 तो समान पृथिवी विषी, घोर नही महाधीर ॥२६८॥
 काम मल्ल को जो सुभट, करत चित सौ चूर ।
 ता सम जग में घोर नहि, सूरन में महसूर ॥२६९॥

सवेया २३

भृकुटी कमान तान सीछन मदन बान
 कामी नर उर थान मारै जान छिन मै
 जोषित विरुद्ध जुद्ध नैनन सौ ठानै इम
 ता में ठहराइ सुर सोई सूर्यन में
 बाधि बाधि आयुध की धारै उर धीरपन
 साधि साधि साइक जे डारै अरितन में
 नदलाल सुनु भनै एतौ सूर सूरनहि
 धाइ धाइ लरै जोर जोरै घोर रन में ॥२७०॥

बोहरा

श्रीसी मुनि गंगेय भट, जुग मुनि के पग द्रव ।
 नति करि कै बोल्यौ गिरा, गुन ग्यायक गुनवृंद ॥२७१॥
 जो भगवन भव बन भ्रमत, मै न लह्यौ नृष परम ।
 कहा करौ या ठौर अब, किहि विधि हूँ शिष सम ॥२७२॥

बांनन सी ही छिन्न ह्वै, मर्यी सरन तुम प्राइ ।
 तुम प्रसाद या भव विषी, लहि ही फल मुखदाइ ॥२७३॥
 यी सुनि करि बोले मुनी, सुनौह भव्य गागेय ।
 सिद्धन कौ चित सुमिरि कै, नमन करो बहु भेय ॥२७४॥

पादुडो छद

सुभ चारि आराधन चित आराधि ।
 धरु धीरय वीर्य तन वचन साधि ॥
 वर तत्व अरथ अद्धान रूप ।
 यह दर्श आराधन लहि अनूप ॥२७५॥
 नव पदार्थ जहाँ ज्ञान होइ ।
 नय प्रमान निज उक्ति जोइ ॥
 तहा ज्ञान आराधन होई सछ ।
 फुनि निहचै आतम ग्यान तछ ॥२७६॥
 चरीण सुचरण जहा विधि विचार ।
 तेरह प्रकार अवहार टार शार ॥
 खलु प्रवृत्त चिद्रूप मद्धि ।
 चारित्र आराधन एह विधि ॥२७७॥

द्वादश सरूप विवहार बुद्ध, चिद्रूप रूप निहचय विशुद्ध ।
 तप नाग आराधन एम राइ, चित धारि आराधी सुगतिदाइ ॥२७८॥
 तपीण जुदेह तप जुगम भीति, सुभ सजम मय गुन मूल पाति ।
 अनशन प्रमुख तप बाह्य जानि, रागादि त्याग अतर सुमानि ॥२७९॥
 विधि आराधन इम प्रकाशि, मुनि चारन कीनी गति आकासि ।
 गुराबत सत गागेय सार चारौ सृ आराधन हृदय धारि ॥२८०॥
 त्यागौ ममत् आहार देह, छिम भाव सबन सी धारि एह ।
 पद पञ्च इष्ट चित जपत धीर, सुभ ध्यान धरत तजि असु शरीर ॥२८१॥
 उपज्यी सुजाइ दिवि ब्रह्म मद्धि, वर ब्रह्मदेव लहि परम रिद्धि ।
 मनयःकत सुख सुगतै सुभोग, सुख होत सहज जिन धर्म जोग ॥२८२॥

तहाँ पाण्डव कौरव रुदन ठामि, बहु सोच करत जग सुन्य मानि ।
 दुख माहि एम बीती सुरात, रवि भाइ बहुरि कीन्वीं प्रभात ॥२८३॥
 इहि भांति जीव संसार माहि, नित काल भ्रमत धिर द्रौत नाहि ।
 लछिमी सुचपल चपला समान, संध्या प्रभासम धायु जान ॥२८४॥
 सुत बहु सुखादिक छिनक मंग, इम जानि रहौ नित धर्म सग ।
 बर बुद्धि गतसुत ब्रह्मचार, सुलरिद्धि धार सुर सदन सार ॥२८५॥
 फुनि पछ छीन कौरव कुराइ, बल हीन दीन ह्वै रुदन भाइ ।
 धरु धर्म तनुअ जयवत सत, जग माहि प्रगट जस नीतिवत ॥२८६॥
 कृत पूर्व धर्म सुभ समं दाइ, बिन धर्म परम दुख भरम पाइ ।
 जिन धर्म समान न धीर रत्न, जैनी सदीव सुनि धरत जत्न ॥२८७॥

इति श्रीमन्महाश्रीलाभरणभूषित जैनी नामांकिताया भारतभाषायां
 बुलाकीदास विरचितायां गानेय सन्यास ग्रहण पचत्व प्राप्ति पंचम स्वर्ग गमन वर्णनो
 नाम विंशतिम प्रभवः ।

× × × × × × ×

पुराण का अन्तिम भाग

अथ नेमिनाथ स्तुति

संबंधा

धरम के धुरधर सुनेमि नेमि नेमीसुर, दोष द्रुम दाहन कौं दावानल रूप है ।
 काम बेलि मंडप की कदन कुदाल दंड, मडित भण्ड सील पडित अनूप है ॥
 मोष मग मडन ही रोष के विहंडन हौ, वैन भवलबन दे तारक भौं कूप हौ ।
 कीजे उपगार भवसागर कौ पार भव, दीजे सुविचार प्रभू चारित के भूप हौ ॥८०॥

पढ़ाओ छंद

अन्ध प्रशस्ति

कहाँ पाण्डव चरित विसाल चार, श्री गौतमादिक भाषित सुसाह ।
 कहाँ मो प्रबोध यह भलप छीन, बलहीन तदपि वरनन सुकीन ॥८१॥

जिम बाल ग्रहण उडगन करोति, जलसिधु प्रमानस भेक पोति ।
 तिम ग्रंथ कर्षी निज बुद्धि जोग, नहि दोष ग्रहत बर दक्ष लोग ॥८२॥
 जे नर असत पर दोष संब, तिन संग न हमको काज रंच ।
 विष मय पियूष ते नरक राहि, लहि पाप महा मरि नरक जाहि ॥८३॥
 जे साधु महा पर कज्ज रक्ष, पर जद्यपि देषहि दोष सच्छ ।
 नहि धारहि तदपि विकारि भाव, ते होउ महाबस हम सहाउ ॥८४॥
 जिम चद सरद उडवस बीच, अति सोभ करत दै निज मरीच ।
 पर गुन समूह तिम सत देषि, निरदोष करत उपमां बिसेषि ॥८५॥
 राचि कै विचित्र पावन पुरान, नहि बछीं नर सुर सुष निषान ।
 इम भक्ति तनीं फल होहु एहु, पद मुक्ति परम सुब रास देहु ॥८६॥
 पुनरुक्ति जुक्त लछन सुछद, जहाँ भूल्यो वरनत वरुं बिदु ।
 तहाँ सोषि पढी जे बुध ग्रानिद, नहि निद करत ते सुगुन वृद ॥८७॥
 अलकार गनागन छद भेद, नहि जानीं रचक अलप वेद ।
 कछु भूलि देषि इस गथ मडि, मति कोप कगे कवि विपुल बुद्धि ॥८८॥

अथ मूल आचार्य

सवैया

मगन ले मूलमगी पद्मनदि नाम भए ताके, पट्ट मकलादिकीरत बषानिये ।
 कीरति भुवन तातै ताके भए चदसूर रि, कीरति विजय सुतास पट्ट परवानीये ॥
 ताके पट्ट सुभचद सजस अनद कद, पाठव पुरान परकास कर मानीये ।
 मति की उदोन तास पाइ कै बुलाकीदास, भारतविलास रास भाषा करि जानिये ॥८९॥

अथ बादशाहि वंस वर्णन

सवैया

बस मुगलाने माहि दिल्ली पति पातिसाहि, तिमिगलिंग मीर सुत बाबर सुभयो है ।
 ताकी है हिमाऊ सुन ताही तै अकबर है, जहाँगीर ताके धीर साहिजहाँ ठयी है ॥
 ताजमहल अगना अगज उतग महाबली, अवरंग साहि साहित ले जयी है ।
 ताकी अत्र छाह पाइ सुमति के उदै ग्राह भारत राह भाषा जैनी जस लयी है ॥९०॥

अथ संधकार प्राणीर्वाच

संधेया

जोनों रहैं तारागन सवन सुरईस की सागर, सुभूमि रहै रहै दुति भान की ।
भूमिवासी भौनवासी गिरि गिरि ईस वासी, बसै सिर जोति जोलो ससि के विमान की ॥
गगा आदि नदीनद कर्म भूमि कल्पतरु है, प्राब जौनौ जग वीतराग ख्यान की ।
भारत सुधेत माहिं नौनों सुविकास लहौ, भारत विलाम भाषा पाडव पुरान की ॥६१॥

अथ अन्य पाठक प्राणीर्वाच

जे नर भव्य भनाइ भनै भनि भावन सौ यह भारत भाषा ।
आदर धारि लिवाइ लिखै लिखि देहि सुनाइ सुनै सुनि भाषा ॥
सोधि सुधारि सुधारिहि सत्य सुधारस के बुध चावा ।
ते नरिद महापद पावहु हूँ है तिनकी सिव के अभिलाषा ॥६२॥

अथ सरस्वती स्तुति ॥दोहा॥

जिन बदनी सदनी सुमति, अबसरनी शिव सीउ ।
जस जननी जैनी भनी, हरनी कुमति सदीउ ॥६३॥

संधेया

वीरानन सरनी हरनी दुष दोषन की भरनी रस अनुभौं दीनी शिव मानी है ।
गोतम गुह बरनी रमनी है चेतन की कुमति की करनी पैनी परवानी है ॥
दुरित तै उधरनी धरनीधर धर्म की तरनी भौसागर की छैनी मै हानी है ।
सुमति सूर किरनी रजनी रजनीकर बदनी हमारी जग जैनी सुवदानी है ॥६४॥

दोहा

इहि विधि भाषा भारती, सुनी जिनुल दे माइ ।
धन्य धन्य सुत सौं कही, धर्म सनेह बडाई ॥६५॥
जननि जिनुल दे धन्य है, जिन रचाइ सु पुरान ।
सुगम कर्षी भाषा मई, समझै सकल सुजान ॥६६॥

अरु नर तन गुरु घन्य है, जाके वचन प्रभाव ।
 सस्कृत तै भाषा रच्यौ, पाइ सबद अरथाव ॥६७॥
 वीरनाथ जिन घन्य हैं, जाके चरन प्रसाद ।
 यह पुरान पूरन भयौ, सुषदाइक शिव आदि ॥६८॥

अथ अथ छंद प्रमाण कथन ॥सवैया ।

छापे एक करधे अठारै इकतीसे बीस चालीसह एक सोरठे पर मानिये ।
 छयालीस तेईसो पाढढी पचीसी गनिव्वही भुजग छद जैनी जन जानिये ॥
 तीनसै तिरासीडिल्ल नौसैतीस दोहा भनि टाईसै सतानबै सु चौपाई बषानिये ।
 सारे इक ठौर करि ठानिये बुलाकीदास एकादश पचसै हजार चार आनिये ॥६९॥

अथ श्लोक संख्या कथन—दोहा

सध्या शलाक अनुष्टपी, गनिये ग्रन्थ लषाइ ।
 सप्त सहस्र षट सतक फुनि, पचपन अधिक मिलाइ ॥१००॥

अथ संबत मितो—दोहा

सबत सतरहसौ चउन, सुदि असाढ तिथि दोज ।
 पुष्य रिक्ष गुरुवार की, कीन्यौ भारत चोज ॥१०१॥

इति श्रीमन्महाश्रीलाभरणभूषित जैनी नामाकिताया भारत भाषाया लाना
 बुलाकीदास विरचित्ताया पाडवोपसर्गसहन त्रयकेवनोत्पत्ति सिद्धिगमन द्वय सर्वार्थ
 सिद्धि प्राप्ति बर्णनोनाममद्धि षट्विंशतितम प्रभाव ॥२६॥

इति श्री बुलाकीदास कृत भाषा पाडवपुराण महाभारत नाम सम्पूर्णम् ॥

मिती श्रावणमासे कृष्णपक्षे तिथौ १४ वार दीतवार सम्बत् १९०५ का
 दसकत नाथुलाल पाडया का । लिखो गयो बडे मदिर वास्तै ॥

हेमराज

कविवर हेमराज इस पुष्प के तीसरे कवि हैं जिनका यहाँ परिचय दिया जा रहा है। समय की दृष्टि से हेमराज बुलासीचन्द्र एवं बुलासीवास दोनों ही कवियों से पूर्व कालिक हैं। मिश्रबन्धु विनोद ने इनका समय संवत् १९६० से प्रारम्भ किया है लेकिन उसका कोई आधार नहीं दिया। इन्होंने हेमराज एवं पाण्डे हेमराज के नाम से दो कवियों का अलग २ उल्लेख किया है। हेमराज की रचनाओं के नामों में नयचक्र, भक्तामर भाषा एवं पंचासिका वचनिका के नाम दिये हैं तथा पाण्डे हेमराज के ग्रन्थों में प्रवचनसार टीका, पञ्चास्तिकाय टीका, भक्तामर भाषा, गोम्मट-सार भाषा, नयचक्र वचनिका एवं सितपट चौरासी श्लोक, ग्रन्थों के नाम दिये हैं। इन ग्रन्थों का विवरण देते हुये लिखा है कि ये रूपचन्द्र के शिष्य थे तथा यह हिन्दी के अण्डे लेखक थे। नयचन्द्र भाषा एवं भक्तामर भाषा के नाम दोनों में समान है।

डा० कामताप्रसाद जी ने अपने "हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास" में हेमराज की प्रवचनसार टीका, पञ्चास्तिकाय टीका एवं भक्तामर भाषा इन तीन कृतियों का ही उल्लेख किया है।^१ इसी पुस्तक के अग्रे हेमराज के नाम से ही गोम्मटसार एवं नयचक्र वचनिका का नामोल्लेख किया है। डा० नेमीचन्द्र शास्त्री ने हेम कवि की केवल एक कृति छन्दमालिका (सं० १७०६) का ही उल्लेख किया है।^२ डा० प्रेमसागर जैन ने हेमराज^३ का रचना समय विषय संवत् १७०३ से १७३०

-
- | | | |
|---|---|------------------------|
| १. मिश्रबन्धु विनोद | — | पृष्ठ संख्या २५२ (४३५) |
| २. यही | | २७६ (५१३/१) |
| ३. हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास | — | पृष्ठ सं. १३१ |
| ४. हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन | — | पृष्ठ सं. २३८ |
| ५. हिन्दी शक्ति काव्य और जैन कवि | — | पृष्ठ सं. २१४-१६ |

तक का दिया है। इसके साथ ही प्रवचनसार भाषा टीका, परमात्मप्रकाश, गोम्मट-सार कर्मकांड, पचास्तिकाय भाषा, नयचक्र भाषा टीका, प्रवचनसार (पद्य) सितपठ चौरासी बोल, भक्तामर भाषा, हितोपदेशबावनी, उपदेश दोहा शतक एवं गुह पूजा का उल्लेख किया है।

राजस्थान के जैन ग्रन्थ भण्डारों में, पाण्डे हेमराज, हेमराज साहू, हेमराज एव मुनि हेमराज के नाम से अब तक २० से भी अधिक कृतियों की पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हुई हैं। लेकिन नाम साम्य की दृष्टि से सभी कृतियों को आगरा निवासी पाण्डे हेमराज की कृतियाँ मान ली गयी। इस दृष्टि से प. परमानन्द जी शास्त्री ने अपनेकान्त देहली में प्रकाशित अपने एक लेख “हेमराज नाम के दो विद्वान्” में इस भूल की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया क्योंकि इसके पूर्व प. नाथूरामजी प्रेमी, डा. कामताप्रसाद जी आदि सभी विद्वान् एक ही हेमराज कवि मानने लगे थे।

अभी जब मैंने प्रकाशनी के छूटे भाग के लिये हेमराज की कृतियों का संकलन किया तथा पंडित परमानन्द जी एवं अन्य विद्वानों द्वारा लिखित सामग्री का अध्ययन किया तो मुझे भी अपनी भूल मालूम हुई क्योंकि राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रंथ सूचियों में सभी रचनाओं को एक ही हेमराज के नाम से अंकित कर दिया गया। वास्तव में एक ही युग में हेमराज नाम के एक से अधिक विद्वान् हुये और उन सभी ने साहित्य निर्माण में अपना योग दिया। १७वीं एवं १८वीं शताब्दि में हिन्दी जैन कवियों के लिये आगरा एक महत्वपूर्ण केन्द्र रहा जहाँ पचासों जैन कवियों ने हिन्दी में सैकड़ों रचनाओं को निबद्ध करने का गौरव प्राप्त किया।

हेमराज नाम वाले चार कवि

हमारी खोज एव शोध के अनुसार हेमराज नाम के चार कवि हो गये हैं जिन्होंने हेमराज नाम से ही काव्य रचना की थी। इन चारों हेमराजों के नाम निम्न प्रकार हैं—

१. मुनि हेमराज
२. पाण्डे हेमराज
३. साहू हेमराज
४. हेमराज गोदीका

इन कवियों का सामान्य परिचय निम्न प्रकार है—

१ मुनि हेमराज

राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों में "हितोपदेश बावनी" की एक पाण्डु-लिपि उपलब्ध होती है। जिसके रचयिता कवि हेमराज हैं और जिन्होंने अपने नाम के पूर्व मुनि शब्द लिखा है। ये हेमराज कौन थे मुनि थे इसके सम्बन्ध में बावनी में कोई सामग्री नहीं मिलती। लेकिन ये मुनि हेमराज बनारसीदास के भ्राज थे क्योंकि इन्होंने बावनी की रचना संवत् १९६५ में समाप्त की थी। जिसका उल्लेख उन्होंने बावनी के अन्तिम पद्य में किया है—

हरष भवो मुख भाव काज सार्या मन वाञ्छित ।
मुनि साहिब मिल सप्राम नाम सहु जग में छति ।
तस सीस पभर्यी एह बावनी सुखदाई ।
एह पुहबोय रस वद् पथ एह सबत मह पाइय ।
प्रगट्यो गुन ए जाँ लखै प्रुब मेर धरणी धरण ।
मुनि हेमराज इम उच्चरै सुप्रखत सुनत मंगल करण ॥५५॥

बावनी में ५२ के स्थान पर ५५ छन्द हैं। जो अन्तिम दो पद्यों के अतिरिक्त सभी सर्वथा छन्दों में निबद्ध हैं बावनी का हितोपदेश बावनी के अतिरिक्त अक्षर बावनी नाम भी दिया हुआ है क्योंकि स्वर और व्यञ्जन के आधार इसके सबन्धों लिखे गये हैं। बावनी के प्रथम दो पद्यों में कवि ने मयलाचरण एव अपनी लघुता प्रगट की है—

ऊँकार रहित कार सार संसारह जाण्यो ।
ऊँकार बिस्तार सार मत्रहि भान्यो ।
ऊँकार धरदान ज्ञान पखि मुख वंइ सिन्धो ।
सह मुख तखै प्रसाक धावि ए अक्षर लिख्यो ।
मन मतिबोधस भापर्युँ करि ससविद्या बावण्य ।
भक्ति जन तुमे सांभले, व्यानि धरी एक मण्य ॥१॥
कवि चाखै व्याकरणं तर्क संपीत रसात्ता ।
भरह पीपल मुख पीत नखि जाखु नामभात्ता ।

छंद कोस निरचंड सतिहिबें भेष न जाएँ ।
 अरुप बुधि गुण ज्ञान, जाय कहो केय बसाएँ ।
 शिव देवी पय लगीहुँ, देख्यो बुद्धि प्रकास ।
 रसिक पुण्य मन रंजना, करि सतिबिया उरलास ॥२॥

इसके धागे तीन सर्वव्या छन्द बिना अकारादिक क्रम के हैं तथा पाँचवे पद्य से स्वर और व्यञ्जन के क्रम से हैं । पूरी बावनी उपदेश परक है तथा पौराणिक उदाहरणों के द्वारा अपनी बात प्रस्तुत की गयी है । एक पद्य देखिये—

आदि को कारणहार प्रभु राखि आदि रे ।
 मूलो रे गमार तुंही नर भव लोयो युंही ।
 प्रभु बिना दीये कुछ कहै बुं तोरि आदि रे ।
 काम कुं आतुर भयो पावसुं जया सरो ।
 गयी पडसी निगोह माहि कुं बन फरादि रे ।
 सोचि कहु जीव माहें भीत कं हारि जाइं ।
 एक बिगा भगवंत सर्व काम आदि रे ॥

हेमराज अचर्य मुनि सुणी सजन जन मेरो उमर्यों है जिन गुण गायबी ॥७॥

हितोपदेश बावनी की एक पाडुलिपि जयपुर के दि० जैन मन्दिर बड़ा तेरह-पंधियों के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है । कृति की लेखक प्रसस्ति निम्न प्रकार है—

इति हितोपदेश बावनी हेमराज कृत संपूर्णम् । सविद्या संपूर्णम् । संवत् १७५७ वर्षे मितौ वैशाख सुदि ११ दिने गुरुवासरे लेखयोस्तु ।

उक्त पाडुलिपि पं० विनोदकुमार द्वारा रूपनगर में बहुरजी श्री यशस्वदे जी बाबनार्य लिखी गयी थी । प्रति में १२ पद्य हैं तथा बका सामान्य है ।

पाण्डे हेमराज

पाण्डे हेमराज इस पुष्प के तीसरे कवि हैं जिनका यहाँ परिचय दिया जा रहा है । ये १७वीं शताब्दि के अपने समय के प्रसिद्ध कवि एवं पंडित थे । साहित्य केबा ही इनके जीवन का प्रमुख धर्म था । ये दृढ़ अज्ञानी आचक के इसलिये अपनी

पुत्री जैनी को भी इन्होंने धर्म प्रच्छेदी शिक्षा दी थी। बुलाफीदास कवि इन्हीं जैनी/जैनुसदे के सुयोग्य पुत्र थे जिनके प्रश्नोत्तर भावकाधार एवं पाण्डवपुराण का परिषय दिया जा चुका है।

हेमराज भावरा के निवासी थे। ये विगम्बर जैन भद्रवाल थे। गर्म इनका गोन था। इनका परिवार ही पंडित एवं साहित्योपासक था। भावरा उस समय बनारसीदास, रूपचन्द, कौरपाल जैसे विद्वानों का नगर था। नगर में चारों ओर शास्त्र बर्चा, अध्यात्म ग्रंथों का वाचन, साहित्य निर्माण एवं संगोष्ठियां प्रादि होती रहती थी। हेमराज पर भी इन सबका प्रभाव पड़ा होगा और उन्हें साहित्य निर्माण की ओर आकृष्ट किया होगा।

जन्म एवं परिवार

हेमराज का जन्म कब हुआ, उनके माता पिता, शिक्षा दीक्षा, विवाह प्रादि के बारे में उनकी कृतियां सर्वथा मौन है। लेकिन यह अवश्य है कि हेमराज ने प्रच्छेदी शिक्षा प्राप्त की होगी। प्राकृत, संस्कृत एवं राजस्थानी तीनों ही भाषाओं पर उनका पूर्ण अधिकार था। वे गद्य एवं पद्य दोनों में ही गतिशील थे। प्रच्छेदी कवि थे। शास्त्रज्ञ भी थे इसलिये समयसार, प्रवचनसार, पञ्चास्तिकाय जैसे ग्रन्थों का प्रच्छेदाध्ययन भी किया होगा और इनकी विद्वत्ता को देखकर ही कौरपाल जैसे पंडित एवं तत्त्वज्ञ ने इनसे प्रवचनसार को हिन्दी गद्य पद्य दोनों में भाषा करने का अनुरोध किया था।

कवि का सं. १७०१ में प्रथम उल्लेख पं० हीरामन्द द्वारा किया गया मिलता है। इसलिये उस समय इनकी ४०-४५ वर्ष की आयु होनी चाहिये और इस प्रकार इनका जन्म भी संवत् १६५५ के आस पास होना चाहिये। संवत् १७०६ में इन्होंने अपनी प्रथम कृति प्रवचनसार भाषा की रचना की थी उस समय तक कवि की क्षाति विद्वत्ता एवं काव्य निर्माता के रूप में चारों ओर प्रसंसा फैल चुकी थी।

हेमराज और बनारसीदास

पाण्डे हेमराज का तत्कालीन विद्वान् महाकवि बनारसीदास से कभी सम्पर्क हुआ था या नहीं इसके बारे में न तो बनारसीदास ने अपनी किसी रचना में हेमराज का उल्लेख किया है और न स्वयं हेमराज ने अपनी कृतियों में बनारसीदास का स्मरण किया है। हाँ बनारसीदास के एक मित्र कौरपाल का अवश्य उल्लेख हुआ

है और उन्हें 'ज्ञाता' विशेषण से सम्बोधित किया है। अपने लितपट चौरासी बोल में कवि ने कौरपाल का निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

नगर आगरे में बसै कौरपाल सग्यान ।

तिस निमित्त कवि हेम नै, कौयो कबित बखान ॥

हेमराज और कौरपाल

प्रवचनसार की भाषा तो हेमराज ने कौरपाल की प्रेरणा एवं आग्रह से ही लिखी थी।¹ लगता है कौरपाल परोपकारी व्यक्ति थे तथा जैन शास्त्रों के अधिकारी विद्वान् थे। वे आध्यात्मिक व्यक्ति थे तथा आगरा की आध्यात्मिक सैली के प्रमुख सदस्य थे। लेकिन हेमराज द्वारा बनारसीदास की उपेक्षा करना आश्चर्य सा अवश्य लगता है क्योंकि स्वयं हेमराज भी आचार्य कुन्दकुन्द के भक्त थे इसलिये उनके ग्रंथों का भाषानुवाद उन्होंने किया था। लगता है हेमराज का बनासीदास से मर्तक्य नहीं था तथा विचारों में भिन्नता थी। हेमराज को पाण्डे हेमराज भी लिखा हुआ मिलता है। सम्भवतः वे मध्यस्थ विचारों के थे। कुछ भी हूँ दोनो कवियों में से किसी के द्वारा एक दूसरे का उल्लेख नहीं होना कुछ अटपटा सा लगता है।

हीरानन्द और हेमराज

संवत् १७०१ में रचित "समवसरण विधान" में हीरानन्द कवि ने हेमराज

१ हेमराज पंडित बसै, तिसी आगरे ठाइ ।

गरग गोट गुन आगरो, सब पूजै तिस ठाइ ।

उपजी ताके बेहजा, जैनी नाम बिख्यात ।

शौल कृष गुण आगरो, प्रीति नीति पांति ।

२ बालबोध यह कीनी जैसे, सो तुम सुगह कहुं में तैसे ।

नगर आगरे में हितकारी, कौरपाल ज्ञाता अधिकारी ।

तिति विचारि जिय में यह कीनी, जो यह भाषा होइ नबीनी ॥४॥

अलप बुद्धि भी अरथ बखानै, अगम अगोचर पद पहिचानै ।

यह विचारि मन में तिसि राखी, पाण्डे हेमराज श्री भाखी ॥५॥

को पंडित एवं प्रवीण इन दो विशेषणों के साथ वर्णन किया है। इससे प्रकट होता है कि हेमराज संवत् १७०१ मे ही समाज में अछूता सम्मान प्राप्त कर लिया था तथा उनकी गिनती पंडितों में की जाने लगी थी।

लेकिन हेमराज कब से पाण्डे कहलाने लगे इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। मुझे ऐसा लगता है कि ये पंडित कहलाते थे और धीरे धीरे पाण्डे कहलाने लगे। और पाण्डे राजमल के समान इन्हें भी प्रवचनसार, पञ्चास्तिकाय जैसे ग्रन्थों की भाषा टीका करने के कारण इन्हें भी पाण्डे कहा जाने लगा। पाण्डे हेमराज की अब तम निम्न रचनायें उपलब्ध हो चुकी हैं—

१ प्रवचनसार भाषा (पद्य)	रचनाकाल सं० १७०६
२ प्रवचनसार भाषा (पद्य)	"
३ भक्तामर स्तोत्र भाषा (गद्य)	"
४ भक्तामर स्तोत्र भाषा (पद्य)
५ चौरासी बोल (सितपट चौरासी बोल)	संस्कृत १७०६
६ परमात्मप्रकाश भाषा	—
७ पञ्चास्तिकाय भाषा	—
८ कर्मकाण्ड भाषा	—
९ सुगन्ध ब्रह्ममी व्रत कथा	—
१० नयचक्र भाषा	संवत् १७२६
११ गुह्यपूजा	—
१२ नेमिराजमती जलबि	—
१३ रोहिणी व्रत कथा	—
१४ नन्दीश्वर व्रत कथा	—
१५ राजमती चुनरी	—
१६ समयसार भाषा	—

उक्त कृतियों के अतिरिक्त कुछ पद भी राजस्वान के शास्त्र भण्डारों में संग्रहित विभिन्न गुटकों में उपलब्ध होते हैं। उक्त कृतियों का सामान्य परिचय निम्न प्रकार है—

१ प्रवचनसार भाषा (गद्य)

कविवर बुलाकीदास ने अपने पांडवपुराण में हेमराज का परिचय देते समय जिन दो ग्रन्थों की भाषा लिखने का उल्लेख किया है उनमें प्रवचनसार भाषा का नाम सर्व प्रथम लिखा है।^१ जिसमें ज्ञात होता है कि इस समय हेमराज का प्रवचन-सार भाषा अत्यधिक लोकप्रिय कृति मानी जाने लगी थी। महाकवि बनारसीदास द्वारा समयसार नाटक लिखने के पश्चात् आचार्य कुन्दकुन्द की प्राकृत रचनाओं पर जिस वेग से हिन्दी टीका लिखी जाने लगी थी प्रस्तुत प्रवचनसार भाषा भी उसी का एक सुपरिखाम है।

हेमराज ने प्रवचनसार भाषा धारवा के तत्कालीन विद्वान कौरपाल के आग्रहवश की थी। कौरपाल महाकवि बनासीदास के मित्र थे तथा उनके साथ कौरपाल ने कुछ ग्रंथों की रचना भी की थी। बनारसीदास ने जिन पांच आध्यात्मिक विद्वानों का उल्लेख किया था उनमें कौरपाल भी थे।^२ उन्होंने हेमराज से कहा कि पाठे राजमल्ल ने जिस प्रकार समयसार की भाषा टीका की थी उसी प्रकार यदि प्रवचनसार की भाषा भी तैयार हो जावे तो जिनधर्म की धार भी वृद्धि हो सकेगी तथा ऐसे शुभ कार्य में किञ्चित भी विलम्ब नहीं किया जाना चाहिये। हेमराज ने उक्त घटना का निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

बालबोध यह कीनी जंसे, सो तुम सुनहु कहूँ तैसे ।

नगर धारर में हितकारी, कौरपाल ज्ञाता अविकारी ॥४॥

तिन विचार जिय मैं यह कीनी, जं भाषा यह होइ नवीनी ।

अलपबुद्धि भी अर्थ बलाने, अगम अशोचर पद पहिचाने ॥५॥

१ जिन आगम अनुसार तै, भाषा प्रवचनसार ।

पांच अस्ति काया अपर, कीमें सुगम विचार ॥३५॥

पांडवपुराण/प्रथम प्रभाव

२ ऊपचन्द्र पंडित प्रथम, दुतीय अतुर्भुज जान ।

तुतीय भगीश्रीदास नर, कौरपाल गुणधाम ॥

धरमदास ए पांचजन, मिलि बैठहि इक ठौर ।

परमारथ चर्चा करे, इन्ही के कथन न और । वाक्य समयसार

यह विचार मन में तिन राखी, पांडे हेमराज सों भाखी ।
 आगी राजमहल ने कीनी, समयसार भाषा रस लीनी ॥६॥
 अब जो प्रवचन की हूँ भाषा, तौ जिनधर्म बर्ष सो साखा ।
 ताते करहु बिलंब न कीजै, परभावना अंग फल स्तीजै ॥७॥

कौरपाल ने अपनी भावना व्यक्त की और उसके फल प्राप्त करने का कवि को प्रलोभन दिया ।

हेमराज सावेदनशील विद्वान थे । वे कवि एवं गद्य लेखक दोनों ही थे । गद्य पद्य दोनों में ही उनकी समान गति थी । इसलिये उन्होंने भी तत्काल प्रवचन-सार की गद्य टीका लिखना प्रारम्भ कर दिया ।

जिन सुबोध अनुसार, असे हित उपदेश सों ।
 रबी भाष अतिकार, जयवंती प्रगटहु सदा ॥६॥
 हेमराज हित आनि, भबिक जीव के हित भणी ।
 जिनवर आनि प्रवानि, भाषा प्रवचन की कही ॥१०॥

कवि ने प्रवचनसार की जब रचना की थी उस समय शाहजहाँ बादशाह का शासन था । जिसका उल्लेख कवि ने निम्न प्रकार किया है—

अबनिपति बबहि चरण, सुनय कमल बिहसत ।
 साहजिहां बिनकर उरै, अरिगन तिमिर न संत ॥

प्रवचनसार की गद्य टीका कवि ने कब प्रारम्भ की इसका तो कोई उल्लेख नहीं मिलता लेकिन वह सावत् १७०६ में समाप्त हुई ऐसा उल्लेख अवश्य मिलता है—

सत्रहसे नव ऊतरै, भाव भास सित पाल ।
 पचमि आदितवार कौ, पुरन कीनी भाष ॥१६॥

प्रवचनसार मूल आचार्य कुन्दकुन्द की प्रमुख कृति है । इस पर आचार्य अमृतचन्द ने संस्कृत में तत्व प्रकाशिनी टीका लिखी थी । यह एक सैद्धान्तिक ग्रन्थ है जिसमें तीन अध्याय हैं । जिनमें ज्ञान, ज्ञेयरूप तत्वज्ञान के कथन के साथ जैन

साधु आचार का बड़ा ही रोचक एवं प्रभावक कथन किया गया है। ग्रन्थ की भाषा प्राचीन प्राकृत है जो परिमार्जित है। यही नहीं इसकी भाषा उनके ग्रन्थ सभी ग्रन्थों से प्रौढ़ है तथा गम्भीर अथ की द्योतक है। इसका दूसरा अधिकार ज्ञयाधिकार नाम से है जिसमें ज्ञय तत्त्वों का सुन्दर विवेचन किया गया है। प्रवचनसार का तीसरा अधिकार चारित्र्याधिकार है। प्रवचनसार पर जयसेन की संस्कृत टीका भी अच्छी टीका मानी जाती है। प्रवचनसार की गद्य टीका तत्कालीन हिन्दी गद्य का अच्छा उदाहरण है।

पांडु हेमराज ने प्राकृत गाथाओं का पहिले अनुव्याख्यं लिखा है और फिर उसीका भावार्थ लिखा है। भावार्थ बहुत अच्छा गद्य भाग बन गया है। इसका एक उदाहरण निम्न प्रकार है—

जा मोक्षाभिलाषी मुनि है ताको यो चाहिए कै ती गुणनि करि आप समान होइ कै अधिक होइ असे दोइ की संगति करे और की न करे। जैसे सीतल घर के कान में सीतल जल जल राखे तै सीतल गुण की रक्षा ही है तैसे अपने गुण समान की संगति स्यो गुण की रक्षा हा है। भोस जैसे अति सीतल बरफ मिथी कपू रादि की संगति स्यो अति सीतल हो है तैसे गुणाधिक पुरुष की संगति स्यो गण वृद्धि हो है तातै सत्सग जोग्य है। मुनि को यो चाहिए प्रथम दशा विषै यह कही जु पूव ही शुभापयोग तै उत्पन्न प्रवृत्ति ताको अगीकार करे पाछै क्रमस्यो सयम की उत्कृष्टता करि परम दशा को धरे पाछै समस्त वस्तु की प्रकाशन हारी केवल जानानद मयी शास्वती अवस्था को सवथा प्रकार पाइ अपन अनीदिय सुख को अनुभव हु यह शुभोपयोगाधिकार पूण हुवा। पृष्ठ संख्या २२८

प्रवचनसार की पंचामी पाण्डुलिपियाँ राजस्थान के विभिन्न ग्रन्थगारों में सुरक्षित हैं। सवत् १७२८ में लिपिबद्ध एक पाण्डुलिपि हमारे संग्रह में उपलब्ध है।

२ प्रवचनसार भाषा (पद्य)

प्रवचनसार की हिन्दी गद्य टीका का ही अभी तक विद्वानों ने अपने २ ग्रन्थों एवं शोध निबन्धों में उल्लेख किया है लेकिन इनकी प्रवचनसार पर पद्य टीका का कही उल्लेख नहीं मिलता। १० परमानन्द जी सास्त्री जैसे हिन्दी के विद्वान् ने भी हेमराज की गद्य वाली टीका का ही नामोल्लेख किया है। लेकिन सीमांत से मुझे

इसकी एक पद्य टीका वाली पाण्डुलिपि उपलब्ध हुई है जिसका परिचय निम्न प्रकार है—

हेमराज ने प्रवचनसार का पद्यानुवाद भी इसी दिन समाप्त किया जिस दिन उसकी गद्य टीका पूर्ण की थी जिससे ज्ञात होता है कि उसने प्रवचनसार पर गद्य पद्य टीका एक ही साथ की थी। लेकिन जब उसकी गद्य टीका को पचासो पाण्डुलिपियां उपलब्ध होती है तब प्रवचनसार पद्य टीका की अभी तक पाण्डुलिपि उपलब्ध न होवे यह बात समझना कठिन लगता है। इसका उत्तर एक यह भी दिया जा सकता है कि खण्डेलवाल जातीय दूसरे हेमराज ने भी पद्यानुवाद लिखा है इसलिये आगरा निवासी हेमराज के पद्यानुवाद को कम लोकप्रियता प्राप्त हो सकी।

पद्य टीका में ४३८ पद्य हैं जिसमें अन्तिम ११ पद्य तो वे ही हैं जो कवि ने प्रवचनसार गद्य टीका के अन्त में लिखे हैं। प्रस्तुत कृति का प्रारम्भिक अंश निम्न प्रकार है—

- छाप्य— स्वयं सिद्ध करतार करे निज करम सरम निधि,
 भापं करण स्वरूप होय साधन साधे विधि ।
 संभवछना धरै भापको भाप समर्प्य ।
 अयाराव भावतै भावकी कर धरि अर्प्य ।
 अधकरण होय आधारनिज वरतै पूरण ब्रह्म पर ।
 वट निधि द्वारिकामय विधि रहित विविध येक अजर अमर ॥१॥
- बोहा— महातस्व महनीय यह, महाधाम गुणधाम ।
 चिदानन्द परमात्म, बंदू रमता राम ॥२॥
 कुनय बमन सुवरनि अवनि, रमिनि स्यात पव शुद्ध ।
 जिनबानी मानो मुनिय, घर में करोहू सुबुद्धि ॥३॥
- चोपई— पंच इष्ट के पद बंदी, सत्यरूप गुर गुण अभिर्नंदी ।
 प्रवचन ग्रंथ की टीका, बालबोध भाषा सयनीका ॥४॥

प्रवचनसार के तीन अधिकारों में से प्रथम अधिकार में २३२ पद्य, तथा शेष २०६ पद्यों में दूसरा एवं तीसरा अधिकार है।

भाषा अत्यधिक सरल, सुबोध एवं मधुर है। प्रवचनसार के गूढ विषय को कवि ने बहुत ही सरल शब्दों में समझाया है। कोई भी पाठक उसे हृदयगम कर सकता है।

प्रवचनसार पद्य टीका को एक पाण्डुलिपि जयपुर के बघीचन्द जी के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है। इसमें ३४ पद्य हैं तथा अन्तिम पुस्तिका इस प्रकार है—

इति श्री प्रवचनसार भाषा पाठे हेमराज कृत सपूर्णं । लिखतं दलसुख लुहाडिया लिखी सवाई जयपुर मध्ये लिखी ।

३ भक्तामर स्तोत्र भाषा (पद्य)

भक्तामर स्तोत्र सर्वाधिक लोकप्रिय जैन स्तोत्र है। मूल स्तोत्र आचार्य मानतुंग द्वारा विरचित है जिसमें ४८ पद्य हैं। समाज का अधिकांश भाग इसका प्रतिदिन पाठ करता है। हजारों महिलाएँ जब तक इसको नहीं सुन लेती, भोजन तक नहीं करती। भक्तामर स्तोत्र पर अब तक ७० से भी अधिक विद्वानों ने पद्यानुवाद किया है।^१ लेकिन “तीर्थंकर” में प्रकाशित इस लेख में भक्तामर पर उपलब्ध हिन्दी गद्य टीकाकागे का कोई उल्लेख नहीं किया।

भक्तामर स्तोत्र पर हिन्दी पद्यानुवाद पाठे हेमराज का मिलता है जो समाज में सर्वाधिक लोकप्रिय है। दि० जैन मन्दिर कामा के शास्त्र भण्डार में स्वयं हेमराज पाठ्या की पाण्डुलिपि संग्रहीत है जिसका लेखन-काल स० १७२७ है। इस पाण्डुलिपि में २६ पत्र हैं। पाठे हेमराज ने पद्यानुवाद जितना सुन्दर एवं सरल किया है उतना अन्य कवियों के पद्यानुवाद नहीं है। एक पद्य का अनुवाद देखिये—

मो मों शक्तिहीन थति करुं

भक्ति भाववश कळु नहीं डरुं

ज्यो मृगि निज-सुत पालन हेतु

मृगपति सन्मुख जाय अचेत ॥५॥

अन्तिम पद्य में कवि ने अपने नाम का निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

भाषा भक्तामर कियो, हेमराज हित हेत ।

जो नर पढे सुभावसों, तें पावे शिबसेत ॥४२॥

१ देखिये “तीर्थंकर” में प्रकाशित—पं. कमलकुमारजी शास्त्री का लेख-पृ. १६७-७०

२ राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची भाग—पंखम-पृ० ७४७.

कवि ने अपने इस छोटे से स्तोत्र में चौपई (१५ मात्रा), ताराच छन्द, दोहा एवं षट्पद छन्दों का प्रयोग किया है ।

४ भक्तामर स्तोत्र भाषा (गद्य)

पं० हेमराज ने ब्रह्मा भक्तामर स्तोत्र का पद्यानुवाद किया वहा गद्य में टीका लिखकर पाठकों के लिये स्तोत्र का अर्थ समझने के लिये उसे धीरे भी सरल बना दिया है । गद्य टीका भाषा संस्कृत के एक एक शब्द के अर्थ के अनुसार की है । भाषा में ब्रज का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है । एक संस्कृत पद्य का गद्यानुवाद अवलोकनार्थ नीचे दिया जाता है—

किल प्रहमपि त प्रथम जिनेन्द्र स्तोष्ये किलाह निश्चय करि प्रहमपि मै भी जु ही मानतु ग आचार्यं सो त प्रथम जिनेन्द्र सो जु है प्रथम जिनेन्द्र श्री आदिनाथ ताहि स्तोष्ये स्तवू गा । कहा करि स्तोत्र करोगो जिनपाद युगे सम्यक् प्रणम्य जिन जु है भगवान् तिनि कौ जु पद जुग दोई चरण कमल ताहि सम्यक् भली भाति मन वचन काय करि प्रणम्य नमस्कार करि कै । कैसौ है भगवान् कौ चरण द्वय भक्तामर प्रणत मौलि प्रभाणा उद्योतक भक्तिवत जु है अमर देवता तिनि के प्रणीत नञ्जीभूत जु है मौलि मुकट तिनि विषै है मणि तिनि की प्रभा तिनिका उद्योतक उद्योत की है । यद्यपि देव मुकटनि का उद्योत कोटि सूर्यवत है तथापि भगवान् के चरण नख की दीप्ति भागै वै मुकुट प्रभा रहित हो है तातै भगवान् कौ चरण द्वय उनका उद्योतक है । बहुरि कैसौ है चरण द्वय दलित पाप तमो वितान दलित दूरि कियो है पाप रूप तम अघकार ताकौ वितान समूह जानै बहुरि कैसौ है चरण द्वय प्रगटौ भव भवजले पतता जनाना आलबन । प्रगटौ चतुर्थकाल को आदि विषै भवजले ससार समुद्र जल विषै पतता पडे जु है त क सो आदिनाथ कौन है जाकौ स्तोत्र में करोगो । स्तोत्रै, य. सुरलोक नाथै संस्तुतः स्तोत्रै स्तोत्र हु करि यः जो श्री आदिनाथ सुरलोकनाथै सुरलोक देवलोक के नाथ इद्र तिनि करि संस्तुत' स्तूयमान भया कैसे है इद्र सकल बाङ्गुय तिसका जु सत्व स्वरूप तिसका जु बोध ज्ञान तातै उद्भूत उत्पन्न जु है मकर बुद्धि ता करि पटुभि' प्रवीण है वे स्तोत्र कैसा है जिन करि स्तुति करी जगत्रिय उदारै अर्थ की गभीरता करि श्रेष्ठ है ॥२॥

४वें पद्य की टीका के अन्त में कवि ने अपने आपका निम्न प्रकार परिचय दिया है—

भक्तामर टीका सदा, पढ़ें सुनै जो कोइ ।
हेमराज सिव मुख लहे, तस मन वांछित होइ ॥

५ चौरासी बोल

हेमराज ने प्रस्तुत कृति में दिग्म्बर एव श्वेताम्बर सम्प्रदाय जो मतभेद हैं उनको बहुत ही अष्टद्वे ढंग से प्रस्तुत किया है। वे भेद चौरासी हैं जिन्हें चौरासी बोल का नाम दिया गया है। कवि ने इसकी रचना कौरपाल की प्रेरणा से की थी। इसका दूसरा नाम “सित पट चौरासी बोल” भी मिलता है।

नगर आगरा में बसे, कौरपाल सग्यान ।
तिस निमित्त कवि हेम ने, कियौ कवित्त बखान ।

कविवर हेमराज ने इसे सवत् १७०६ में लिखकर समाप्त किया था।

चौरासी बोल एक सुन्दर रचना है जो भाषा एव शैली की दृष्टि से अनूठी कृति है। चौरासी बोल का प्रारम्भ निम्न प्रकार है—

सुनय पोष हत बोष मोक्ष मुख शिव पद वायक
गुन मनि कोष सुघोष रोष हर तोष विघायक ।
एक अमंत स्वरूप संत वदित अभिनंदित
निज सुभाव परभाव भाव भासेय अमंदित ।
अवचित चरित्र विलसित अमित सर्व मिलित अविलिप्त तन ।
अविचलित कलित निज रस ललित जय जिनधि बलित कलित घन ॥१॥

सर्वथा इकतीसा— नाथ हिम भूधर तं निकसि गनेश चित्त मुपरि विधारी शिव
सागर लौं धाई है ।
परमत वाद मरजाव कूल उनमूलि अनकूल भारिम सुभाव
दरि धाई है ।
धुद्ध हंस सेय पायमल की विध्वंस करै सरवंश सुमति बिकासि
वरदाई है ।
सपत अभंग भंग उठह तरंग जामैं श्रीसी वानी गंग सरवंग अंग
गाई है ॥२॥

शोहा— इयेताम्बर मत की लुनी, जिवतं हूँ मरजाब ।
 मिनहि बिगंबर सौं नहीं, जे खजरासी बाब ॥३॥
 तिनकी कछु संक्षेपता, कहिए भ्रागम जानि ।
 पढत सुनत जिनके मिटे, संसै मत पहुचानि । ४॥
 संसै मत में और है, भ्रगनित कल्पित बात ।
 कौन कथा तिनकी कहे, कहिए जगत विख्यात ॥५॥

६ परमात्मप्रकाश भाषा

परमात्मप्रकाश दूसरी अध्यात्म कृति है जिसे कविवर हेमराज ने संवत् १७१६ में समाप्त की थी । परमात्मप्रकाश योगीन्दु की मूल कृति है जिनका पूरा नाम योगिचन्द्र है । इनका समय ईस्वी मन् की छठी शताब्दि का उत्तरार्ध माना जाता है । परमात्मप्रकाश मूल में अपभ्रंश रचना है जिसमें प्रथम अधिकार में १२६ दोहे तथा दूसरे अधिकार में २१६ दोहे हैं ।

पाण्डे हेमराज ने परमात्मप्रकाश पर हिन्दी गद्य टीका लिखकर उसके पठन पाठन को और भी सुलभ बना दिया तथा उसकी लोक प्रियता में वृद्धि की लेकिन प्रवचनसार के समान इसको व्यापक समर्थन नहीं मिल सका । यही कारण है कि जयपुर के शास्त्र भण्डारो में इसकी एक मात्र पाण्डुलिपि उपलब्ध होती है और वह भी अपूर्ण ही है । इसकी एक पूर्ण पाण्डुलिपि डूंगरपुर के कोटडियों के मन्दिर में तथा दूसरी भादवा (जयपुर) ने जिन मन्दिर के शास्त्र भण्डार में उपलब्ध होती है । परमात्मप्रकाश की गद्य टीका का एक उदाहरण देखिये—

प्रधानतर तीन प्रकार का आत्मा के भेद तिन में प्रथम ही वहिरात्मा के लक्षण कहै है—

शोहा— मूढवियक्लण बंभुवद, अप्पा तिनहु हवेइ ।
 वेहु जि अप्पा जो मुसइ, सो जण मूढ हवेइ ॥११॥

मूढ कहिए मिष्यात्व रागादि रूप परिणया वहिरात्मा अर वियक्लण कहिए भीतराग निविकल्प सुखवेदन ग्यान रूप परिणया अतरात्मा अर ब्रह्म पर कहिए शुद्ध-
 शुद्ध स्वभाव प्रमात्मा शुद्ध कहिए रागादि रहित अर बुद्ध कहिए अतग्यानादि सहित

परम कहिए उत्कृष्ट भाव कर्म तो कर्म रहित या प्रकार आत्मा के तीन भेद जानूं ।
बहिरात्मा, अन्तरात्मा परमात्मा तिन में जो देह कूं आत्मा जाएँ सो प्राणी
मूढ़ कहिए ।

उक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि हेमराज ने प्रवचनमार गद्य टीका में जिस शैली
को अपनाया था उसी को आगे ग्रन्थों में अपनाया गया ।

७ पञ्चास्तिकाय गद्य टीका

पञ्चास्तिकाय भी आचार्य कुन्दकुन्द की कृति है जो प्राकृत भाषा में निबद्ध
है । इसमें दो श्रुतस्कध (अधिकार) हैं पडद्रव्य-पञ्चास्तिकाय और नव पदार्थ । इन
अधिकारों के नाम से ही इनके अभिधेय का नाम हो जाता है । इस पर भी आचार्य
अमृतचन्द्र एव जयसेन की संस्कृत टीकाएँ हैं ।

पाण्डे हेमराज ने अपने गुरु रूपचन्द्र के प्रसाद से पञ्चास्तिकाय की भाषा
टीका लिखी थी । पंडित परमानन्द जी शास्त्री एवं डा० प्रेमसागर दोनों ने पञ्चा-
स्तिकाय भाषा टीका का रचनाकाल सवत् १७२१ लिखा है लेकिन रचनाकाल सूचक
पद्य का दोनों ने उल्लेख नहीं किया है । जयपुर के ठोलियों के मन्दिर में सप्रहीत
एक पाण्डुलिपि सवत् १७१४ की लिखी हुई है इसलिये पञ्चास्तिकाय गद्य टीका
का लेखन काल सवत् १७२१ तो नहीं हो सकता । स्वयं गद्य टीकाकार में रचना-
काल का कोई उल्लेख नहीं किया है । पाण्डे हेमराज ने निम्न प्रकार टीका की
समाप्ति की है—

आगे इस ग्रन्थ का कारणहारे श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने जु यह आरम्भ कीना था
तिसके पार प्राप्त हुआ कृतकृत्य । अवस्था अपनी मानी कर्म रहित शुद्ध स्वरूप
विषै यिरता भाव धर्या । अंसी ही हमारे विषै भी श्रद्धा उपजी इसि पञ्चास्तिकाय
समयसार ग्रन्थ विषै मोक्षमार्ग कथन पूर्ण भया । यह कछु एक अमृतचन्द्र कृत टीका
तै भाषा बानावबोध श्री रूपचन्द्र गुरु कै प्रसाद थी । पांडे हेमराज नै अपनी बुद्धि
माफिक लिखित कीना । जे बहुश्रुत है ते सवारि कै पडियो ॥

१ देखिये अनेकान्त— अर्थ १८ किरण—३ पृष्ठ सख्या १३८.

२ हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि—पृष्ठ स० ११५.

इति श्री पञ्चास्तिकाय ग्रन्थ पाठे हेमराज कृत समाप्त । संवत् १७१६
पौष सुदि ११ वृहस्पतिवार रामपुरा मध्ये लिखायितं पञ्चास्तिकाय ग्रन्थ संघ ही
कला परोपकाराय लिखितं लेखक दीना । शुभ भूयात् ।

ग्रन्थ के प्रारम्भ करते समय कवि ने अपना कोई परिचय नहीं दिया है और
टीका को प्रारम्भ कर दिया है ।

भाषार्थ—एक परमाणु विषै पुद्गल के बीस गुणनि में पंच गुण पाइए ।
पच रसनि विषै कोई एक रस पाइए । पच बरौं विषै कोई एक बरौं पाइए । दोइ
गध विषै कोई एक गध पाइए । शीत स्निग्ध, शीत रस उष्ण, स्निग्ध, उष्ण-रस
इति चार स्पर्श के जुगलनिविषै एक कोई जुगल पाइए । ए पांच गुण जानै । यह
परमाणु संघ भाव के परणया हुआ शब्द पर्याय का कारण है । और जब संघ तै
जुदा है तब शब्द तै रहित है । यद्यपि अपरौं स्निग्ध रस गुणनि का कारण पाइ
अनेक परमाणु रूप स्बंध परिणति धरि करि एक हो हैं तथापि अपरौं एक रूप करि
स्वभाव की छोड़ता नांही । सदा एक द्रव्य है ।

उक्त उदाहरण से ज्ञात होता है कि हेमराज हिन्दी गद्य लेखन में बड़े कुशल
विद्वान् थे । तथा सिद्धान्त एवं दर्शन के विषय को भी बारा प्रवाह लिखते थे ।
आगरा के होने के कारण उनकी भाषा में थोड़ा राज भाषा का पुट है ।

८ कर्मकाण्ड भाषा

कर्मकाण्ड आचार्य नेमिचन्द्र के गोम्मटसार का उत्तर भाग है । गोम्मटसार
के दो भाग हैं जिनमें प्रथम जीवकाण्ड तथा दूसरा कर्मकाण्ड है । कर्मकाण्ड ग्रन्थ
जैनधर्म के अनुसार आठ कर्म एवं उनकी १४८ प्रकृतियों के वर्णन करने वाला
प्रमुख ग्रन्थ है । यह ६ अधिकारों में विभक्त है । जिनके नाम निम्न प्रकार हैं—
(१) प्रकृति समुत्कीर्तन (२) बन्वोदय सत्त्व (३) सत्त्वस्थानमंग (४) त्रिचूलिका
(५) स्थान समुत्कीर्तन (६) प्रत्यय (७) भावचूलिका (८) त्रिकरण चूलिका (९) कर्म
स्थितिबन्ध । कर्मों के भेद प्रभेदों का वर्णन करने वाला यह प्रमुख ग्रन्थ है । आचार्य
नेमिचन्द्र का समय ईस्वी सन् की दशम शताब्दि का उत्तरार्द्ध है ।

पाण्डे हेमराज ने अपनी गद्य टीका के प्रारम्भ अथवा अन्तिम भाग में रचना
काल का उल्लेख नहीं किया है लेकिन पं० परमानन्द जी शास्त्री ने इसका रचना-

काल संवत् १७१७ लिखा है। उन्होंने अपनी इस मान्यता का कोई आधार नहीं दिया है। जयपुर के ठोलिया मन्दिर में इसकी एक पाण्डुलिपि संवत् १७२० की तथा हमारे संग्रह में संवत् १७२६ में लिपिबद्ध पाण्डुलिपि सुरक्षित है। संवत् १७२० की पाण्डुलिपि उसी लिपिकर्ता बीना की है जिसने इसके पूर्व पञ्चास्तिकाय गद्य टीका की प्रतिलिपि की थी।

हेमराज ने प्रस्तुत ग्रन्थ के आदि अन्त में अपने सम्बन्ध में लिखित प्रशस्ति निम्न प्रकार है—

प्रारम्भ—ओ नम सिद्धेभ्यः। अथ कर्मकाण्ड की बालबोध टीका हेमराज कृत लिख्यते।

अन्तिम भाग—इयं भाषा टीका पठित हेमराज कृता स्वबुद्धयनुसारेण। इति श्री कर्मकाण्ड भाषा टीका।

संवत् १७२६ वर्षे आसुनि मासे कृष्णपक्षे ७ सप्तम्या सोमवासरे लिखत साह श्री योमसी आत्मपठनार्थं। लिखित पाठग विजैराम। श्री शुभ भवत्।

कर्मकाण्ड भाषा टीका भी अन्य ग्रन्थों की भाषा टीका के समान है। इसके गद्यांश का एक उदाहरण निम्न प्रकार है—

आयुषि भव विाकीनि नरकायु तिर्यंचायु मनुष्यायु देवायु ए चारि आयु भव विपाकी कहिए। जातै इनका भव कहिये पर्याय सोई विपाक है। आयु के उदय तै पर्याय भोगइ ए है। तातै आयु कर्म भव विपाकी कहिए। क्षेत्र विपाकीनि आनु-पूर्व्याणि। नरकायु पूर्व्वी तिर्यंचायुपूर्व्वी मनुष्यानुपूर्व्वी देवानुपूर्व्वी। चार आयु-पूर्व्वी क्षेत्र विपाकी है। जातै इनका विपाक क्षेत्र है तातै क्षेत्र विपाकी है। भव-शिष्टानि अष्टसप्तति जीव विपाकीनि पुद्गल विपाकी भव विपाकी क्षेत्र विपाकी पूर्व्वं कहै जे कर्मएकसौ अठनालीस प्रकति मध्य तिनते ते बाकी रहे अठहत्तरि कर्म ते जीव विपाकी कहिए ते जीव विपाकी कर्म अगली गाथा में नाम लेके कहै है।

प्रस्तुत टीका में कवि ने केवल गाथा का अर्थ ही किया है अपनी अन्य टीका ग्रन्थों के समान भावार्थ नहीं दिया। इससे भाषा में संस्कृत शब्दों की अधिक भर-मार आ गयी है।

६ सुगन्ध दशमी व्रत कथा

सुगन्ध दशमी व्रत भाद्रपद महिने की शुक्ल पक्ष के दशमी के दिन रखा जाता है। यह व्रत १० वर्ष तक किया जाता है और फिर उद्यापन के साथ इसको रखा जाता है। समाज में इसका अत्यधिक महत्त्व है। शास्त्र भण्डारों में बहुत सी पाण्डुलिपियाँ इसी व्रत के उद्यापन के उपलक्ष में भेंट स्वरूप दी हुई संग्रहीत हैं। इस दिन सभी मन्दिरों में घूप खेई जाती है। इस व्रत को जीवन में सफलता पूर्वक करने से दुर्गन्ध युक्त सरीर भी सुगन्धित बन गया था यही इस व्रत का महात्म्य है।

इस कथा के मूल लेखक विश्वभूषण हैं जिसको हिन्दी पद्य में हेमराज के रचना की थी। रचना स्थान गहेली नगर था जिसका कवि ने निम्न प्रकार उल्लेख किया है।

व्रत सुगन्ध दसमी विख्यात, अतिसुगन्ध सौरभता गात ।

यह व्रत नारि पुरुष जो करे, सो ब्रह्म संकट बहु परे ॥३६॥

सहर गहेली उत्तिम वास, जैनधर्म को करे प्रकास ।

सब भावक व्रत संयम धरे, दान पूजा सो पालिक हरे ॥३७॥

हेमराज कवियन यी कही, विस्मयुषन परकासी सही ।

मन बच काइ सुने जो कोइ, सो नर स्वर्ग अमरपति होइ ॥३८॥

यह छोटी सी कृति है जिसमें ३८ पद्य हैं। इसकी एक पाण्डुलिपि जबपुर के पटोवी के दिगम्बर जैन मन्दिर में संग्रहीत है। पाण्डुलिपि संवत् १६८५ की है। पाण्डुलिपि भिण्ड नगर के रामसहाय ने की थी।

१० नयचक्र भाषा

नयचक्र का दूसरा नाम आलाप पद्वति है। इसके मूलकर्ता आचार्य देवसेन हैं जिनका समय संवत् ६६० अर्थात् १०वीं शताब्दि माना जाता है। नयचक्र मूल रचना प्राकृत भाषा में है। इसमें प्रारम्भ में छह द्रव्यों का (जीव, पुद्गल, धर्म, अक्षर, आकाश और काल) द्रव्य-गुण-धर्म-पर्याय-की-अपेक्षा वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् द्रव्य स्वभाव का कथन क्रिया गद्य है। फिर सात नवों का जिनके नाम से यह रचना विख्यात है वर्णन मिलता है। नैगम, सग्रह, व्यवहार, ऋजुमूत्र

शब्द समभिरूढ एवं एवभूत के भेद से सात प्रकार के हैं। इन नयों का बहुत ही विस्तृत किन्तु सरल एवं बोधगम्य परिचय दिया गया है। हेमराज ने बिना किसी गाथाओं को उद्धृत किये हुये नयचक्र ग्रन्थ का सार लिखा है। यद्यपि नयचक्र का दार्शनिक विषय है लेकिन हेमराज ने उसे एकदम सरल बना दिया है। एक उदाहरण देखिये—

(१) वहाँ सर्व नय को मूल दोइ। एक द्रव्याधिक, एक पर्यायाधिक। इनही का उच्चतर भेद सात और है सो लिखिये है। १. नैगम, २ सग्रह, ३ व्यवहार ४. ऋजुसूत्र, ५. शब्द, ६. समभिरूढ एवं ७. एवभूत। इस तरह ए सात नय दोय मूल अरु सात ए सर्व मिलि तब नय हुई। इति नयाधिकार। इनको अर्थ भाग्य यथा सम्बन्धे लिखिये होगी।

नय ही को ग्रंथ ले करी वस्तु को अनेक विरूप लिए कहनो सु उप नय कहिये सो उप नय तीन भेद व्यवहार ही के बिषे समवे सो लिखिये है। सदभूत व्यवहार असदभूतव्यवहार, उपचरत सदभूत व्यवहार एवं उप नय का तीन भेद। अब पूर्वोक्त नय का विस्तार पर्ये भेद लिखिए है।

× × × × ×

(२) तिहां प्रथम निश्चय नय हंती व्यवहार नय। तिहां वस्तु की जो अभेद पर्ये बतावै सो निश्चय। अरु वस्तु की भेद पर्ये बतावै सो व्यवहार नय। तिहा पहिली जो निश्चय नय तिस कं दोय भेद। एक शुद्ध नय दूजो अशुद्ध नय। तिहा जो निरुपाधि रूप सो सुध निश्चय नय जैसे केवलभयानादयो जीव। अरु जो उपाधि करि सयुक्त है सो असुध निश्चय नय जैसे मति ज्ञानोदयो जीव। एवं निश्चय का दोय भेद जाणवा।

पृष्ठ १७

उक्त दो उदाहरणों से पता चलता है कि नयचक्र की भाषा राजस्थानी प्रभावित अवश्य है लेकिन उसका स्वरूप एवं शैली दोनों ही परिष्कृत है। सांख्यिक बातों के वर्णन में ऐसा सरल एवं किन्तु परिष्कृत भाषा का प्रयोग अवश्य ही प्रशंसनीय है।

प्रस्तुत रचना को हेमराज ने संवत् १७२६ में पूर्ण किया था। जिसका उल्लेख कवि ने ग्रन्थ के अन्त में निम्न प्रकार किया है—

हेमराज की बीमती, सुनियो सुकवि सुजान ।
 यह भाषा नयचक्र की, रचि सुसुद्धि उनमान ॥४॥
 सतरहसै खबोस की, संबत कागुण मास ।
 उजल तिथि बसयो जिहाँ, कीनो बचन बिलास ॥५॥

आगरा में उन दिनों ५० नारायणदास थे । जो ऊरतर बख्त के जिनप्रभसूरि के प्रशिष्य एव उपाध्याय लब्धिरय के शिष्य थे । हेमराज ने ५० नारायणदास से नयचक्र की भाषा करने के लिये प्रार्थना की । इसके पश्चात् हेमराज ने ५० नारायणदास की सहायता से नयचक्र की गद्य में भाषानुवाद किया । जिसका कवि ने निम्न प्रकार किया है—

बोहरा— सिरोमाल गछ ऊरतरै, जिनप्रभ सूरि संतानि ।
 लबधि रंग उवधाय मुनि, तिनके सिष्य सुजानि ॥
 बिबुध नारायणदास सौं, यहै धरज हम कीन ।
 क्यो नयचक्र सटीक हूँ, पठै सब परबीन ॥२॥
 तिनहै प्रसन हूँ के कही, भली भली यह बात ।
 सब हमहूँ उबिम कियो, रचो बचनिका भाँत ॥३॥

प्रस्तुत ग्रन्थ की एक पाण्डुलिपि संवत् १७६० भादवा सुदी श्रृगुवासर को बेधम गाव में लिपिबद्ध की हुई जयपुर के पांडे लूणकरण जी के मन्दिर में उपलब्ध है ।

नयचक्र भाषा का आदि भाग निम्न प्रकार है—

बबो धी जिन के बचन, स्याद्वाद नय मूल ।
 ताहि सुनत अनुभवत ही, होइ मिथ्यात निरमूल ॥१॥
 निहर्ष अथ बिबहार नय, तिनके मेव अमल ।
 तिनह में कछु इक बरण हो, नाम मेव बिरलत ॥२॥

११ गुरुपूजा

हेमराज ने आध्यात्मिक साहित्य के अतिरिक्त पूजा साहित्य भी लिखा था । उनके द्वारा रचित गुरुपूजा पं० पद्मलाल बाकलीवाल द्वारा प्रकाशित

वृहद्जिनवाणी संग्रह में प्रकाशित हो चुकी है। पूजा में पहिले अष्ट पूजा और फिर जयमाल है। कवि के गुरु संसार के भोगों से विरक्त होकर मोक्ष के लिये तपस्या करते हैं। वे भी भगवान् जिनेन्द्र के गुणों का नित्य प्रति आप करते हैं—

बीपक उदोत सवोत जयमग, सुगुरुपव पूजों सदा ।
तप नोश ज्ञान उजास स्वामी, मोहि मोह न हो कदा ।
भवे भोग तन बेरान्यधार, निहार सिव पव तपत हैं ।
तिहुँ जयसनाथ अघार साधु सु, पूज नित गुन जपत है ॥६॥

पञ्च परमेष्ठी का साधु ही गुरु है। मुनि भी उसी का नाम है। वे राग-द्वेष को दूर कर दया का पालन करते हैं। तीनों लोक उनके सामने प्रकट रहते हैं वे चारों आराधनाओं के समूह हैं। वे पाँच महाव्रतों का कठोरता से पालन करते हैं और छहों द्रव्यों को जानते हैं। उनका मन सात मनो के पालन में लगा रहता है और उन्हे आठो ऋद्धियाँ प्राप्त हो जाती है।

एक दया पाले मुनिराजा, राग द्वेष हूँ हरनपरं ।
तीनो लोक प्रगट सब देखे, चारो आराधन निकरं ।
पच महाव्रत बुद्धर धारं, छहों दरब जाने सुहित ।
सात भंग बानी मन लावे, पावे आठ ऋद्धि उचितं ॥

गुरुपूजा की एक प्रति फतेहपुर (शेलावाटी) में दिग० जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार में गुटका संख्या ७ में संप्रहीत है।

१२ नेमि राजमति जखडी

कविवर हेमराज लघु कृतियों की रचना करने में रुचि भी रखते थे। नेमिराजमति जखडी ऐसी ही एक लघु रचना है जिसमें नेमि राजुल का विरह वर्णन किया गया है। जखडी की एक प्रति जयपुर के बघीचन्द जी के मन्दिर के शास्त्र भण्डार में संप्रहीत १२४वें गुटके में लिपिबद्ध है। इसकी प्रति देहली में तिलोकचन्द पटवारी चाकसू वाले ने सन् १७८२ में की थी।

१ राजस्वाम के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रंथ सूची—भाग ३ पृष्ठ संख्या १५२.

१३ रोहिणी का कथा

हेमराज ने कुछ कथा कृतियों की भी रचना की थी। रोहिणी व्रत कथा को जयन्ते संवत् १७४२ में समाप्त की थी। इस कथा की एक प्रति दि० जैन मन्दिर बीरसवी कोटा में संग्रहीत है। कथा का अन्तिम अंश निम्न प्रकार है—

रोहिणी कथा संपूर्ण भई, क्यों पुरुष परमात्मी गई।
हेमराज ई कही विचार, पुष्ट सकल शास्त्र प्रबन्धार।
क्यों व्रत फल में सही, सो विधि प्रथम थीपई लही।
नगर बीरपुर लोग प्रबोध दया दान सिनको मत्त लीन ॥

कथा के उक्त अंश से पता चलता है कि इसकी रचना बीरपुर में की गयी थी। 'बीरपुर आगरा के आस पास ही कोई ग्राम होना चाहिये'।^१

१४ नन्दीश्वर कथा

हेमराज की दूसरी कथा कृति नन्दीश्वर कथा है। कवि ने इसे इटावा नगर में निबद्ध किया था। वहाँ जीनों की अच्छी बस्ती थी तथा जैन पुरानों को सुनने में उनकी विशेष रुचि थी। कथा का अन्तिम अंश निम्न प्रकार है—^२

यह व्रत नन्दीश्वर की कथा, हेमराज परमात्मी कथा।
सहर इटावो उत्तम धाम, आबक करे धर्म सुभ प्रयत्न।
सुने सदा जे जैन पुरान, गुरो लोक को राखै मान।
तिहिण सुनो धर्म सम्बन्ध, कीनी कथा थीपई बंध ॥

१५ राजमती चुनरी

इस लघु कृति की एक प्रति फतेहपुर (शेखवादी) के विष्णु जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है।^३

१ देखिये—राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की प्रथम सूची—भाग पंचम पृ. सं. ४०३

२

बही

३

बही

पृष्ठ सं. ११६८

१६ समयसार भाषा

पं० हेमराज ने आचार्य कुन्दकुन्द के सभी प्रमुख ग्रन्थों का भाषान्तर किया था। समयसार भाषा की उपलब्धि अभी तक हमें राजस्थान के शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूचियाँ बनाते समय उपलब्धि नहीं हुई थी। इस ग्रन्थ की एक पाण्डुलिपि नागौर के भट्टारकीय शास्त्र भण्डार में सुरक्षित है। ऐसा उल्लेख डा० प्रेमचन्द जैन ने अपनी डेस्क्रिप्टिव कैटालाग ऑफ मन्युस्क्रिप्टस् में पृष्ठ 25 पर निम्न प्रकार दी है—

“समयसार भाषा—पं० हेमराज/पत्र सख्या १६४/प्राकार ११ $\frac{1}{2}$ ” × ५ $\frac{1}{2}$ ”
दशा-जीर्ण/पूरण/भाषा हिन्दी (पद्य) लिपि-नागरी/ग्रन्थ सख्या १०६०/रचनाकाल-माघ शुक्ला ५ सं० १७६६/लिपिकाल X।”

उक्त परिचय में रचना काल सवत् १७६६ दिया है जो पाठे हेमराज प्रथवा हेमराज गोदीका के साथ मेल नहीं खाता क्योंकि उक्त दोनों ही कवियों की रचनायें संवत् १७२६ तक मिली हैं जिसमें ४३ वर्ष का अन्तराला है। इसलिये ही सकता है यह लिपि सवत् हो। इसकी घोष चल रही है।

हेमराज गोदीका (तृतीय)

हेमराज नाम वाले ये तीसरे कवि हैं। ये दिगम्बर जैन खण्डेलवाल थे। गोदीका इनका गोत्र था। ये अर्ध्यात्मी पंडित थे। उस समय सांगानेर क्रान्तिकारियों का नगर था। अमरा भीसा जो तेरहपंथ के मुख्य धाधार स्तम्भ थे, वे भी सांगानेर के ही थे तथा उनका पुत्र जोधराज गोदीका भी सांगानेर निवासी थे। यह पूरा गोदीका परिवार ही भट्टारकों के विरुद्ध खड़ा हुआ था और उसमें उन्हें आशिक सफलता भी मिली थी।

हेमराज गोदीका एवं जोधराज गोदीका सम्भवतः एक ही परिवार के थे तथा एक ही पिता के पुत्र थे। लेकिन दोनों में मतभेद नहीं होने के कारण हेमराज को सांगानेर छोड़कर कामा जाना पड़ा। लेकिन ये दोनों ही विद्वान् थे। यह भी संयोग की ही बात है कि दोनों ने एक ही सवत् अर्थात् सं० १७२४ में प्रवचनसार की पद्य टीका समाप्त की थी। हेमराज सांगानेर से कामा नगर आये जबकि जोधराज सांगानेर में ही अपनी साहित्यिक सेवा करते रहे।

हेमराज की छत्र तक तीन कृतियाँ प्राप्त हो चुकी है जिनके नाम प्रकार हैं—
प्रवचनसार हिन्दी पद्य—रचनाकाल संवत् १७२४

उपदेश दोहा शतक— संवत् १७२५

गणितसार संग्रह— —

उक्त रचनाओं का विस्तृत परिचय निम्न प्रकार है—

१५ प्रवचनसार भाषा (पद्य)

प्रवचनसार का पठन पाठन समाज में प्रारम्भ में ही लोकप्रिय रहा है।
आचार्य अमृतचन्द्र एव जयसेन प्रभृति आचार्यों ने गाथाओं पर संस्कृत में टीका लिखी
है। हिन्दी भाषा में सर्व प्रथम संवत् १७०६ में आगरा निवासी हेमराज अग्रवाल ने
गद्य पद्य दोनों में टीका लिखी थी। हेमराज की गद्यात्मक टीका बहुत लोकप्रिय
रही और उसी के आधार पर कामांगढ़ (राजस्थान) निवासी हेमराज खण्डेलवाल ने
एक और हिन्दी पद्य टीका लिखी। जिसके पद्यों की संख्या १००५ है। हेमराज ने
अपना परिचय देते हुये निम्न पंक्तियाँ लिखी हैं—

सबैया इकतीसा

हेमराज भावक खण्डेलवाल जाति गोत भावसा प्रगट ध्यौक गोदीका बखानिये ।
प्रवचनसार अति सुन्दर सटीक देखि कीने हैं कबित्त ते छवित्त रूप जानीये ।
मेरी एक वीनती विबुध कविबंतनिसों, बाल बुद्धि कवि को न खोष उर आनीये ।
जहाँ जहाँ छंद और अरथ अधिक हीन तहाँ शुद्ध करिके प्रवान ग्यान ठानीये
॥६१॥

बोहा— सांगानेर सुधान को हेमराज बसवान ।
अब अपनी इच्छा सहित, बसैं कामगढ़ यान ॥६२॥
कामागढ़ सुखसुं बसइ, इति भीत नहिं बाप ।
कचित् बंध प्रवचन कीयो, पूरन तहाँ बनाय ॥६३॥

उस समय कामां में अध्यात्म सीली थी उसी में प्रवचनसार की चर्चा स्वाध्याय
होती थी ।

इसकी रचना संवत् १७२४ की आषाढ सुदी ८ के शुभ दिन समाप्त हुई थी। कवि ने जिसका उल्लेख अपने पद्य में निम्न प्रकार किया है।

सत्रहसँ चौबीस संवत् शुभ अक्षुभ घरी।

कीयो ग्रंथ सुधीस देखि देखि कीज्यो लिमा ॥१००५॥

प्रवचनसार का पद्यानुवाद बहुत ही सुन्दर एवं भाव पूर्ण हुआ है। आगरा निवासी हेमराज पाण्डे का गद्य रूपान्तरण जितना अच्छा है उतना पद्य भाषान्तर नहीं है। उसने ४४१ पद्यों में ही प्रवचन के रहस्य को प्रस्तुत किया है जबकि हेमराज गोदीका (खण्डेलवाल) ने प्रवचनसार पर विस्तृत पद्य रचना की है जो १००५ पद्यों में पूर्ण होती है। दोनों ही कवि ब्रज भाषा भाषी प्रदेश के थे। कामा भी ब्रज प्रदेश में गिना जाता है।

आ गई पुन्य पाप कोई भेद नाही अंसा निश्चय करि को ईस कथन कुं सक्षेप में कहै है।

बहि मष्णदि जो एवं एखि बितैसोति पुष्ण पावाण।

हिडवि घोर मयार संसारं मोह सङ्गनो ॥२८२॥

टीका— नहिंसम्यते य एवं नास्ति, विशेष इति पुन्य-पापयो।

हिडति घोर मयारं, संसारं मोह सङ्गनं ॥

सबईया इकलीसा—

वीकं मद मोह जी परं है भवसागर मइ,

आपनी पराइ को बिचार न करतु है।

पुष्य के उदेतइ बिषइ भोग सुख पाइयत,

तिन्ह के बिलास वं कु उद्यम धरतु है।

पाप उदे दुखी भंग होत बिषइ भोगनि सौं,

जिन्ह कुं विलोकि भय मानि कै डरतु है।

अंसै पाप पुष्य तं असाता साता बेबतु है।

तेई भवसागर में नाबरी भरतु है ॥२८३॥

बोहरा—

पुण्य पाप की एकता, मानतु नाहिं तु कोय ।

सो अपार संसारमइ, भ्रमत मोह सुत सोय ॥२८४॥

जइसइ शुभ अइ असुभमइ, निहचय भेव न होय ।

त्यो ही पुण्यह पापमइ, निहचय भेव न कोय ॥२८५॥

बेटी लोहह कनक की, बंधत हुवइ' समान ।

त्योही पुण्यह पापमइ', बंधत मोह निवान ॥२८६॥

उक्त उदाहरण से यह जाना जा सकता है कि हेमराज गोदीका ने गाथा में निरूपित विषय को कितना स्पष्ट करके समझाया है। भाषा भी एकदम पारि-
मार्जित है तथा साथ में सरल एवं बोधगम्य है।

उक्त पद्य रूपान्तरण हेमराज गोदीका ने अपने पूर्ववर्ती पाण्डे हेमराज अग्रवाल
धामरा निवासी के प्रवचनसार भाषा (गद्य) के अध्ययन के पश्चात् किया था।

उक्त ग्रंथ की दो पाण्डुलिपियाँ जयपुर के दि. जैन तेरापथी बड़ा मन्दिर के
शाम्भू भण्डार में सप्रहोत हैं। जिसमें एक पाण्डुलिपि कामा नगर में लिखी हुई है
जो सवत् १७४६ की है।

२ उपदेश बोहा शतक

उपदेश दोहागतक हेमराज गोदीका खण्डेलवाल की रचना है। इसके पूर्व उसने
प्रवचनसार भाषा (पद्य) की रचना की थी। हेमराज ने शतक में अपना जो परिचय
दिया है वह निम्न प्रकार है—

उपनो सांगानेरि की, अइ कामागढ़ बास ।

तहां हेम बोहा रचे, स्वपर बुधि परकास ॥६८॥

कामागढ़ सूबस जहां, कौरलिसिध नरेश ।

अपने खग बलि बसि किये, बुध्धन जितेक बेस ॥६९॥

सप्रहसीर पञ्चीस की, बरती संवत सार ।

कालिग बुधि तिथि पंचमी, पूरन भयो बिचारि ॥१००॥

उक्त संक्षिप्त परिचय से इतना ही पता चलता है कि हेमराज सांगानेर में
पैदा हुये थे तथा फिर कामागढ़ में जाकर रहने लगे थे। उपदेश दोहा शतक की

रचना कामां नगर मे ही की गयी थी । कामा एक सूबा था जिस पर कीर्तिसिंह का शासन था और उसने अपने शौर्य एवं पराक्रम से कितने ही देशो पर कब्जा कर लिया था । उपदेश दोहा शतक की रचना सबत् १७२५ कार्तिक सुदी पचमी को समाप्त की गयी थी ।

‘उपदेश दोहाशतक’ एक आध्यात्मिक रचना है जिसमें मानव मात्र को सुपथ पर लगाने, आत्मिक विकास करने एव बुराइयो से बचने का उपदेश दिया है । जीवन मे दया व दान को अपनाने का आग्रह किया गया है । साथ मे यह भी लिखा है कि जिसने जीवन मे दान नहीं दिया तथा व्रत एव उपवास नहीं किये इसका जीवन ही व्यर्थ है क्योंकि मनुष्य तो मुट्टी बाधे प्राता है और हाथ प्रसार कर चला जाता है—

बिधे न दान सुपत्त को, किये न व्रत उर धारि ।

धायी मूँठी बाधि कं, जासी हाथ पसारि ॥१३॥

यह मूढ आत्मा जगह २ आत्मा को डू डता-फिरता है जबकि इसी के घर मे यह आत्मा बसता है जो स्वयं निरंजन देवता भी है—

ठोर ठोर सोघत फिरत’ काहे अंध अवेव ।

तेरे ही घर में बसै, सदा निरंजन देव ॥२५॥

शतक मे १०१ दोहा हैं । इसकी पाण्डुलिपि जयपुर के बबीचन्द जी के मंदिर के शास्त्र भण्डार मे संग्रहीत है ।

३ गणितसार

कविवर हेमराज गोबीका गणितज्ञ भी थे । इन्होंने गणितसार के नाम से एक लघु रचना को छन्दोबद्ध किया था । इसमे ८८ दोहा छन्द है । जिनमे गणित के विभिन्न पथो को प्रस्तुत किया है । अब तक इस ग्रन्थ की एक प्रति जयपुर के दि० जैन मंदिर पाटोदियान मे तथा एक पाण्डुलिपि आदिनाथ पंचायती मन्दिर बून्दी मे संग्रहीत है । बून्दी वाली पाण्डुलिपि सबत् १७८४ की है तथा सांगानेर मे लिपिबद्ध है इसलिये हमने गणितसार को हेमराज गोबीका की कृति माना है । जयपुर वाली

पाण्डुलिपि अपूर्ण है और उसका अन्तिम पृष्ठ नहीं है। मणितसार का प्रादि ग्रन्थ भाग निम्न प्रकार है—

प्रारम्भ—अथ श्री मणितसार लिख्यते—

दोहरा— श्रीपति शंकर सुगत बिधि, निरविकार करतार ।
 अगम सुगम आनन्दमय, सुर नर पति भरतार ॥१॥
 चिद्विज्ञास निरविकलपी, अजर अजन्म अनन्त ।
 जगत शिरोमणि बुलदमन, अब जय जिन अरिहंत ॥२॥

अन्तिम पाठ

दोहरा

जाके जैसी है सकति, ताके वैसी काज ।
 यह विचार किंचित कष्टा, करि मति सकति इलाज ॥८६॥
 अरथ शब्द पद छंद करि, जहाँ होय सबिद्व ।
 कृपावंत होइ सजन जन, तहाँ समारम्भ शुद्ध ॥८७॥
 जो पढि याको सरवहै, शिवधामक मैं सोई ।
 हेमराजमय जो अक्षर, ता सम अविचल होइ ॥८८॥

हेमराज (चतुर्थ)

तीन हेमराज नाम के विद्वानों एवं कवियों के अतिरिक्त एक और हेमराज का पता लगा है जो पांडे हेमराज के समकालीन थे। ये हेमराज भी तत्त्वज्ञानी एवं सिद्धान्त ग्रन्थों के ज्ञाता थे। उस समय आगरा में जैन समाज के विभिन्न सम्प्रदायों में पूर्ण समन्वय था इसलिये दिगम्बर ग्रन्थों की व्याख्या श्वेताम्बर विद्वान् किया करते थे। समयसार, प्रबचनसार, गोम्मटसार, पञ्चास्तिकाय जैसे ग्रन्थ श्वेताम्बर समाज में भी लोक प्रिय थे। हेमराज ओसवाल ने जब साहू आनंदराम जी सण्डेलवाल ने गोम्मटसार के बारे में प्रश्न पूछे तो उन्होंने सहर्ष उसकी शंकाओं का समाधान किया। जीव समाज इन्हीं शंकाओं पर आधारित ग्रन्थ है।

इन्हीं हेमराज की छन्द शास्त्र संभवतः एक और रचना है जिसकी एक पाण्डुलिपि जैसलमेर के भण्डार में सुरक्षित है। इसका रचनाकाल संवत् १७०६ दिया हुआ है। कवि की उक्त दोनों रचनाओं का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है—

जीव समास

हेमराज ने गोम्मटसार जीवकाण्ड में से जीव समास से सम्बन्धित गाथाओं का संकलन किया है जिसका नाम उन्होंने जीव समास नाम दिया है। प्राकृत गाथाओं पर संस्कृत में विस्तृत अर्थ किया है। ग्रन्थ का प्रारम्भ और अन्तिम भाग निम्न प्रकार है—

प्रारम्भ—अथ गोम्मटसारे शरीरावगाहनाश्रयेण जीव समासान् वक्तुमनाः
प्रथम तत्सर्वं जघन्योत्कृष्ट शरीरावगाहन स्वामिनी निदिशगति ।

अन्तिम—इति विग्रह निवारणार्थं कामर्माणकाययोगे विग्रहगति निर्धारणार्थं
श्रीमद्गोम्मटसारापुद्गत हेमराजो न ॥

उक्त ग्रन्थ की पाण्डुलिपि जयपुर के पाण्डे लूणकरण जी के शास्त्र भण्डार में सग्रहीत है।

गोम्मटसार जीवकाण्ड एवं कर्मकाण्ड की गाथाओं के एव पचमग्रह की गाथाओं के आधार पर अमितगति आचार्य ने नवप्रश्न चूलिका बनायी थी इसी की हिन्दी पद्य में बालाबोध टीका हेमराज ने लिखी थी। इस नव प्रश्न चूलिका में तीर्थंकर प्रकृति का प्रश्न साह भानन्दराम खण्डेलवाल ने उपस्थित किये थे जिनका समाधान गोम्मटसार को देख के उसका उत्तर तैयार किया था। जो ५२ पत्रों में पूर्ण होता होता है। इसकी एक पाण्डुलिपि जयपुर के दि. जैन मन्दिर पाटोदियान में सग्रहीत है जो संवत् १७८८ पीष सुदी १० को लिखी हुई है। हेमराज नाम के पूर्व लिपिकार ने श्वेताम्बर लिखा है। पाण्डुलिपि का अन्तिम भाग निम्न प्रकार है—

इह तव प्रश्न चूलिका बालाबोध किञ्चित्मात्र तीर्थंकर प्रकृति का प्रश्न साह आणंदराम जी खण्डेलवाल ने पूछया। तिस ऊपर श्वेताम्बर हेमराज ने गोम्मटसार की देख के क्षयापक्षम माणिक पत्रों में जवान लिखणें रूप चर्चा की वासना

लिखी है। संत जन भूल ब्रू कौं समुक्ति करि सुधारि कै पठ्या सं. १७८८ पौष सुदि १० ।

छन्दमाला

हेमराज की एक रचना छन्दमाला का उल्लेख डा. नेमीचन्द शास्त्री ने हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन में किया है। इसी छन्द माला की एक ताडपत्रीय प्रति जैसलमेर के शास्त्र भण्डार में संप्रहीत है। इस छन्द माला का रचना काल संवत् १७०६ है। सूची में भाषा गुजराती लिखा है।

इस प्रकार हेमराज नाम के चारों ही कवि हिन्दी साहित्य निर्माण के लिये वरदान सिद्ध हुये। हो सकता है अभी आगरा, मैनपुरी एव उसके आस पास के मन्दिरों में स्थित शास्त्र भण्डारों के अवलोकन से और भी कृतियाँ मिल जावे लेकिन जो कुछ अब तक उनकी रचनायें मिली हैं वे ही उनकी कीर्ति गौरव वाधा कहने के लिये पर्याप्त है।

गद्य साहित्य का महत्त्व

पाण्डे हेमराज का सबसे अधिक योगदान प्राकृत ग्रंथों का हिन्दी गद्य में विस्तृत टीका सहित अनुदित करना है। पाण्डे राजमल्ल ने १७वीं शताब्दि के मध्य में जिस समयसार नाटक का हिन्दी में टब्बा टीका लिखी थी पाण्डे हेमराज ने प्रवचनसार पर हिन्दी गद्य में विस्तृत एवं व्यवस्थित टीका लिखकर स्वाध्याय प्रेमियों के लिये नयी सामग्री प्रस्तुत की। वास्तव में जैन कवियों ने जिस प्रकार पहिले अपभ्रंश कृतियों के माध्यम से और फिर राजस्थानी एवं हिन्दी गद्य कृतियों के माध्यम से जिस प्रकार हिन्दी भाषा की अपूर्व सेवा की थी उसी प्रकार हिन्दी गद्य में भी ग्रंथों की टीकाएं लिखकर हिन्दी गद्य साहित्य के विकास में भी महत्त्वपूर्ण योग दिया।

श्री जैसलमेर दुर्गस्थ जैन ताडपत्रीय ग्रन्थ भण्डार सूची पत्र—पत्र सं. २३८
कम संख्या ६३१.

प्रतिनिधि कवि के रूप में

पाण्डे हेमराज एवं हेमराज गोदीका दोनों को ही हम १७वीं शताब्दि के अन्तिम चरण का प्रतिनिधि कवि के रूप में मान सकते हैं। इन कवियों ने एक ओर जहाँ आध्यात्मिक रचनाओं के पठन पाठन में पाठको की रुचि जाग्रत की वहाँ दूसरी ओर लघु रचनायें लिखकर जिन भक्ति की ओर भी जन सामान्य को लगाये रखा। वे एक ही धारा की ओर नहीं बढ़े किन्तु दोनों ही धाराओं का जल सिंचन किया। जिसमें समाज रूप खेत लहलहा उठा। पाण्डे हेमराज ने प्रवचनसार के पद्यानुवाद में तथा हेमराज गोदीका ने उपवेश दोहा शतक में अपनी जिस आध्यात्मिकता एवं पर हित चिन्तन का परिष्कय दिया वह सर्वथा प्रशसनीय है।



उपदेश दोहा शतक

(हेमराज गोबीका) बिरचित

दिव्य दृष्टि परकासि जिहि, जान्यो जगत भ्रसेस ।
निसप्रेही निरदुंद निति, बदी त्रिबिधि गनेस ॥१॥
कूपथ उपयि थापत सुपथ, निसप्रेही निरगंध ।
भ्रसे गुरु दिनकर सरिस, प्रगट करत सिवपंथ ॥१॥
गनपति हृदय बिलासिनी, पार न लहै सुरेश ।
सारद पद नमि कै कहौ, दोहा हितोपदेस ॥२॥
भ्रातम सरिता सलिल जह, संजम सील बखानि ।
तहां करहि मजन सुधी, पढवै पद निरबाणि ॥४॥
सिव साधन की जानिये, भ्रनुभौ बडौ इलाज ।
मूढ सलिल मंजन करत, सरत न एको काज ॥५॥
ज्यौ ईन्द्री त्यों मन चलै, तौ सब क्रिया भकथि ।
तार्त ईन्द्री दमन कौ, मन मरकट करि हथि ॥६॥
तत मत मणि मोहरा, करै उपाय अनेक ।
होरणहार कबहु न मिटे, घडी सहूरत एक ॥७॥
पढै ग्रथ ईन्द्री खवै, करै जु बरत बिधान ।
भापा पर समझै नही, क्यो पावै निरबाण ॥८॥
तज्यौ न परिगह सौ ममत, भटयो न विषे बिलास ।
भरे मूढ सिर मूडि कै, क्यो छाह्यौ घर बास ॥९॥
पहली मनसा हाथि करि, पाछै और इलाज ।
काज सिद्धि कौ बाधीए, पानी पहली पाज ॥१०॥
ब्रह्मचर्य पाल्यो चहै, घट्यौ न तिय स्वो पेम ।
एक म्यांन में डू खरग, कही समाधि केम ॥११॥

भ्रसन विविधि बिजन सहित, तन पोषित थिर जानि ।
 दुरजन जन की प्रीति ज्यौ, दैहै दगौ निवानि ॥१२॥
 दिये न दान सुपत्त कौ, किये न व्रत उरि धारि ।
 भ्रायो मूठी बाधि कै, जासी हाथ पसारि ॥१३॥
 जो नर जीवन जानिया, धर जानि न रक्ष्या कीन ।
 ब्रिद्ध समै मुखि लालसौ, नरभव पांगी दीन ॥१४॥
 सज्जन फुनि लघु पद लहै, दुज्जन कै सग साधि ।
 ज्यौ सब को मदिरा कहै, क्षीर कुलालनि हाधि ॥१५॥
 गज पतग मृग मीन अलि, भये अघ्य दसि नास ।
 जाकै पांचौ बसि नहीं, ताकी कैसी घास ॥१६॥
 लाभ भलाभादिक विषै, सोवत जागत माहि ।
 सुद्धातम अनुभौ सदा, तजँ सुधीजन नाहि ॥१७॥
 कोटि जनम लौ तप तपै, मन बच काय समेत ।
 सुद्धातम अनुभो बिना, क्यौ पावै सिब छेत ॥१८॥
 बजी आपदा सपदा, पूरव करम समान ।
 देखि अघिक पर कौ बिभौ, काहे कुदत अज्ञान ॥१९॥
 जुम्यौ पुनि सजोग ते, दस बिधि विमौ बिलास ।
 पुनि घटत घटि जाइगौ, गिनत मूढ थिर तास ॥२०॥
 जब लौ बिभौ तलाव जल, घटै न खरचत धीर ।
 तब लौ पूरब पुनि की, मिटै नहीं तलसीर ॥२१॥
 जोग भोग हिस्सा करम, करत न बंधत जीव ।
 रागादिक सजोग तै, वरन्यो बध सदीव ॥२२॥
 लागि लागि मागत फिरत, भुक्षत दीन कुदेव ।
 तोहि कहा सौ देहिगे, मूढ करत तू सेव ॥२३॥
 राम दोष जाकै नहीं, निसंभ्रही निरबद ।
 तासु देव की सेव सौ, कटै करम के फड ॥२४॥
 ठौर ठौर सोषत फिरत, काहे अघ अवेव ।
 तेरे ही घट में बसै, सदा निरंजन देव ॥२५॥

सौवत सुपिनी साव सो, जागत जान्धी झूठ ।
 यहै समुझि संसार स्यो, करि निज भाव भ्रपूठ ॥२६॥
 पढत ग्रथ भति तप तपत, भव लौ सुनी न मोष ।
 दरसन ज्ञान करित स्यो, पावत सिव निरदोष ॥२७॥
 निकस्यो मदिर छांडिकै, करि कटुं ब कौ त्याग ।
 कुटी माडि भोगत बिष, पर त्रिय स्यो अनुराग ॥२८॥
 पुनि जोग तै सपदा, लहि मानत मन मोद ।
 सो ती लैजै है भुगध, परभव नरक निमोद ॥२९॥
 कोटि बरस लौ घोदये, अडसडि तीरथ नीर ।
 सदा भ्रपावन हो रहै, मदिरा कुंभ सररीर ॥३०॥
 फटे बसन तनहूँ लट्यो, भरि भरि भागत भीख ।
 बिना दिये कौ फल यहै, देत फिरत यह सीख ॥३१॥
 पाप प्राण पर पीडत, पूंनि करत उपगार ।
 यहै मती सब ग्रथ कौ, शिव पथ सावन हार ॥३२॥
 खोई खेलत बाल बँ, तरुनायो त्रिय सावि ।
 वृधि समै व्यापी जरा, अप्यो न गौ जिन नाथ ॥३३॥
 जा पैडै सब जग तगौ, भरज है सब लोग ।
 ता पैडै जैहै तु हूँ, कहा करत सठ सोय ॥३४॥
 क्रिये देस सब भाप बसि, जीति दसौ द्रवपाल ।
 सबही देखत लै चल्थै, एक पलक मे काल ॥३५॥
 मिलै लोग बाजा बजै, पांन गुलाल फुलेल ।
 जनम मरण ग्रह क्याह मै, है समान सौ खेल ॥३६॥
 परम धरम सरबरि बसै, सज्जन मीन सुमानि ।
 तिय बडछी सौ काडिये, मनमथ कीर बखानि ॥३७॥
 ईं ड्री रसना जोष मन, प्रबल कर्म मैं मोह ।
 ए अजीत जीतै सुभट, करहि मोष की टीह ॥३८॥
 होत सहज उतपात जग, बिनसत सहज सुभाइ ।
 झूठ अहमति धारि कै, जनमि जनमि भरमाइ ॥३९॥

कांपत देखै सलिल मैं, गह्यौं बंभ जल तीर ।
 त्यों परजाय बिनास तैं, मानत द्रव्य अधीर ॥४०॥
 सोए समूरत साधि सब, करत काज संसार ।
 मूँहन समुझै भेद यहूँ, सुधरै सुधरन हार ॥४१॥
 दुरजन नर अरु अगनि कौ, जानहुँ एक सुकाव ।
 जाही गहर बासि है, ताही देत जराइ ॥४२॥
 करत प्रगट दुरजन सदा, दोष करत उपगार ।
 मधुर सचिककण पोष तैं, करत मार ज्यौ मार ॥४३॥
 लागि विषै सुख कै विषै, लखै न भ्रातम रूप ।
 इह कहबति साची करी, पर्यौ दीप लै रूप ॥४४॥
 सुजस बडाई कारणै, तजै मौक्ष सुख कोइ ।
 लोह कील के लेन कौ, डाहत देवल सोइ ॥४५॥
 तब लौ विषै सुहाबनौ, लागत चेतन तोहि ।
 जब लौ सुमति बधू कहै, नैही पिछानत मोहि ॥४६॥
 ज्यौ घतूर मातौ लखै, माटी कनक समान ।
 त्यों सुख मानत विषय सौँ, सगति कुमति अग्र्यान ॥४७॥
 पाप हरन जिन पाप करि, करुना कर न बिनास ।
 किते न लागे तीर तरि, तजि तजि आसापास ॥४८॥
 हरै हरै सुदरत हरि, कर्म कर्म ते कर्म ।
 सेय चरन सिव सुख करन, इहौ बडौ जागि घर्म ॥४९॥
 विषै घास पासा बंध्यौ, घास पास जग जीव ।
 ताही विषै बिलास कौ, उद्यम करत सदीव ॥५०॥
 करत पुन्य सौ हेत जो, तजि कै पापारभ ।
 सो न जीति है मोह कौ, गह्यौ जगत रणधम ॥५१॥
 घट द्विधि त्रस थावर बसै, स्वर्ग मध्य पाताल ।
 सबही जीव भनादि के, परे मोह बल जाल ॥५२॥
 उपजै द्रव्य सुकष्ट तैं, खरचत कष्ट बलानि ।
 कष्ट कष्ट करि राखिये, द्रव्य कष्ट की खानि ॥५३॥

देव द्रव्य कुछ मंत्र फुनि, तीरथ बरत विधान ।
 जाकी जैसी भावना, तैसी सिद्धि निदान ॥५४॥
 मिलि कै कनक कुंघातु सौं, भयो बहुत विधि बान ।
 त्यों पुद्गल संजोग सौं, जीव भेद परवान ॥५५॥
 स्याम रंग तै स्वामता, फटक फलान न होइ ।
 त्यों चेतन जड जोग तै, जडता लहै न कोइ ॥५६॥
 खीर नीर ज्यों मिलि रहे, ज्यों कंचन पाखान ।
 त्यों भ्रनादि संजोग भनि, पुद्गल जीव प्रवान ॥५७॥
 सिव सुख कारनि करत सठ, जप तप बरत विधान ।
 कर्म निज्जैरा करन कौ, सोहं सबद प्रमान ॥५८॥
 तजै भ्रवै संपति लखै, परखै बिषै भ्रजान ।
 ज्यो गजमोती तजि गहै, गुंजा भील निदान ॥५९॥
 दुर्जन संगति संपदा, देत न सुख दुख मूल ।
 करै भ्रष्टिक उर जगत मै, ज्यों भ्रकाल के फूल ॥६०॥
 सज्जन लहे न सोम कौं, दुर्जन संगति सेत ।
 ज्यो कुंजर दर्पन बिषै, हीन दिखाई देत ॥६१॥

सोरठा— इहै जलधि संसार, चरि मुनि ग्यान जिहान पर ।
 तत छिन पंहुचै पार, प्रबल पवन तप तपत जंह ॥६२॥

दोहा सज्जन संगति दुर्जन के, दोष भ्रदोष लहोत ।
 ज्यो रजनी ससि संग तै, सबै स्वामत खोत ॥६४॥
 जाहि जगत त्यागी कहत, ता सम किरपन कौन ।
 सांथी पूरब जनम कौ, मरत करत हू गौन ॥६५॥
 खाइ न खरचै लाछि कौं, कहै कृपन जय जाहि ।
 बड़ो दानि बहु मरत ही, छोडि चलयो सब ताहि ॥६६॥
 सिव साथै परिगह सहित, विषय करत बैराग ।
 उरय खेइ चाहत भयी, उत्तमता मुखि काय ॥६७॥

बांम धंग बामा बसै, गदा षक करि ताहि ।
 अप बसि कियो न काम जै, कहै जगत पति ताहि ॥६७॥
 महा मल्ल मनमथ हियो, ध्यान असनि उरि दाहि ।
 इँ अकाम निरमै जये, गनी जगत पति ताहि ॥६८॥
 चेतन तेरै मान कौ, दोष प्रगट जगि जोइ ।
 दरसत बाँकी दीठि ज्यो, चद एक तँ दोइ ॥६९॥
 प्रीयम बरषा सीत रिति, मुनि तप तपत त्रिकाल ।
 रतनत्रय बिनु मोक्ष पष, सहै न करत जंजाल ॥७०॥
 रतनत्रय घारी अवर, केवल ग्यानी आज ।
 पचम कालि न पाइए, भवदधि तरन जिहाज ॥७१॥
 केवल ग्यानी के बचन, केवल ज्ञान समान ।
 बरतै अज परपरा, पहुँचावै निरवान ॥७२॥
 यो बरतै परिगह विषै, सम्यक दिष्टी जीव ।
 ज्यो सुत अतर भेद सौ, पोखै घाय सदीव ॥७३॥
 जगत भुजगम भी सहित, विष सम विषै बखानि ।
 रतन त्रय जुगपति इहै, नाग दमनि उरि आनि ॥७४॥
 मए मत्त सौ मत्त जे, ते मति वाले जीव ।
 गही टेक छूटै न ज्यो, मरकट मूँठि अतीव ॥७५॥
 परदरा परद्रव्य मत्त, लग्यो चीकरन चित्त ।
 मिटै न मीढे सलिल सौ, मज्जन करत सुमित्त ॥७६॥
 जो तू मन उज्जल कर्यो, चाहै इहै उपाइ ।
 पर दारा पर द्रव्य सौ, उलटि अलख गुनगाइ ॥७७॥
 शोवत देह न छोइए, लगी चित्तरज गूढ ।
 दपंश के प्रति बिब मल, माजत मिटै न मूढ ॥७८॥
 करि कछु सुक्रित तरुन बै, पीछै फुरै न कोइ ।
 व्यापत जरा तिजजर्जरा, अंगल फगज होइ ॥७९॥
 जगत चाक त्रिय कील दिढ, मिथ्या भाव कुँभार ।
 माटी पिड सुराइ भनि, आजन बिबिध प्रकार ॥८०॥

हाड मांस विष्टा दिखे मरी कोथरी नाम ।
 ताहि कृकवि धर्मन करै, बंद मुखी कहि नाम ॥८१॥
 सुद्धातम धर्मत धरै, भए सात मुनि सूरि ।
 तिनहि न व्यापै जगत कौ, दुख दावानल मूरि ॥८२॥
 मूढ विषै सौ सुख कहै, विषै न सुख कौ हेत ।
 स्वान स्वादि निज रुधिर कौ, कहै हाड रस देत ॥८३॥
 मूढ अपुनपौ देह सौं, कहै इहै सुख खानि ।
 सो तौ सुर गीत हू विषै, महाकष्ट की दानि ॥८४॥
 रतन त्रय सपति धरै, ताहि न लखै गँवार ।
 भूमि बिकार बिलोकि कै, मानत सपति सार ॥८५॥
 नरकै नरकै जान कौ, उर को उपजौ त्रास ।
 तो काहे कौ सेव हो, बहु बिधि विषै विलास ॥८६॥
 मनै न दुख परलोक कौ, सेवत विषै गँवार ।
 सब ही डर को लीपि कै ज्यो पय पिबत मजार ॥८७॥
 ज्ञानी कौ तप तुल्यहू, करै मोक्ष सुख कार ।
 ज्यौ थोरै अक्षर सुकवि, ठारै अरथ अपार ॥८८॥
 मोह बधक भव बनि बसी, बाम बागुरा जानि ।
 रहै अटक छूटै नही, मूग नर मूढ बखानि ॥८९॥
 लो विराग करवाल करि, भव बनि बसी निसक ।
 जीति सबै अप बसि किये, मोहादिक अरि बक ॥९०॥
 ज्यौ बरिषा रिति जेवरी, विनु ही जल बल हीन ।
 त्यो विषई बनिता निररिख, चित्त बक गति लीन ॥९१॥
 पिसुन प्रेम बीसर वचन, हूँ उतग घटि जाहि ।
 सूषि छाह जुग जाम सम, बढै सु छिन २ माहि ॥९२॥
 चदन लेपादिक करै, सीतल जनत अमग ।
 मिटै न शीषम उषमा, विनु सज्जन कै सग ॥९३॥
 कनक खात पावत कनक, मद कौ करै सुन्याय ।
 इह अपुष्व मद कामिनी, चितबत चित बीराय ॥९४॥

संपति खरबत डरत सठ, मत संपति घटि जाब ।
 इह संपति सुभ दान थी, बिलसत बढत सवाइ ॥१६६॥
 छंद मत्त भर भरय की, जहा असुधता होइ ।
 तहा सुकवि भवलोकि कै, करहु सुद्ध सब कोइ ॥१६७॥
 उतनी सांगानेरि कौ, भव कामा बढ बास ।
 तहां हेम दोहां रचे, स्वपर बुधि परकास ॥१६८॥
 कामा गढ़ सू बसं जहा, कीरति सिध नरेस ।
 अपने सग बलि बसि किए, दुज्जन जितेक देस ॥१६९॥
 सतहसीर पचीस की, बरतै सवत सार ।
 कासिग सुदि तिथि पचमी, पूरन भयो विचार ॥१७०॥
 एक भ्राभरे एक सी, कीये दोहा छद ।
 जो हित दी बाजै पढै, ता उरि बढै भनंद ॥१७१॥

॥ इति हेमराज कृत उपदेश दोहा शतक संपूर्ण ॥



प्रवचनसार भाषा (पद्य)

रचयिता—पाण्डे हेमराज

अथ प्रवचनसार की भाषा लिख्यते ।

छप्पय

स्वयं सिद्धि करतार करै निज करम सरम निधि ।
आपै कारण स्वरूप होय साधन साथै विधि ॥
सप्रदछना घरै आपको आप समप्यै ।
अपाराव आपतै आपकों कर विरधप्यै ॥
अधकरण होय आघार निज बरते पूरण ब्रह्म पर ।
घटविधि कारिक मय विधि रहित विविध येक अजर अमर ॥१॥

बोहा

महातत्व महनीय मह महाधाम गुणधाम ।
चिदानंद परमात्मा, बन्दू रमता राम ॥२॥
कुनय दमन सुवरनि भवनि रमिनि स्यात पद शुद्ध ।
जिनबानी मानी मुनिय, घट मे करो हू सुबुद्धि ॥३॥

चौपई

पंच इष्ट पद के पद बंदी, सत्य रूप गुण गण अभिनदी ।
प्रवचनसार ग्रन्थ की टीका, बालबोध भाषा सयनीका ॥४॥
रचो आप परको हितकारी, भवि जीव आनंद विधारी ।
प्रवचन जलधि अरथ जल लेह, मति भाजन समान जल येह ॥५॥

बोहा

अमृतचंद कृत संस्कृत, टीका अग्रम अवार ।
तिस अनुसार कहों कछुक, सुमम अल्प विस्तार ॥६॥

वर्धमान स्तुति-कविस

सुर नर असुर नाथ पद बद्धत, धातिय करम मैल सब धोये ।
 भयो अनत चतुष्टय परगट, तारन तरन बिरतिहू लोये ॥
 धातम धरम ध्यान उपदेसक, लोकोलोक प्रसुध्य जिन जोये ।
 ऐसे वर्धमान तीर्थङ्कर बदे चरण भरम मल लोये ॥७॥
 बाकी तीर्थङ्कर तेईस, सिद्धि सहित बहू जगदीश ।
 निर्मल दणन ज्ञान सुभाव, कचन शुद्ध अग्नि जिम ताव ॥८॥
 बढो शूर अवर उवभाय, सकल साधु मुनि बहू पाय ।
 दरशन ज्ञान चरन तप बीज, पंधाचार सहित शिव कीज ॥९॥

खेत्रानं नमस्कार कथन-चौपाई

महा विदेह क्षेत्र है जहां, वरतमान जिन है तसु तहा ।
 ते सबही बहू समुदाय, जुदे जुदे फुनि बहू पाय ॥१०॥

पंच परमेष्ठी समुच्चय, नमस्कार कथन-छप्पय

नमति ध्यादि अग्रहत सिद्ध फुनि सूरन नत पद ।
 उपाध्याय फुनि नमित नमित सब साधु गलत मद ॥
 यह परम पद पंच ज्ञान दरशन धानक नित ।
 तास रूप अवलंबि सुद्ध चारित्र प्रगट हित ॥
 फुनि है सराग चारित्र के गरभित अस खाय मल ।
 सो करम बध सब त्याग करि, कहू शुद्ध चारित्र फल ॥११॥
 दरशन ज्ञान प्रधान जीव चारित्र चरन ध्रुव ।
 सुही भेद के दूक धिति बीतराग सराग ह्रुव ॥
 बीतराग शिव उदय करत अविचल अखड पर ।
 सुर नर असुर विभूति देत चारित्र सराग घर ॥
 तातै सराग ससार सार फल बीतराग सुख मोक्ष वर ।
 यहू भेद भाव अवलोकि के हेय उपदेय करहु नर ॥१२॥

अद्वित्त

जो निहचे चारित्र धरम को आचरै ।
 मोहादिक तें हीन साम्य भावनि चरै ॥

निहृत्वे चारित्र धरम साम्य है एक ही ।
बीतराग उपदेश बात हमहुं कही ॥१३॥

दोहा

यहु परिणामी धातमा प्रणवत चारित रूप ।
ता समय चारित्र सो, तनमय एक सरूप ॥१४॥
जैसे गुडिका लोह कूँ, होत ध्वनि सजोग ।
ता समय ध्वलोक ही, ध्वनि रूप सब लोग ॥१५॥
जैसे इ धण जोग तै, ध्वनि इ धनाकार ।
तैसे परमात्म भयो, चारित जोग ध्वार ॥१६॥
जीव शुभाशुभ मुद्ध सो, प्रणवत तन्मय होय ।
ता समय ध्वलोकिये, वह एकता सोय ॥१७॥

कवित्त

विषय कषाय असुभ रागादिक पूजा दान भगति सुभ भाव ।
चारित शुद्ध शुद्ध परिणामी, जहाँ न धन सजोग कहाय ॥
यह तीन उपयोग लहे जिह तिह तैसी विधि करे लखाय ।
सो चारित्र धरत परमात्म, चारित रूप एव शिबराय ॥१८॥

दोहा

रक्तादिक सजोग तै, फटिक बरन धन होत ।
त्यो उपयोगी धातमा, बहुविधि करन उद्योत ॥१९॥
जैसे करनी धाचरे तैसी कथन कहाय ।
करनी त्यागत धातमा निहृत्वे शुद्ध सुभाव ॥२०॥

सवैया

बिना परिणाम धस्ति रूप न द्रव्य को ।
कोऊ बिना द्रव्य परिणाम धस्ति न बखानिये ॥
द्रव्य गुन पर्याय येक ठोर होत तब ।
वस्तु धस्ति रूप सदा काल परवानिए ॥

जैसे बूध वही गोरस पर्याय बूध वही धृत हीन गोरस न मानिये ।
 तैसे परमात्मा द्रव्य गुन पर्याय शुभाशुभ रूप सो सजोग परवानिये
 ॥२१.१

अडिल

पीत तादि गुन कनक द्रव्य के जानिए ।
 कुंडलादि पर्याय बहुविधि मानिए ॥
 द्रव्य गुन पर्याय अस्ति तै कनक है ।
 ईन की अस्ति न जही कनक नवि तनक है ॥२२॥

दोहा

शुद्ध स्वरूपाचरन तै, पावत सुख निरबांत ।
 शुभोपयोगी आत्मा, स्वर्गादिक फल जान ॥२३॥

धेसरी छंद

विषय कषाई जीव सरामी करम बंध की परनति जागी ।
 जहा शुद्ध उपयोग विदारी, ताते विवधि भाति ससारी ॥२४॥
 तपत धीव सीषत नर कोई, उपजत बाहू साति नही होई ।
 स्योही शुभोपयोग दुख लानै, देव विभूति तनक सुख माने ॥२५॥
 शुभोपयोग शक्ति सुनि भाई, इन्द्रयाचीन स्वर्ग सुखदाई ।
 छिन मे होई जाई छिन माहे, शुद्धाचरण पुरुष क्यो चाहे ॥२६॥

छप्पय

फटत वसन तन लटित घटित घट्टलहु वर दर ।
 अधिक क्रूर फुनि कुटिल भीम सम फिरत सुधर धर ॥
 कटुक वयन दुःख दयन नयन सुख कबहु न सुत्तब ॥
 सरस अन्न मरि उदर पूरि भोजन नहि तुलव ।
 अक्लोकि विभव परताप पर कुट्टि कुट्टि छत्तिय मर ।
 यह असुभ करम परतक्ष फल धरमत पुरुष न कर ॥२७॥
 कीट पतंग लटादि स्याल संवादि विवधि पद ।
 वलय तुरग क्रुरग परस्पर वैर भयकर ॥
 सीत घाम दुख जाय नगन तन भार पीठ धर ।
 पकरि पारधिय बधि देत दुख पराचीन पर ॥

यम कथन कहां लो कीजिए अधिक भास तिरजंबगति ।
 सो असुभ करम परतक्ष फल तजत पुरुष धरमज्ञ मति ॥२८॥
 छेद भेद तापादि भूल तिस पीडत प्राणी ।
 मारि मारि फुनि बाधि तहां सुनि एवहु बांती ॥
 जनम जनम के वर उदय देखिय विषधि पर ।
 एक समय अतर न होय दुख बीच सहत नर ॥
 यम कथन नरक बरमन करत पारन पाय अथाह गत ।
 सो असुभ कर परतक्ष फल तजत पुरुष धरमज्ञ मत ॥२९॥

बोहा

नरक कुनर तिरजंब गति शुभ उदय महि जीव ।
 ताके दुख पूरन न ह्वै, बरमन करत सदीव ॥३०॥
 बेसरी छव— असुभ उपयोग उदै की बातें, अमत जीव दुख पावत जात ।
 त्याग रूप सर्वथा बलान्यो, याते उपादेय सुभ मान्यो ॥३१॥
 काहू इक काहू परकाटा, शुभोपभोग आरित की धारा ।
 कम क्रम उदय मोक्ष रस भीनो, तातें उपादेय शुभ कीनों ॥३२॥

सोरठा

अशुभयोगी जीव आरित धातिक सर्वथा ।
 हे भव बास सदीव, जानवत नही आचरे ॥३३॥

अडिल्ल

यहै शुभाशुभ नाम विचारि विलोकिये ।
 आचारिय शुभ राय असुभ को रोकिए ॥
 निहचै धोउ त्याग जगत को मूरि है ।
 शुद्धात्म परतक्ष बोहू तें हूरि है ॥३४॥

बोहा

सबहो सुख तै अधिक सुख है आतम आशीन ।
 विषयतीत बाधा रहित, शुद्ध चरन जिब कीन ॥३५॥
 शुद्धाचरन विभूति सिब, अतुल अखंड परकास ।
 सदा उच इके रस लिबे, धर्मन ज्ञान बिलास ॥३६॥

बेसरी छन्द

ज्यों परमात्म शुद्धोपयोमी विषय कथ्य परहित उर मोनी ।
करे न उत्तर पुरक भार्ग, सहज मोक्ष को उद्यम ठानै ॥३७७॥

दोहा

इन्द्र नरिद्र फणिद्र सुख, रुचै इन्द्रियाधीन ।
शुद्धाचरन अखंड रस, उपमा रहित प्रवीन ॥३८॥

सकैया

जीव अजीव पदारथ ज्ञायक केवल ज्ञान सिद्धान्त बखानै ।
भोग विषय अमिलाष तर्जै, तप सजम राम किना उर ठानै
इष्ट अनिष्ट सजोग समान सदा निरद्वेष क्रिया परवानै ।
शुद्धपयोम मई मुनिराजसु तीनहु लोक बडे कर मानै ॥३८७॥

कुंडलिया

शुद्धपयोम प्रसादतै करम चातिया नासि ।
सर्वज्ञेय ज्ञाता भये केवल ज्ञान प्रकासि ॥
केवल ज्ञान प्रकासि छडि करि पराधीन सुख ।
तिहूँ स्वयम्भू नाम साधि षट्कार आप रत्न ॥
सकल सुरासुर पूजि ज्ञान बरसन रस भोगी ।
पायो निरमल रूप जानि कुन शुद्धपयोमी ॥४०॥

बेसरी छन्द

करता करम करन मुनि भाई, संप्रदान बच यो सुखदाई ।
अपादान अधिकरण विख्याता, तिहूँ षट्कारक शिवदाता ॥४१॥
तिहूँ षट् कारक ज्यों होई, आप शक्ति तै साधिक सोई ।
पराधीन साधिक व्यवहारी, अधिष्ट रूप षट्कारक धारी ॥४२॥

सकैया

अतुल अखंड अधिचल तिहूँकाल सदा सासतो ।
स्वरूप द्रोव्य भाव परकानिये शुद्ध उपयोम के प्रसाद ते स्वभाव पाव

बहु उतपाद भविनास रस मानिये ।
 हूते जे विभाव परिणाम राम द्वेष मोह ॥
 कीचे है विनास फेर उबै न बलानिये ।
 भ्रँसो है स्वयम्भू भूतानागत वर्तमान ॥
 उत्पाद व्यय धीव्य बेक समय जानिये ॥४३॥

बोह

शुद्ध स्वभाव उपजत जाही तहाँ असुद्ध को नास ।
 धीव्य रूप परमात्मा, बेक समय परकास ॥४४॥
 सर्व द्रव्य परजायसी उत्पत्ति नास बलानि ।
 तातँ जीवाधिकल की सिद्ध होत परवान ॥४५॥
 सत्ता बिन कोऊ द्रव्य, सधत न अस्ति स्वरूप ।
 उतपत्ति धिरता नासतै, सत्ता सधत भ्रनूप ॥४६॥

सुत्पद्य

कबहु देव नर कबहु, कबहु तिर्यक नरक कबहु ।
 पुग्गल उत्पत्ति नास प्रकट जग जीव करत समु ॥
 ककवादि धामरणं कनक उत्पाद नास हुव ।
 कु डव कर वस राव मृतका बिबधि भेद हुव ॥
 यह उदय अस्ति ससार मधि सर्व द्रव्य उर धानिए ।
 उत्पाद नास पुन रहित अबु तहु बन लोष बलानिये ॥४७॥

बोह

सर्व द्रव्य परजाय करि उत्पत्ति नास सिद्धंत ।
 निज निज सत्ता सब मनन बहु उपदेस करत ॥४८॥

सौरठा

उत्पत्ति नास बलानि काहू कुं तुम करत हो ।
 धीव्य भाव परवान भ्रँसे कयो न कहो सदा ॥४९॥
 घट कुं डव नर देव कंकण कुं डल हूब दधि ।
 परते इतमे भेव, उत्पादिक गुन रहित ॥५०॥

चोपाई

सिद्ध धरर ससारी जीव ज्ञान भाव करि धौव्य सदीव ।
श्रीयाकार ज्ञान परजाय उत्पादादि सधत समवाय ॥५१॥

सर्वथा-३१

कीबो है विनास जिन घातिया कर्म च्यार ।
उदयो अनत वर वीर नेज धरि कै ॥
इन्द्रिया रहित ज्ञानानन्द निज भाव बेदि ।
ममता उछेदि पराधीन सुख हरि कै ॥
असे भगवान ज्ञान दर्शन प्रकासवान ।
आभरणं भानि निराकरणं दशा करि कै ॥
जैसे मेघ घटातीत वीसत अखड जोति ।
त्यो ही जीव सहज स्वभाव कर्म टरि के ॥५२॥

अडिल

भोजन सुख दुख भूख शरीर सम्बन्ध है ।
तिनके केवल ज्ञान व्याप अवध है ॥
उदय अतिद्री ज्ञान सदा सुख रूप है ।
अचल अखड अमेद उद्योत अनूप है ॥५३॥

दोहा

लोह अमगति अग्नि कै लगै न कबहू खोट ।
त्यो सुख दुख बेदक नहीं तजत जीव तन खोट ॥५४॥

अडिल्ल

केवल ज्ञान स्वरूप केवली परनए ।
सर्व द्रव्य परजाय प्रगट जग अनुभए ॥
अवग्रहादि जे भेद क्रिया करि हीन है ॥
यह अतीन्द्रिय ज्ञान सदा स्वाधीन है ॥५५॥

दोहा

जगत वस्तु छानीन को, सब द्रवी गुन जानि ।
अझातीत उदै भयो, निजाधीन निज ज्ञान ॥५६॥

बेसरी छंद

इन्द्रिय विषय भोग के धानी, सपरस वर्नं गंध रसवानी ।
जुदे जुदे अपने रस चाहै, एक एक निज गुन भवगाहै ॥५७॥
तुपति न परत करत सुख सेती निज निज क्रम तै वसंतेती ।
छिन में उदय अस्त छिन माहै, सब खड ज्ञान भवगाहै ॥५८॥

बोहा

भान अक्ष के काज को करै न अक्ष जु भान ।
निज निज मर्जादा लिये, बरते अक्ष प्रवान ॥५९॥
सदा प्रीतद्रि ज्ञान की जानहू शक्ति अमत ।
सब इन्द्रिन के विषय सुख, एक समय भूलकत ॥६०॥

कवित्त

चेतन ज्ञान प्रवान सदा भनि ज्ञेय प्रवान ज्ञान यति जान ।
लोकालोक प्रवान ज्ञेय सब तातै ज्ञान सर्वं वतमान ।
ज्यो पावक गभित ईषन के दरसत ईषन ज्ञान प्रवान ।
त्यो ही छहो द्रव्य जग पूरित व्यापक भयो केवली ज्ञान ॥६१॥

बोहा

पीतलादि निज गुन लिये, कुंडलादि परजाय ।
ईनही के गभित कनक, अधिकन हीन कहाय ॥६२॥
ज्ञान प्रवानन आत्मा, मानत कुमती कोई ।
हीन अधिकता मत बिषै, साधत आतम सोई ॥६३॥
जो लघु आतम जानतै, ज्ञान अचेतन होय ।
अधिक ज्ञान तै मानिये ज्ञान पनो जह खोइ ॥६४॥
जहा अधिकता ज्ञान की, तहां जीव लघु होय ।
जेतो ज्ञाननु अधिक है सपरसादि जब सोई ॥६५॥
जहां अचेतन द्रव्य है, जान पनों तहां नास ।
ज्यो पावक गुण ऊततै, परै न जाई पास ॥६६॥

जुदे न पावक उष्णता, जुदे न चेतन ज्ञान ।
 अधिक हीन के मान तै, साधत भिन्न प्रवान ॥६७॥
 तातै चेतन ज्ञान सो, जहां अधिकता होइ ।
 सो तू मानि अचेतना, घट पटादि बिधि सोइ ॥६८॥
 ज्यो पावक गुन उष्ण है, त्यो चेतन गुन ज्ञान ।
 अधिक हीन जो परनरै, उपजत दोष निदान ॥६९॥
 अधिक हीन नही आत्मा, है गुन ज्ञान प्रवान ।
 यह याको सिद्धात सब, जानहू वचन निदान ॥७०॥
 सकल वस्तु जो जगत की, ज्ञान माहि भूलकत ।
 ज्ञान रूप को वृषभजिन, प्रगटत ज्ञेय अनत ॥७१॥

कवित

ज्यो मलहीन आरमो कै मध्य घटपटादि कहिए विबहार ।
 निहचै घटपटादि न्यारे सब, तिष्ठत आप आप आघार ।
 त्यो ही ज्ञान ज्ञेय प्रतिबिंबित, दरसन एक समय सार ।
 निहचै भिन्न ज्ञेय ज्ञायक कहवति ज्ञान ज्ञेय आकार ॥७२॥

अडिल

घट पटादि प्रतिबिंब आरसी माहि है ।
 निहचै घट पट रूप आरसी नाहि है ॥
 त्यो ही केवल ज्ञान ज्ञेय सब भासि है ।
 अपने स्वतै स्वभाव सदा अविनास है ॥७३॥

कवित्त

ज्यो गुन ज्ञान सुही परमात्म सो परमात्म सो गुणज्ञान ।
 धर्म अधर्म काल नभ पुगल ज्ञान रहित ए सदा अज्ञान ।
 तातै ज्ञान शक्ति परमात्म ज्ञान हीन सब जड परवान ।
 ज्यो गुण ज्ञान त्यो ही सुख वीरज, यो आत्म अनत गुणवान ॥७४॥

बोहा

ज्ञान अवर परमात्मा है अनादि सनर्मध ।
 ज्ञान हीन जे जगत में, सबै द्रव्य जड अघ ॥७५॥

छुप्यंथ

ज्ञानी ज्ञान स्वभाव भ्रवर जड रूप ज्ञेय सबु ।
 धाप धाप गुन रक्त परसपर मिल तन को कबु ।
 नयन विषय ज्यौं नयन देखिये विवधि वस्तु बहू ।
 बिना किये परवेस जानि कर गए मरम सहू ।
 निहचै स्वरूप सब भिन्न भनि कथन एक व्यवहार मत ।
 यह ज्ञान ज्ञेय सनमंघ है दुरनिवार तिरकाल गत ॥७६॥

सर्वदया ३१

जैसे नीलमणि को प्रसग पाय स्वेत धीर ।
 नील रंग भासै पन न नील रंग धीर है ।
 जैसे नैन वस्तु को विलोकि व्यापि रहै सब
 यद्यपि तथापि भिन्न पंकज ज्यौ नीर है ।
 मानों ज्ञेय भावकी उखारि ज्ञान बिलि गयो
 भौसी ही बिचिंत्रता अखण्डित सधीर है ॥७७॥
 देखन जानन की शक्ति ज्ञान नैन में हीत ।
 ताते व्यापते ज्ञेय सौं, निहचै भिन्न उद्योत ॥७८॥
 जैसे दर्पण दरसि है घट पटादि आकार ।
 निहचै घट पट रूप सौं, दर्पण है आविकार ॥७९॥

बेसरी छंद

जहां न ज्ञेय ज्ञान में आवै, तहां न केवलज्ञान कहावै ।
 जो केवल सब ज्ञेय प्रकासी, तो सब ज्ञेय ज्ञान में भासी ॥
 जब घट पट दर्पण में भासै, तब दर्पण सब नाम प्रकासे ।
 घट पट प्रतिबिम्बत नहि होई, दर्पण नाम न भासै कोई ॥

बोहा

घट पट दर्पण में भरा, दर्पण घट पट नाहि ।
 ज्ञान ज्ञान में रम रह्यो, ज्ञेय ज्ञान के माहि ॥८२॥

सौरठां

ज्ञेय ज्ञान सनमंघ, हे काहू उपचार करि ।
 निहचै सब अर्बंघ, धाप धाप रस में मगन ॥८३॥

बीषाई

त्याग ग्रहणवं न परसै, केवल ज्ञान भेकपन दरसै ।
देखन ज्ञानन के गुण सेती, ज्ञायक वस्तु जगत में बेती ॥८४॥

दीहा

सहजि सकति है ज्ञान में, सर्व ज्ञेय प्रतिभास ।
त्याग ग्रहण पलटन क्रिया, ज्ञान दसा में नास ॥८५॥
जैसे बोखे रतन की, ज्योति अकप प्रकास ।
सहज रूप धरता लिये, त्यो ही ज्ञान विलास ॥८६॥
बिन इच्छा प्रतिबिम्ब सब, दरसै दरपण माहि ।
त्योही केवल ज्ञान में, ज्ञेय भाव अवगाहि ॥८७॥
न्यारी दरसण आरसी, न्यारे घट पट रूप ।
त्यो न्यारे ज्ञेय ज्ञायकी, यहै अनादि अनूप ॥८८॥

कवित्त

जे धृत भाव ज्ञान करि जानत परमात्म निज रूप वसेष ।
सो परमात्म सहज स्वभावनि ज्ञायक लोकालोक असेष ॥८९॥
तातै श्री जिनबर इम भावत श्रुत भावी श्रुत केवल रेख ।
केवल ज्ञान अबर श्रुत केवल दोउ बेदत आत्म मेष ॥
पूरन भाव अनत सक्ति करि बेदत प्रगट केवली ज्ञान ।
श्रुत केवल केतीक शक्ति तै क्रमवर्ती बेदत परवान ॥
दोउ एक ज्ञान निहचै भनि, भेद भाव आवरण बखान ।
जैसे मेघ घटा आछादित, दीसत अधिक हीन दुति भान ॥९०॥

अडिल

मतिज्ञानादिक भेद एक ही ज्ञान के ।
ज्यो बादल आवरण हूँ रहै भान के ॥
श्रुत केवल सामान्य विशेष विवेक है ।
निहचै ज्ञायक जोति ज्ञान रवि एक है ॥९१॥

कवित्त

जिनवर कवित्त वचन की पकति द्रव्य सूत्र कहिए परवान ।
ते सब वचन स्वरूप जज्ञतम ताकै निमित्त पाय वह ज्ञान ।

सोई भाव सूत्र निहचै भनि द्रव्य सूत्र व्यवहार बखान ।
ता नय चरन ज्ञान परमात्म भिन्न भेद भावै भगवान ॥६२॥

बोहा

द्रव्य सूत्र पुग्गल मई जामै बचन बिलास ।
निबिकल्प परमात्मा क्यो बनि है इक वास ॥६३॥
द्रव्य सूत्र के निमित करि, उपजत ज्ञान प्रवान ।
तातै श्रुत व्यवहार नय, गर्भित ज्ञान बखान ॥६४॥
श्रुत भव गाहक ज्ञान को, लाहै यहै व्यवहार ।
निहचै उतपति ज्ञान की, ज्ञान माहि निरधार ॥६५॥
जाणि शक्ति है जीव मै, सोही ज्ञान बखान ।
जीव जानि है ज्ञान तै, वनै ज भात्म जानि ॥६६॥
घट पटादि प्रतिबिंब सब, दरसत दर्पण माहि ।
त्योही ज्ञान प्रकास तै, ज्ञेय भाव अवगाहि ॥६७॥
ज्ञानन आत्म ज्ञान तै, बिना ज्ञान जड जीव ।
जीव ज्ञान की भिन्नता, कुमती कहे सदीव ॥६८॥
जीव ज्ञान की भिन्नता, साधत कुमति कोय ।
जाकै मन आत्म द्रव्य, ज्ञान हीन जड होय ॥६९॥
घट पट जेते जगत मै, प्रगट अचेतन द्रव्य ।
समय पाय ये होयने, चेतन रूपी सबै ॥१००॥

× × × × × × ×

अन्तिम पाठ—

मूल ग्रन्थ कर्ता भए, कुंदकुंद मतिमान ।
अमृतचन्द टीका करी, देव भाव परवान ॥४२८॥
जोसो करता मूल को, तैसो टीकाकार ।
तातै अति सुन्दर सरस, बरौ प्रबचनसार ॥४२९॥
सकल तत्व परकासनी, तत्वदीपका नाम ।
टीका सुरसत देव की, यह टीका अभिराम ॥४३०॥

बोपई

बालबोध यह कीनी जैसे, यो तुम सुनहुं कहूँ मैं तैसे ।
 नगर घागरे मैं हितकारी, कौरपाल जाता भ्रविकारी ॥४३१॥
 तिन विचारि जिय मैं यह कीनी, जो भाषा यह होय नवीनी ।
 अल्प बुद्धि भी अर्थ बखानै, अगम अगोचर पद पहिचानै ॥४३२॥
 इह विचार मन मैं तिहा राखी, पाडे हेमराज सो भाषी ।
 भागी राजमल्ल ने कीनी, समयसार भाषा रस लीनी ॥४३३॥
 अब ज्यौ प्रवचन की हूँ भाषा, तो जिन घरम वधै वृष साखा ।
 तातै कहूँ विलबन कीज्ये, परम भावनां अग फल लीज्ये ॥४३४॥

बोहा

अवनीपति बधहि चरन, सुणय कमल विहसंत ।
 साहजिहां दिन कर उदय, अरिगण तिमरन संत ॥४३५॥

सोरठा

निज सुबोध अनुसार, असे हित उपदेश सों ॥
 रची भाष अविकार, जयवती प्रगटो सदा ॥४३६॥
 हेमराज हित आनि, भविक जीव के हित भणी -
 जिणवर आण प्रवान, भाषा प्रवचन की करी ॥४३७॥

बोहा

सत्रहसँ नव उत्तर, माघमास सित पाष ।
 पचमि प्रादितवार को, पूरन कीनी भाष ॥४३८॥

इति श्री प्रवचनसार भाषा पाडे हेमराज कृत सपूर्ण । लिखतं दलसुख
 लुहाइया लीखी सवाई जयपुर मध्य लिखी । श्री श्री श्री ।



प्रवचनसार भाषा (कवित्त बंध)

रचयिता—हेमराज गोबीका

अथ श्री प्रवचनसार सिद्धान्त कवित्त बंध भाषा लिखते/अथ परमात्मा को नमस्कार

अरिल्ल छन्द

ध्याय अग्नि करि कर्म कलंक सब दहै
नित निरजन ग्यान सरूपी ह्वै रहै ।
व्यापक जेयाकार ममल निबारि कै,
सो परमात्म देव नमो उर धारि कै ॥१॥

अथ आदिनाथ स्तुति सबैय्या—31

आदि उपदेश सिव साधन बतायो, सोइ गावत सुरेश आम तारन तरन है ।

जाके ग्यान माहि लोकालोक प्रतिभासित है,
साभित अनुरूप कचन वरन है ।
जुगल धरम की धरनि के निवारन की,
आत्म धरम के प्रकास फु करन है ।
मैसो आदिनाथ हेम हाथ जोरि वक्त है,
सदा भवसागर में सबकी सरन है ॥२॥

अथ पंच परमेष्टी को नमस्कार—बोहरा

अरिहतादिक पंच पद, नमहुं भक्ति जुत तास ।
जाके सुमिरन ध्यांन सौ, लहै स्वयं सिव बास ॥३॥

अथ सरस्वति स्तुति—भरहृदी छंद

वदी पद सारथ भवदधि पारद सिव साधन की सेत,
निरमल बुधिदाता जगति विख्याता सेवत मुनि धरि हेत ।

सो जिनवर बानी त्रिभुवन मांती दिव्य वचन भडार ।
हौं फुनिवर पाऊ कवित्त बनाऊं पूरन प्रवचनसार ॥४॥

अथ कश्चिन्नय नाम छप्पय छन्द

कुवकुद मुनिराज प्रथम गाथा बध कीनी,
गरभित अरथ अपार नाम प्रवचन तिन्ह दीन्ही ।
अमृतचद फुनि भये ग्यान गुन अधिक विराजित
गाथा गूढ विचारि सहस्रकृत टीका सजित ।
टीका जुमाड जो अरथ भनि बिना विबुध को ना लहै
तब हेमराज भाषा वचन रचित बालबुधि सरदहै ॥५॥

बेसरी छंद

पाडे हेमराज कृत टीका पढत पढन सबका हित नीका ।
गोपि अरथ परगट कार दीन्ही सरल वचनिका रचि सुख लीन्ही ॥६॥

चौपई

टीका तत्व दीपका नाम, हरत अग्यान तिमर सब घाम ।
जामे दरब कथन अघिकार, पढत प्रगटत ग्यान अपार ॥७॥

अथ कवि लघुता कथन—सर्वथ्या ३१

जैसे कोऊ बालक बिलोकि ससि विव दुति ।
करै कर ऊरध उचकि भरे बाधि हौ ।
जैसे मन कायर करन कहै भ्रूभ्र जहा तहा ।
घन सूरि हरि हाथिन के जयि है ।
जैसे कर चरन ते हीन बल खीन नर धरै,
उर उद्यम जलधि पैसि मधि है ।
तैसे हैं अजान अक मात न पिछानो जाहि,
प्रवचनसार की न पार कैंसी कधि है ॥८॥

अथ ग्रंथ स्तुति तथा कवि लघुताई कथन सर्वथ्या—३१

जैसे करहू पर्वत को भारग विषम लहू
दीसत उतग शृंग सैल की सी धार है ।

तहाँ एक चतुर सिलावट बनाय दई
 वैडीन की पंक्ति सुं सुगम सुठार है ।
 त्यौही प्रबचनसार परमागम अगम अति
 गूढ गति अरथ सु अधिक अपार है ।
 पडित सटीक करि कोमल प्रकाशि दयो
 मेरी हू अल्प मति ताकै अनुसार है ॥६॥

आगे श्री कुंदकुदाचार्य प्रथम ही ग्रंथ आरंभ विषै मंगलाचरण निमित्त
 नमस्कार करे है^१

कवित छन्द

सुर नर अमुर नाथ पद बंदित घातिय करम मैल सब धोये,
 भयो अनत चतुष्टय परगट तारन तरन विरद तिहू लोये ।
 आतम धरम ध्यान उपदेसक लोकालोक प्रतस जिन जोये ।
 असे वर्धमान तियकर बंदत चरन भरम मल खोये ॥११॥

खोपई

बाकी तियकर तेइस, सिद्धि सहित वदो जगदीश ।
 निरमल दरसन ग्यान सुभाव, कचन सुद्ध अगनि जिम ताव ॥१२॥

× × × × × × × ×

अन्तिम पाठ

आगे श्रवणाभास मुनि कैसा है य कवन करे है—सबैया बाईसा
 जो मुनि संयम भाव अराधि करै तप साधि सिद्धंत सबै,
 ओं परमागम सो परमातम भेद बिचार लहे न जबै
 जो वरसै जग मै मुनि सौं फुनि सौं मुत्ती कहियेन कबै
 तास बिनो करि येन कछु तिन्ह ते नहि संनिक ज्ञान फबै ॥६४२॥

-
1. गाथा एवं उनकी संस्कृत टीका को यहाँ नहीं दिया गया है । केवल कवित बंध भाषा को ही दिया जा रहा है ।

भाये यथार्थ मुनि पद सयुक्त मुनि की विनायिदि क्रिया जो न करे सो चारित
रहत है यह दिखावै है—

दोहरा

जो मुनिस को देखि मुनि, करै दोष दुरभाव ।
सो मुनि उदै कषाय स्यौ, चारित भग कहाव ॥६४४॥

भागै जो जाति भाव करि उत्कृष्ट है ताकी जो भाप तँ हीन भाचरै सो
भगत ससारी है यह दिखावै है—

दोहरा

जो मुनि भान मुनीस पै, चाहै भादर भाव ।
सो मुनि भवदधि तिरन को, लहै न कबहु दाव ॥६४६॥
बहा भयो जो मुनि भयो हम फुनि मुनिवत धार ।
असे मुनि के गव ते, लहै न भवदधि पार ॥६४७॥

भागै भाप जति भाव करि उत्कृष्ट है । जो गुणहीन की विनयादिक करै
तो चारित्र का नाम होय यह दिखावै है—दोहरा

जो मुनि गुन उत्कृष्ट धर करै जघनि सो सग ।
सो मिथ्या जुत जगत मै, कहिये चारित भग । ६४९॥
हीन सगति ते हीनता, गुर ते गुरता जानि ।
सम ते सम गुन पाइये, यह सगति परबानि ॥६५०॥

भागै कुसगति मनै करै है— विलिखित छंद

करकं मुनि आगम ठीकं, परमारथ जानते नीकं ।
तप साधि कसाय न भानं, उपयोग अकप सुठानं ॥६५२॥
ममता तजि सजय धारै, तिर भाप सु ओरनि तारै ।
जब लौकिक को सृग द्वानं, छित मै मुनि चारित भानं ॥६५३॥
बिय पावक कं सग पानी निज सीतलता तहि भानि ।
मुनि लौकिक लक्षण जैसी, बरनै जिन आगम तैसी ॥६५४॥

भारी लौकिक मुनि का लक्षण कहे है—सर्वभ्या २२

जो निरबंध दिखा धरि कै, बनवास वसै मुनि को पद धारै
सयम मील क्षमा तप धाधरि जोतिक बंदक मत्र विचारै ।
सो जग मैं मुनि लौकिक जानहु, चारित भिष्ट सिद्धांत उचारै ।
जे मुनिराज बिराजत उत्तम, तै तिम्ह को परसंग निवारै ॥६५६॥

भार्ये भली सगति कोजिए यह दिखावै है—

गुन समान के गुन अधिक, तासौ करिये संग ।
जासौ सिव सुख पाइये, चारित रहै भ्रमग ॥६५८॥
सीतल जलधर कौ नमै, सीतलता न घटाय ।
त्योही सग समान सौ गुन समान ठहराय ॥६५९॥
दे कपूर धरि छाह जल, अधिक सीत ह्वै जात ।
त्यो ही गुर के सग ते, मुनि गुर पद कौ पात ॥६६०॥
पावक सगति सीत जल, स्निहक माभ तप जात ।
र्यो कुसम के सम स्यो, गुन भवगुनता पात ॥६६१॥

बेसरी छंद

पहलै सुभपयोग मुनि धारै, क्रम क्रम संबंभ भाव विचारै ।
जब सजम उतकिष्ट बढावै, तब मुनि परम दसा को पावै ॥६६२॥

दोहा

परम दसा धरि कै मुनी, पावै केवल ज्ञान ।
जो ध्यानद मैं सास्वती, चिदानंद भगवान ॥६६३॥

इति श्री शुभोपयोगाधिकार पूर्ण हुवा । भार्ये पंच रत्न कहे है । पंच गायानि करि । अथ पंच रत्न नाम कथन ।

बेसरी छंद

प्रथम तत्व संसार बलानो, दुतिय मोष तत्व पहिचानो ।
द्वितिय तत्व सिध साधन कीबै, सिध साधक ध्यानक फुनि कीबै ॥६६४॥

जो सिद्धंत फल लाभ बतावें, पञ्चम तत्त्व जिनागम यावै ।
 ये ही भव सिव की चिति साधै, भ्रमेकात मत ताहि धरार्थे ॥६६५॥
 ये ही पञ्च रतन जग माहि, यहु गरंथ इन्ह की परछांही ।
 तातै पञ्च रत्न जपवता, होह जगत में जिन भाषता ॥६६६॥

अथ संसार तत्त्व कहै है— कवित्त

जिन मत विषै दरव लिंगी मुनि, धरि है नगन अथस्था जोई ।
 ये परमारथ भेद न जानत, गहि विपरीत पदारथ सोई ।
 कहै यहै ही तत्व नियत नय, यो उरमानि रहत इहि लोई ।
 काल अनत भ्रमत मुजत फल, यहु संसार तत्व जगि होई ॥६६८॥

भार्गे मोक्ष तत्व को प्रगट करै है— सर्वव्या २३

जो मुनिराज स्वरूप विषै बरतै तजि राग विरोध दसाको,
 जो निहूचे उर भानि पदारथ नीर दयो भव वास बसाको ।
 जो न मिथ्यात क्रिया पद धारत जारत है प्रति मोह दसाको ।
 सो मुनि पूरन ताप दई कहिये नित मोघ मरूप आसाको ॥६७०॥

भ्रागे मोक्ष तत्व साधक तत्व दिखाइए है—सर्वव्या २३

जो चउबीस परिग्रह छडित दिव्य दिगबर को पद धारै ।
 जो निहूचे सबु जानि पदारथ, भ्रागम तत्व अखड बिचारै ।
 जे कबहु न बिपै सुख राचत, राग विरोध कलक निधारै ।
 ते मुनि साधक है सिव के फुनि, धाप तिरै भरु धोरनि तारै ॥६७२॥

भ्रागे मोक्ष तत्व का साधन है तत्व सर्व मनोवाञ्छित अर्थनि का स्थान कहै यह

दिसावै है— कवित्त

जो मुनि वीतराग भावनि को प्रस्त हवै सो सुद्ध कही जै ।
 जाकै दरसत ग्यान सुद्ध भनि ताही के सिव शुद्ध लहीजै ।
 सो मुनि सुद्ध सिद्ध सम जानहु, जाके चरन नमत सुख लीज्यै ।
 मन वञ्छित धानक सिव साधन, करि के भक्ति महारस पीजै ॥६७४॥

प्रागे शिष्य जन को सास्त्र का फल दिखाय सास्त्र की समाप्ति करे है—

कवित्त

जो नर मुनि श्रावक करि याको, धारत जिन प्रागम भवगाहैं ।
 प्रवचनसार सिद्धंत रहसि कौ, प्राप्त होत एक छिन माहै ।
 भेदाभेद सरूप वस्तु कौ, साधत सो प्रातम रस चाहे ।
 सो सिद्धंत फल लाभ तत्त्व बल पूरब कर्म कलंकनि दाहै ॥६७६॥

इति पंच रत्न कथन समाप्त ।

अथ प्रथ कर्ता कवि स्तुति—दोहरा

मूल प्रथ करता भये कुंद कुंद मतिमान ।
 अमृतचंद टीका करि देव भाषा परबान ॥६७७॥

बेसरी छन्द

पाडे हेमराज उपगारी नगर प्रागरे में हितकारी ।
 तिन्ह यहु प्रथ सटीक बनाये, बालबोध करि प्रगट दिखायो ॥६७८॥
 बाल बुद्धि फुनि अरथ बखाने, अगम अगोचर पद पहिचाने ।
 अलप बुद्धि हम कवित बनाये, बुधि उनमान सर्वे बनि घायी ॥६७९॥
 जीवराज जिन धर्म धरैया, सबे जीव परि क्रिया करिया ।
 प्रवचनसार प्रथ के स्वादी, रहै जहा न होत परमादी ॥६८०॥
 तिन्ह उर मै विचार यहु कीयो, प्रवचनसार बहुत सुख दीयो ।
 कवित बंध भाषा जो होई, कठ पाठ करि है सब कोई ॥६८१॥
 तब हमस्युं यहु बात बखानी, कवितबंध भाषा सुखदानी ।
 प्रवचन कवित बंध जो होई, घर घर विषै पढै सबु कोई ॥६८२॥
 इहि विधि काल बतीत करीजे, मनिष जनम को सुभ फल कीजे ।
 निज पर सब ही कौ सुखदाई, करिये बेग न विलब कराई ॥६८३॥
 हेमराज फुनि यहु उर धानी, अमृत सम तुम बात बखानी ।
 अलप बुद्धि मो माझ गुसाई, क्यों करनौ प्रवचन के ताई ॥६८४॥
 मैं नहि कवित छंद कौ पाठी, लघु दीरघ मै मो मति माठी ।
 छंद ग्रंथ गन अगन जु होई, घर पुनरुक्त सब्द मनि कोई ॥६८५॥
 तिन्ह की कछु भेद नहि जानी, कवित उचार किसी विधि ठानी ।
 पंडित जन भर कविता होई, मोहि बिलोकि हसौ मति कोई ॥६८६॥

दोहरा

छंद अरथ गन पुनसकत, होत न जहां प्रवान ।
 विबुध क्षमा करि कीजियो, सुद्ध जथा तुम्ह ज्ञान ॥६८७॥
 पातिसाह ऊरंग कै, नीत धरम परमास ।
 देत असीस सब दुनी, अचल राज पदवास ॥६८८॥
 जिने भूप भूपर बसे, सब सेवै दरबार ।
 जाकै चादर नीत की, तनी जाय दधिपार ॥६८९॥

सबैया

सोमित जेसिध महासिध सुत क्रम कै,
 अवनि कै भारसी सुभार पीठ बनी है ।
 ताकै धरि कीरति कुमार ते उदार चित,
 कामागढ राजित ज्यौ राजे दिनमती है ।
 जहा काम करता दीवान गजसिध,
 जाति कायथ प्रवीन सवे सभा नति सनी है ।
 तथा छहो मत को प्रकास मुख रूप,
 सदा कामागढ सुन्दर सरस छवि बनी है ॥६९०॥

सबैया इकतीसा

हेमराज श्रावक खंडेलवाल जाति गोत भवसा प्रगट व्यौक गोदीका बखानिये ।
 प्रवचनसार अति सुन्दर सटीक देखि, कीये है कवित छवित रूप जानिये ।
 मेरी एक वीनती विबुध कविवंत सी, बालबुद्धि कवि को न दोष उर आनीये ।
 जहां जहा छंद और अरथ अधिक हीन, तथा शुद्ध करिके प्रवान ग्यान ठानिये ॥६९१॥

दोहरा

सांगानेर सुधान को हेमराज बसवान ।
 अब अपनी इच्छा सहित, बसै कामागढ धान ॥६९२॥
 कामागढ मुख सुं बसइ, ईत नीत नहि धाय ।
 कवित बध प्रवचन कीयो, पूरन तथा बनाय ॥६९३॥

छप्पय

बंदी हू गुरु निरर्गथ जहां तिरामस न परिगह ।
 बडू धर्म सुसवा सबै सुख दानि सदा सह ।
 दोष अठारह रहित देव बडू सो शिवंकर ।
 सुगुरु सुधर्म सुदेव परषि पुज्जै सुजानिकर ।
 भनि हेम जिनागम जेम गहि सो समकित चारक है उर ।
 जो कुबुद्धी कुनर मिथ्यामती सुनहि त्याग पुज्जहै अनर ॥६६४॥
 अध्यातम सेली सांहुत, बनी सभा साधर्म ।
 चरचा प्रवचनसार की, करे सबै सहि मर्म ॥६६५॥
 अरचा अरिहन देव की, सेवा गुरु निरर्गथ ।
 दया धरम उर आचरे, पचम गति को पथ ॥६६६॥

बेसरी छंद

असी सभा जुरे दिन राती, अध्यातम चरचा रसि माती ।
 जब उपदेश सबनि की लीयो, प्रवचन कवित्त बंध तब कीयो ॥६६७॥

दोहरा

प्रवचनसार समुद्र सरस लीन मु अरथ अपार ।
 लहतु सबै जे विबुध जन, मति भाजन अनुसार ॥६६८॥
 गुरु गुरादि सब जनम भरि, करि है अरथ विचारि ।
 सो फुनि पारन पावहि, प्रवचनसार अपार ॥६६९॥
 जो नर उर यी जानहि, मैं जान्यो सब भेद ।
 सो बालक बुधि जगत मैं करत अविस्था खेद ॥१०००॥
 उयो पावक ई धन विषै, उयो सलिता दधि छीन ।
 त्यो प्रवचन मैं अरथ की, पुरतान निदानि ॥१००१॥
 कथन सु प्रवचनसार की, कहि कहि कहै कितीक ।
 तातैं कवि वरनै इती, मति अनुसार जितौक ॥१००२॥

आगे छंद की संस्था कहै है—कवित्त

उनसठि कवित्त अरिल्ल वत्तीस सुबेसरी छंद निवै अरतीन
 दस पद्धरी चारि रोडक भनि, सब चारीस चौपई कीन ।

दोहा छंद तीनसे साठ तामें एक कीजिये हीन ।
 गीता सात आठ कुडलिया ए भरहठा जिनहू प्रवीन ॥१००३॥
 बाईसा भनि चारि पांच बीईसा कहिये ।
 दकतीसा बत्तीस एक पचीसा सहिए ।
 छप्पय गनि तेईस छद फुनि सात विलंबित ।
 जानहु दस भर सात सकल तेईसा परमित ।
 सोरठा छद तेतीस सब सात सयर पचबीस हुव ।
 आषाढ मास दुतीया घवल पुष्य नक्षत्र गुरवार धुव ॥१००४॥

सोरठा

सत्रहसैं बीईस संवत सुभ भर सुभ घरी ।
 कीनी प्रंय सुबीस देखि रोष कीजहु पिशा ॥१००५॥
 इति श्री प्रवचनसार सिद्धंत भाषा कवित समाप्तानि । शुभ भवतु । सर्व
 श्लोक सख्या २८७० । सवत १७२६ वृषे पोस सुदि १० बुधवार सपूर्णं । श्री श्री श्री ।

नामानुक्रमिका

प्रखितनाथ ७, ४६	कीरतिसिंह २४०
अगरवाल ३०, ११६, ११७, १२०, १५२	कौशल्या ४६
अभिनन्दननाथ ८	कुमुदचन्द्र
अश्वसेन १४	कीरपाल १, २०५, २०६, २०८, २०९
अनन्तनाथ १२, ५५	२५४
अरनाथ १३, ५८	सङ्गसेन २
अमृतचन्द्र २४१, २५३, २५६, २६१	खण्डेलवाल २२५
अमरसी ११७, ११९ १२०	गोयल ११७
अञ्जलीति २	गुणमद्र १५३
आचार्य सोमकीर्ति १	गुप्तागुप्त २८, १०५
अमरा भौसा २२४	गौतम २६
अनन्दराम २३०	गारवदास ३
अवरङ्ग १६८	ठक्कुरसी १
अर्हदबल्भसूरि ४३	चन्द्रदत्त १०, ५१
अरुन १२५, १५५	चन्द्रप्रभ १०, ५१
अोरङ्गजेब १४९	चतुर्भुज २०८
अकब्बर १४७	जैत्रुलदे ११७, ११८, १२१, १२२, १४९,
आदिनाथ ५५	१५४, १५५, २०५
उमास्वामी ८, ३१, ४३,	जितारथ ५७
कल्याण सागर ३	जितरिपु ६
कुन्दकुन्द २०, २८, १०५, १५२, २०६	जयदेवी ५४
२०८, २५३, २५६, २५७,	जयकीर्ति ३
२६७	जिनचन्द्र ३
कुंभनाथ १३, ५८	जगताराम २
कामता प्रसाद २०१, २०२	जयसेन २१०
	अहामीर १४७, १६८

जम्बू स्वामी ५, ११३	प० पन्नालाल बाकलीवाल २२१
जयकुमार ८५, ८६, १२१	प० हीरानन्द २०५
जीवराज २६१	प० नारायणदास २१६
जोधराज गोदीका २, २२४	परमानन्द २०२, २१७
जैनी ११८, १६४, २०५	पद्मदत्त ४६
जैसवाल ३, १५, ३६, ३८, ६४, ११३	प्रताप ३, ११४
तिहिनवाल ३६, ११३	प्रभावती ५६
तुलसी १	बनारसीदास १, २, ४१, २०३, २०५, २०६
निमिग लिग १४७, १६८	बुलासीचन्द ११४, ११५, ११६, २०४ २०२, २०३
दनमुल २५४	बुलाकीदास २ ११६, ११६, १२१, १२२ १२३, १२६, १४६, १४७, १४६, १६४ १६८, २०१, २०५, २०६, २०७
देवमेन ११६	बूनचन्द ११७, ११८, ११९, १२१, १२८, १५५
द्रठरथ १०	बूचराज १
धर्मनाथ १२, ५६	भरत १६, २५, ३२
धरसेन ५६,	भ० रत्नकीर्ति १
धुरराजा ५०	भ० ज्ञानभूषण १
नन्दलाल ११६ ११७, ११८, ११९, १२१ १५१, १५४	भद्रबाहु १०५
नेमिदत्त ६१	भ० शुभचन्द १४७
नेमिनाथ १३, १८ ६१ २१७	भानु १२, ५६
नेमिचन्द २ २०१, २१७	भरधराय ८४
नाभिराजा १७	मीरा १
नदीवर २६	मनोहरलाल २
नदिमेन ५६	माधनन्दि २८
नदाराणी ५३, ८४	महासेन १०, ५१
नाभिराय ४५ ८१, ८४	मगला ४६
पाशर्वनाथ १४, ६२	
पुष्पदन्त १०, ५२	
पेमचन्द ११६, ११७, ११९, १२०, १५३	
पदमप्रभु ६	
पुरनमल ३	
प० विनोदकुमार २०४	

मरुदेवी १७,
 मिश्रबन्धु २०१
 मालिनाथ १३, ५६
 मुनिमुद्रतनाथ १३, ६०
 मेघराय ४७, ४६
 महेन्द्रदत्त ५०
 मरुदेवी ४५, ८१, ७५
 महावीर १४, २६, २७, ३३, ३८
 ब्र० यशोधर १
 योगीन्दु २१५
 रूपचन्द १, २०१, २०५, २०८
 रामचन्द्र २
 राजमल्ल २०६, २५४
 राजसिंह १,
 ब्रे० रायमल्ल १
 राघव ३
 लछ्मा १०, ५६
 लालचन्द ३ ११२
 लोहाचार्य ४३
 वामादेवी १४, ६२
 वासुपूज्य स्वामी ११
 विमलनाथ ११,
 विश्वसेन ५७, ६०
 विजया ६, ४६
 विमला ५३
 वरदत्त ५८
 सुमतिनाथ ६
 सिद्धारथ १४, ५४, ६३
 सोमकीर्ति ४३
 सुगन्धादेवी ५६
 सुपुष्पनाथ ५, ५०
 सभयनाथ ८, ४७
 सोमदत्त ५०
 सावित्री ४७

सवदेवी ६२
 साहिजहाँ १६८, २५४
 सुन्दरी ८४
 समतभद्र १५२
 सषारु १
 सुदर्शन ५८
 सागरमल ४, ११४
 सुलोचना ८५, १२१
 समुद्रविजय ६२
 सूरदास १,
 सुग्रीव ५२,
 सुभचन्द्र १५५, १६८
 शक्तिचक्र ३२
 शिवादेवी १८
 शक्तिनाथ १२, ५७
 शीतलनाथ १०, ५२
 श्रेणिक २६, २७
 श्रेयासनाथ ११ ५३
 श्रीराणी ५८
 श्वरणादास ११६, ११७, ११६, १२०
 हेमराज २, २०, ११६, ११८, १२०,
 २०२, २०२, २०४, २०७,
 २०८, २०६, २१०, २११,
 २१२ २१४, २१७, २१८
 २२५, २२६, २२७, २३०
 हेमराज शाह २०२
 हेमराज गादीका २२२, २२७, २२८,
 २३२, २३३, २४०, २५५
 हेमराज पाण्डे २०२, २२७ २३२,
 २२१, २५६
 हेमराज (चतुर्थ) २२६
 हीरानन्द २, २०६
 हिमाळ १४४, १६८
 त्रिशला १४

ग्रंथानुक्रमिका

उपदेश दोहा शतक	२२७, २२८ २३३, २४०	प्रवचनसार भाषा	४०, ११८, १२०, १५४, २०२, २०५, २०६, २०७, २०८, २०९, २१०, २२५, २२६, २२७
एकीभाव स्तोत्र	३२	प्रश्नोत्तर रत्नमाला	१२४
कर्मकांड भाषा	२०, २४, २०१, २०७	प्रश्नोत्तर श्वावकाचार	११७, १२१, १२२, २०५
कल्याण मन्दिर स्तोत्र	३२	भक्तामर स्तोत्र भाषा	३२, २०१, २०७, २१२, २१३
गुरुपूजा	२०२, २०७, २२१	भूपाल स्तोत्र	३२
चौबीसी	१२४	रोहिणी व्रत कथा	२०७, २२३
चौरासी बोल	२०७, २१४	राजमती चुनरी	२०७, २२४
छन्दमाला	२०१	वार्त्ता	१२४
नन्दीश्वर व्रत कथा	२०७, २२३	वचनकोश	४, ५, ६, ४५
नयचक्र भाषा	२०१, २०२, २०७, २१६	विषापहार स्तोत्र	३२
नेमिनाजमती जखजी	२०७, २२२	समयसार भाषा	२०७, २२४
पाण्डव पुराण	११६, ११६, १२२, १२३, १४७, १४६, १५०, १५१, १६८, २०५, २०८	समयसार नाटक	१, २, ४०, २०५, २०७, २०८, २०९, २२४, २२६
पचास्तिकाय भाषा	२०, २०२, २०५, २०७, २१६, २१७, २२६	मुगन्ध दशमी व्रत कथा	२०७, २१६
परमात्म प्रकाश	२०२, २०७	सितपट चौरासी बोल	२०१, २०६
पचाशिका	२०१	समवसरण विधान	२०७
		हितोपदेश बावनी	२०२, २०३, २०४

नगर-ग्रामानुक्रमिका

अमरोहा	२६	जयपुर	२०४, २१७, २८१, २३०,
अजमेर	२		२५४
अयोध्या	३२, ४६, १६१	जलपथ	१४१
अवधपुरी	३२, ५६, ८३	जहानाबाद	१२१, १२२
आगरा	२, ३, १२०, १२१, १५३, १५४, २०६, ११४, २५४, २६१	जालन्धर	१४०
आमेर	२	जैसलमेर	३२, ३४, ३५, ४१
इन्द्रप्रस्थपुर	१२२, १४६	जबूद्वीप	१५६
कपिलापुरी	११, ५४	तिलपथ	१४१
करनाट	१६३	टोडारायसिंह	२
कश्मीर	१६३	तिहुवनगिरी	२
कालिंग	१६३	दिल्ली	२, १४७, १६५
काकंदी	१०	द्वारावती	१३६
कामागढ	२२५, २४०, २६२	धर्मपुर	५६ १४५
कुच्छेत	१३८	नागीर	२
कुण्डलपुर	१४, ६३	पावापुर	१४, ५०, १०४
कौशांबी	५०	पोदनपुर	१६, ३२
कोकण	१६३	बयाना	११७, ११६, १२०, १५२
कोशिकपुर	१३६	बूँदी	२२८
कोसल	१६३	बैराठ	१६३, १६६
राजपुर	१२, ५७, ५८, १३८, १४०	मध्यदेश	११५३
खालियर	१११	मध्यप्रदेश	२
बहकहपुर	५६	मालवा	१६३
बर्भापुरी	११	मुलतान	२
बन्द्रपुरी	५१	मथुरा	५, ११३
		मिथिलापुर	१३, ६०, ६१

महाराठ	१५३	वीरपुरी	६२
मगधदेश	११७, १६३	वर्द्धनपुर	४, ५, १५
मगलपुर	५०	वृन्दावन	५, ८, ११३
मन्दिरपुर	५८	वार्शाकपथ	१४१
मेवपाट	१६३	सागनेर	२, २०४, २२५, २४०, २६२
भः वातु	१५६	सिधपुरी	११, ५३
भरतपुर	१५०	सुनकापुरी	१४५
भागलपुर	१०, ५३	सुरपुरि	१४५
राजस्थान	२	सोरठ	१६३
रूपनगर	२०४	सावित्री नगरी	८
रतनपुरी	५१	सिद्धार्थपुरी	११
राजाखेरा	११४	हस्तिनापुर	४६, १४१, १४६
रा ग्रही	१३, १३७	त्रिभुवनागरी	५, ३५, ३६
वाराणसी	१३, १५, ८४		
बिजयापुर	४६		